सबक–I
भाषा किस चिड़िया का नाम है

पाठ 1. बच्चों की भाषा – भाषा क्या है? बच्चों द्वारा भाषा का उपयोग कहाँ–कहाँ व कैसे? भाषा व व्यक्तित्व।

पाठ 2. अपना सिर थपथपाना व पेट को मलना – इंसानों की भाषा सीखने की क्षमता, भाषा सीखने की प्रक्रिया।

पाठ 3. रेमण्ड स्कुपिन 2005 भाषा का मानव विज्ञान : विश्व स्तरीय परिप्रेक्ष्य प्रिन्टिस हॉल – इंसानी भाषा व जानवरों की भाषा, मानवीय भाषा की विशेषताएँ, भाषा का विकास, भाषा की संरचना ।

क्या आग सिर्फ जलाती है या जन्म भी देती है? क्या चट्टानें बोलती हैं? क्या नदियाँ महसूस करती है? क्या पंछी और पशु इतिहास बनाते हैं?

पहली नज़र में ऐसे सवाल अजीब लग सकते हैं, मगर गहरी नज़र डालने से इन सवालों में गहरे अर्थ निकलने लगते हैं। मसलन, सूरज नाम के दहकते आग के महापिंड से उपजी हमारी धरती एक अर्से बाद ठंडी होकर जीवन जन्म देने लायक हो पायी। मसलन, चट्टानों को होना इस बात का सबूत है कि हमारी धरती में जबरदस्त उठापटक हुयी जिसमें पिघला लावा जमकर हिमालय बन गया।

इसी तरह के सवालों में जुड़ा है सवाल कि जिसे हम भाषा कहते हैं वह किस चिड़िया का नाम है। क्या वह महज हमारे अनुभवों का पिटारा है? या फिर, क्या वह साईकिल की तरह सफर का साधन है? या फिर, वह दूरबीन की तरह एक खोज़ का यंत्र है? या फिर, वह नाक और हाथों की तरह हमारा अंग है? साफ है कि, भाषा का चरित्र उतना ही जटिल है जितना हमारे जीवन का चरित्र।

एक बात और। अब सब मानते हैं कि पृथ्वी में जीवन का उदय सूक्ष्म बैक्टीरिया से हुआ और धीरे–धीरे बदलकर पनपता गया, और यह विकास आज तक पहुँचा है। मगर सफर खत्म नहीं हुआ। क्या हम यकीन के साथ कह सकते हैं कि आगे आने वाली मानव जाति में दो की जगह तीन आँखें नहीं होंगी? या फिर, कि आने वाली मानव जाति हवा में उड़ सकेगी? पक्का जवाब मुमकिन नहीं है। यही हाल भाषा का है। आने वाले युगों में जिस तरह हमारे जीवन में स्टील, बिजली, रसायनों की भूमिका में बदलाव आना तय है, उसी तरह सभ्यता में भाषा की भूमिकाओं में भी बदलाव तय है। ये मानव जीवन के भागीदार आपस में जुड़े हैं और जुड़े रहेंगे, मगर जुड़ाव के तौर तरीकों में लगातार बदलाव आता रहेगा। हीरो–हीरोइनें तो ज्यादा से ज़्यादा डबल रोल करते हैं। भाषा हमारे जीवन में सौ रोल एक साथ करती है, जिसमें से सिर्फ पाँच या छः रोल ही भाषा शास्त्री अभी तक समझ पाये हैं। भविष्य और भाग्य पहले से तय नहीं हैं।

आखिरी बात। क्या जानवर, पक्षी, कीड़े, ये सब भी भाषा का इस्तेमाल करते हैं? जवाब है : हाँ, मगर वैसे नहीं जैसे इंसान करते हैं। तो क्या इंसानों में भाषा का जन्म बन्दरों से इंसान बनने के सिलसिले के साथ हुआ? जवाब है : बेशक, मगर अलग–अलग तरीकों से – इसीलिए रूसी, जापानी, तुर्की जैसी अलग–अलग भाषाएँ बनी। आगे चलकर क्या सभी भाषाएँ मिट कर एक दुनियावी भाषा बन जाएगी? आज तक का जवाब है : कहा नहीं जा सकता। पढ़ के देखो।

बच्चों की भाषा

हममें से कई लोग भाषा को बातचीत का साधन मानने के इतने ज्यादा आदी हो चुके हैं कि हम सोचने, महसूस करने और चीजों से जुड़ने के साधन के रूप में भाषा के इस्तेमाल को अक्सर भूल जाते हैं। भाषा के उपयोग का यह बड़ा दायरा उन लोगों के लिए बेहद महत्वपूर्ण है जो छोटे बच्चों के साथ काम करना चाहते हैं। शिशु के व्यक्तित्व और उसकी क्षमताओं के विकास को आकार देने में भाषा एक विशेष भूमिका निभाती है। एक सूक्ष्म किंतु मज़बूत ताकत की तरह भाषा संसार के हरेक बच्चे के दृष्टिकोण, उसकी रुचियों, क्षमताओं, यहां तक कि मूल्यों और मनोवृत्तियों को भी बनाती है। यह सब कैसे होता है–इस पुस्तक–विशेषतया इस पाठ का यही विषय है।

लेकिन पहले हमें एक ऐसी बात साफ कर लेनी चाहिए जिस पर अक्सर काफी बहस छिड़ी रहती है। स्कूली अध्यापक भाषा के नाम पर 'हिंदी' और 'अंग्रेजी' या अन्य किसी भाषा को एक स्कूली विषय की तरह लेने के आदी हैं। इसलिए वे शायद सोचेंगे कि यह किताब किसी खास भाषा की पढ़ाई के बारे में होगी। दूसरी तरफ विशेषज्ञ हैं जो बच्चे की 'पहली भाषा' और 'दूसरी भाषा' इत्यादि में गहरे भेद करने के आदी हैं। अध्यापक और विशेषज्ञ दोनों सोचते हैं कि भाषा की शिक्षा पर किसी किताब की शुरुआत एक खास भाषा के नियमों, उसकी आम संरचनाओं, शब्दावली इत्यादि के विवरण से होनी चाहिए।

यह सब इस किताब में नहीं है। यह पुस्तक किसी एक खास भाषा के अध्यापन की निर्देशिका कतई नहीं है। 'यह पुस्तक उन जरूरतों के बारे में है जिन्हें कोई भी भाषा बच्चों के जीवन में पूरा करती है।' दुनिया का हर बच्चा– चाहे उसकी मातृभाषा कोई भी हो–भाषा का इस्तेमाल कुछ उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए करता है। एक बड़ा उद्देश्य है दुनिया को समझना, और उस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भाषा एक बढ़िया औजार का काम देती है। जब तक हम बच्चे की निगाह से देखने और बच्चे की जिंदगी में भाषा की भूमिका को समझने में असमर्थ रहते हैं, तब तक हम अध्यापक, माता–पिता या देखरेख करने वालों के रूप में अपनी भूमिका ठीक से तय नहीं कर सकते।

भाषा और काम करना

बच्चों की भाषा का संबंध उन अनुभवों से है जिन्हें वे अपने हाथों और शरीर से स्वयं करते हैं और उन वस्तुओं से भी है जिनके संपर्क में वे आते हैं। बचपन में शब्द और क्रियाकलाप साथ–साथ चलते हैं। क्रियाकलाप और अनुभवों को हजम करने और बयान करने के लिए शब्दों की जरूरत होती है। कोई अनुभव जब पूरा हो चुकता है, उसके बाद भी वह शब्दों के जरिए उपलब्ध रहता है। बच्चे जिन चीजों के संपर्क में आते हैं उनसे और घनिष्ठ संबंध बनाने के लिए वे शब्दों की मदद लेते हैं। दूसरी तरफ, ऐसे शब्द, जो बच्चों के सक्रिय अनुभवों और वस्तुओं से जुड़े नहीं होते, उनके लिए खाली और बेजान रहते हैं। 'बिल्ली', 'दौड़ना', 'गिरना', 'नीला', 'नदी' और 'खुरदरा' जैसे शब्द यदि पहले–पहल किसी क्रियाकलाप या अनुभव के मौके पर में नहीं आएं तो उनका अर्थ बच्चे के लिए बहुत सतही रहेगा। केवल एक सक्रिय अनुभव के बाद ये शब्द एक तस्वीर से जुड़ते हैं और भविष्य में सार्थक इस्तेमाल के लिए उपलब्ध होते हैं।

बच्चे के शारीरिक अनुभवों और शब्दों के बीच यह संबंध बड़ों, विशेषतया अध्यापकों पर एक निराली जिम्मेदारी डालता है। एक अध्यापक के रूप में आप शायद यह उम्मीद करते होंगे कि माता–पिता ने अपने बच्चों को तरह–तरह के अनुभव पहले ही करा दिए होंगे। पर यह बात ज्यादातर माता–पिता पर लागू करना

मुश्किल है। ज्यादातर माता–पिता में या तो इतना विश्वास नहीं होता कि अपनी दिनचर्या में चीजों को देखने और करने की बच्चों की धीमी रफ्तार को जगह दे सकें। बड़े अक्सर काफी परेशान हो जाते हैं अगर बच्चा नल में पानी की धारा से आधे घंटे खेलता रहे या सारे बर्तनों को फर्श पर बिखेर दे या छाते को सैकड़ों बार खोले और बंद करे। कभी–कभी चीजों को या फिर बच्चे को नुकसान या चोट से बचाने की खातिर बड़े कुछ इने–गिने अनुभवों को छोड़कर बाकी पर पाबंदी लगा देते हैं।

माता–पिता ने जो भी किया हो या न किया हो, अध्यापक की जिम्मेदारी साफ है। उसे ऐसा वातावरण पैदा करना है जिसमें बच्चे भाषा को लगातार जीवन के अनुभवों और चीजों से जोड़ सकें। ऐसा करने के लिए ये बातें मददगार होंगीः

- बच्चे स्कूल में कई तरह की वस्तुएं (जैसे पत्तियां, पत्थर, पंख, तिनके, टूटी–फूटी चीजें) लाएं और उनके बारे में बात करें, पढ़ें, लिखें;
- बच्चों से उन अनुभवों के बारें में कहने, लिखने और पढ़ने को कहा जाए जो उन्हें स्कूल के बाहर हुए हैं;
- बच्चों को कक्षा से बाहर ले जाया जाए जिससे वे स्कूल के गिर्द फैली दुनिया की तमाम छोटी–मोटी चीजें (जैसे टूटी हुई पुलिया, कीचड़ से भरा गड्ढा, मरा हुआ कीड़ा, घोंसले में अंडे) बारीकी से देख सकें और उनकी चर्चा कर सकें। स्कूल के पड़ोस की ऐसी खोजी–यात्राएं भाषा सीखने के लिए मूल्यवान सामग्री दे सकती हैं, जैसा कि यह पुस्तक बताएगी।

ऐसे स्कूल में, जहां बच्चे अपने हाथों से तरह–तरह के काम नहीं कर पाते, जहां वे ज्यादातर बैठे और अध्यापक की बातें सुनते रहते हैं, और जहां छूने, उलटने–पुलटने, तोड़ने और ठीक करने के लिए चीजें नहीं होतीं, भाषा के कौशलों का विकास अच्छी तरह नहीं हो सकता।

भाषा क्या–क्या करती है ?

जिन लोगों ने बच्चों की भाषा का अध्ययन किया है, उनके अनुसार बच्चे बातचीत की बुनियादी क्षमता हासिल करते ही भाषा का प्रयोग नाना किस्म के मकसदों के लिए करना शुरु कर देते हैं। इनमें से कुछ मकसद इस प्रकार हैं :

1. अपने काम का संचालन

बच्चे कुछ करने के साथ–साथ उसके बारे में बात करते जाते हैं। यह बात अपनी गतिविधि पर एक तरह की निजी टीका होती है। शायद यह टीका उन्हें अपनी गतिविधि कुछ और देर तक जारी रखने में मदद देती है और उनकी दिलचस्पी बनाए रखती है। इससे फर्क नहीं पड़ता कि टीका कोई सुन रहा है या नहीं। संभव है गीली रेत में सुरंग या किले बनाते हुए छोटे बच्चों के दल में हर बच्चा अपनी टीका अलग चालू रखे। हो सकता है, यह टीका दूसरे को सिर्फ कुछ बुदबुदाहट की तरह सुनाई दे।

तीन से आठ साल के बच्चे को उस वक्त गौर से देखिए जब वह अकेले कुछ कर रहा हो या खेल रहा हो। वह जो कहे, ध्यान से सुनिए। इसी तरह कई और बच्चों को, जिनमें लड़के–लड़कियां दोनों हों और अलग अलग उम्र के हों, देखिए।

क्या आपने उनकी एकांत 'बात' में कोई व्यक्तिगत फर्क पाया? क्या यह 'बात' बच्चों को एक काम में रुचिपूर्वक लगे रहने में मदद देती है? क्यों?

2. दूसरों के क्रियाकलाप और ध्यान का संचालन

भाषा के इस उपयोग से माता–पिता और अध्यापक के रूप में हम अच्छी तरह परिचित हैं क्योंकि हमारा बहुत–सा समय बच्चों की मांगों को पूरा करने में लगता है। अक्सर हम शारीरिक किस्म की मांगों के प्रति सचेत रहते हैं, पर दूसरी तरह की मांगें–जिनमें दिमागी और दिली मांगें शामिल हैं– भी महत्वपूर्ण हैं। बच्चे अजीब या आकर्षक चीजों की ओर ध्यान खींचने के लिए भाषा का इस्तेमाल करते हैं। उन्हें यह उम्मीद रहती है कि जिस चीज ने उनका ध्यान खींचा है, वह उनकी बात सुनने वाले का ध्यान भी खींचेगी।

यदि आप बच्चों की एक टोली को गौर से देखें तो पाएंगे कि वे एक–दूसरे का ध्यान अक्सर किसी ऐसी चीज या किसी चीज की ऐसी विशेषता की बात करके खींचते हैं जिसे, वे सोचते हैं, दूसरा देख न पाया होगा। दूसरों से उम्मीद प्रकट करना ही भाषा के इस उपयोग की विशेषता है : उम्मीद यह कि 'जो मैंने देखा उसे दूसरे भी देखना चाहेंगे।' यह उम्मीद मानवीय संबंधों और साथ–साथ रहने के आनंद की एक गहरी मान्यता पर टिकी है। यदि वह व्यक्ति, जिसका ध्यान खींचा जा रहा है, इस उम्मीद को पूरा नहीं करता है तो भाषा के विकास की बुनियाद को चोट पहुंचती है।

3. खेलना

अधिकतर बच्चों के लिए शब्द ढाई साल की उम्र से खेल और खुशी का एक प्रमुख साधन बन जाते हैं। अलग–अलग स्वर में दुहरा कर, नए रूपों और मौलिक संदर्भों में रखकर बच्चे शब्दों से खेलते हैं और संतुष्ट होते हैं :

'दूध–जलेबी जग्गग्गा
पर इसमें है मग्गग्गा !'
'गुड़िया को बादल में भेज दिया।
अब रोटी खाऊंगी। गुड़िया कल से
रो रही थी।'
'मैं चम्मच में बाल्टी रखूंगा।
उससे कुएं का दूध निकालूंगा !'

गलत जगह पर शब्द का प्रयोग करना उन्हें भाता है। उन्हें ऐसी कविताएं जल्दी से याद हो जाती हैं जिनमें इसी तरह शब्दों की खींचतान की गई हो। मतलब यह है कि छोटे बच्चे शब्दों को खिलौनों की तरह इस्तेमाल करते हैं। शब्दों से खेलना बच्चों की रचनाशक्ति और ऊर्जा को बाहर लाने में अनोखी भूमिका निभा सकता है।

घर के अंदर या गली में अकेले या टोली बनाकर खेलते–रस्सी कूदते, दौड़ते, उछलते, गेंद से टप्पा मारते हुए–बच्चे जो पंक्तियां दुहराते हैं सुनिए। अपने इलाके में बच्चों के पारंपरिक खेलगीत इकट्ठे कीजिए। यदि आपने मेहनत से काम किया तो संभव है कि आप आधुनिक 'मीडिया' और भाषा की रूढ़िग्रस्त शिक्षा के हमले से बच रहे खेलगीतों का एक छोटा–मोटा संग्रह बना सकें।

आपको जो खेलगीत मिलें, उन्हें तरतीब से लिख लीजिए। एक ही गीत के विविध रूपों को ढूंढिए और दर्ज कर लीजिए। आपको जहां व्याकरण की गलती और शब्दावली की खींचतान नजर आती हो, वहां सुधार कतई न कीजिए।

बच्चों के खेलगीत भाषा के बेहद रचनात्मक और ताकतवर इस्तेमाल के निराले स्रोत हैं और वे भाषा के कई बुनियादी कौशल (जैसे पढ़ना) सिखाने के बहुत उपयोगी साधन हैं। उन्हें इस्तेमाल करने के कुछ सुझाव अगले अध्याय में दिए गए हैं।

बच्चों के कुछ पारंपरिक खेलगीतों के नमूने हैं :

सूख सूख पट्टी
चंदन गट्टी
राजा आया
महल चुनाया।
झंडा गाड़ा
बजा नगाड़ा।
रानी गई रूठ
पट्टी गई सूख।

शान्ती मन भान्ती
कहना क्यों नई मानती
पंडित जी बुलाने आए
बस्ता क्यों नहीं बांधती।

'अक्कड़ बक्कड़ बम्बे बो
अस्सी नब्बे पूरे सौ
सौ में लगा धागा
चोर निकल के भागा।'

4. समझाना

बच्चों की बात का मकसद कई बार यह बताना होता है कि कोई चीज कैसे हुई। उदाहरण के तौर पर यदि आप एक बच्चे से पूछें कि बारिश कैसे हुई तो शायद वह आपको बताएगा कि पहले आसमान काले बादलों से घिर गया, फिर छोटी छोटी बूंदें टपकने लगीं, फिर बारिश हुई जो बाद में इतनी तेज हो गई कि कोई चीज दिखाई तक न दे। घटनाक्रम बताकर बच्चा यह समझाता है कि एक बड़ी घटना कैसे घटी।

भाषा के इसी प्रयोग से कहानियां जन्म लेती हैं। इस दृष्टि से कहानियां चीजों की व्याख्या करने का साधन होती हैं। जाहिर है कि सब कहानियां चीजों की विश्वसनीय या वैज्ञानिक व्याख्या नहीं करतीं। वे जीवन की व्याख्या करने की हमारी इच्छा की प्रतीक होती हैं। जिस तरह बड़े, दुनिया की घटनाओं या राजनीति की व्याख्या करने को उत्सुक रहते हैं, उसी तरह छोटे बच्चे भी जिंदगी की घटनाओं को बयान करना चाहते हैं।

कोई चीज क्यों शुरू हुई? यह समझाने वाली कहानियां इकट्ठी कीजिए। इस तरह की कई कहानियां आपको स्थानीय लोक कथाओं में मिलेंगी। बारिश क्यों होती है या आदमी ने आग कैसे ढूंढी–ऐसी एक कहानी नीचे दी गई है जो समझाती है कि हाथियों ने उड़ने की क्षमता कैसे गंवाई। इन कहानियों को भाषा के अध्यापन में काम में लाने के कुछ तरीके 'बात' और 'पढ़ना' शीर्षक अध्यायों में देखिए।

आसमान में हाथी

बहुत पहले एक जमाने में भारत के हाथी उड़ लेते थे। आज की तरह हाथी तब भी बहुत बड़े होते थे। उनका रंग बादलों की तरह सलेटी था। बादल आखिर उनके भाई ही तो थे। बादलों की तरह हाथी भी आसमान में जहां चाहे उड़ सकते थे। बस उन्हें अपने कान फटफटाने की देर थी।

बादलों की ही तरह वे अपना आकार भी बदल सकते थे। वे जो चाहे बन जाते थे–कभी एक राक्षस तो कभी छोटी–सी बिल्ली। वे कभी किले की तरह दिखते तो कभी पहाड़ की तरह और कभी दौड़ते हुए एक कुत्ते की तरह।

गर्मियों के मौसम में एक दिन मोती की तरह चमकते हुए सलेटी हाथी धूप में उड़ रहे थे। वे एक गांव के ऊपर से गुजरे जहां छोटे–छोटे बच्चे खेल रहे थे, एक खेत से गुजरे जहां किसान जुताई कर रहा था, एक नदी पर से गुजरे जहां लड़के भैंसों को नहला रहे थे। वे बातूनी बंदरों से भरे एक जंगल के ऊपर से भी गुजरे।

लेकिन आकाश में बहुत ऊपर बड़ी गर्म हवा की एक लहर बह रही थी। हाथियों को देखकर वह उनके पीछे हो ली और सीधे उनकी सूंड में घुस गई। हवा क्या थी, काली मिर्च थी। हाथी लगे छींकने। छींकते–छींकते परेशान होकर उन्होंने सोचा कि कोई छायादार ठंडी जगह ढूंढ कर थोड़ी देर सुस्ता लें। उनके ठीक नीचे आम के बड़े–बड़े पेड़ थे। उनके नीचे ठंडक थी, छाया भी थी और आमों की बढ़िया खुशबू थी। गर्म हवा से बचने के लिए हाथी आहिस्ता से आम के सबसे बड़े पेड़ पर जा उतरे।

संयोग की बात थी कि उसी पेड़ के नीचे एक मास्टर जी और उनके छात्र बैठे हुए थे। स्कूल के अंदर उस दिन बहुत ज्यादा गर्मी थी। मास्टर जी थके हुए थे और बच्चे थे एकदम बेचैन। वे अपनी पेंसिलें तोड़ते, सारे सवाल गलत करते, फिर खुसफुसाते, हंसते और नन्हें चूहों की तरह कुलबुलाते। वे एक क्षण को आराम से नहीं बैठ पा रहे थे।

मास्टर जी परेशान हो गए। पैर जमीन पर ठोककर उन्होंने अपना डंडा हवा में घुमाया और बच्चों पर बरस पड़े। तभी अचानक उन्हें ख्याल आया–'अगर ये बच्चे नहीं संभलते हैं तो मैं एक जादूमंत्र बोलकर इन सबको खरगोश बना दूंगा!'

उन्होंने सबसे शरारती बच्चे को पकड़ने के लिए अपनी बांह बढ़ाई। उसी समय हाथी आसमान से नीचे उतरे और अध्यापक के ठीक ऊपर वाली डाल पर आ बैठे।

अर्र..र..र..र..कर्र..र..र..धड़ाम !

डाल टूटकर मास्टर जी पर आ गिरी। मास्टर जी भी गिर पड़े, पर हाथियों ने इसकी कोई परवाह नहीं की। वे चुपचाप अपने कान फटफटा कर अगले पेड़ की तरफ चल दिए।

उन्हें उड़कर जाता देख अध्यापक उठ खड़े हुए और हाथियों पर चिल्लाए–'बुरे हाथियों! मैं तुम्हें मजा चखाता हूँ। मुझे गिराने की हिम्मत! मैं तुम्हें अभी बताता हूँ।' अध्यापक ने अपना डंडा घुमाया और एक जादूमंत्र बोला।

धीमे से सारे हाथी जमीन पर उतर गए। वे उड़ना भूल गए। और उस दिन से हाथी जमीन पर चलते हैं। जब वे आसमान में बादलों को उड़ता देखते हैं, उन्हें ज़माना याद आता है, जब वे खुद उड़ लेते थे, जैसे चाहे दिखने लगते थे, जहां चाहे चले जाते थे।

5. जीवन को बयान करना

भाषा का यह काम उसके सारे अन्य कामों में शामिल है पर यदि हमने उसे अलग से नहीं जांचा तो संभव है हम उसे चूक जाएं। बड़ों की तरह बच्चे अक्सर भाषा का प्रयोग बीते हुए को याद करने के लिए करते हैं–कोई घटना, व्यक्ति या कोई छोटी–मोटी चीज। जो चीज अब हमारे आसपास है, उसे हम शब्दों के जरिए फिर पैदा कर सकते हैं और इस तरह हम जो रचते हैं वह कई बार इतना यथार्थ दिखता है कि हम उस पर लंबे समय तक बातचीत कर सकते हैं।

बच्चे अक्सर चीजों और अनुभवों को इसलिए बयान करते हैं कि उन्हें स्वीकार कर सकें (शायद किसी गहरे भावनात्मक स्तर पर)। किसी चीज से डरा हुआ बच्चा उसके बारे में बीसियों बार बताता है जब तक वह अपने भीतर उसके लिए जगह नहीं बना लेता। खास तौर से जब बच्चा किसी नई बात से चौंकता है तो उसे आम चुनावों में शामिल करने के उद्देश्य से कई बार दोहराता है। चौंधाने वाली घटना में जो अनिश्चय, भ्रम और कई बार डर छिपा रहता है, वह उसे दुहराने से दूर हो जाता है।

6. जुड़ना

जब हम किसी की कहानी सुनते हैं–जो उसके अपने या किसी दूसरे व्यक्ति के अनुभव पर आधारित होती है–तो हम उस कहानी के चरित्रों और घटनाओं से स्वयं को जोड़ने की कोशिश करते हैं। कहानी से जुड़ने की खातिर हम अपनी मौजूदा जिंदगी और यहां तक कि अपने पिछले सीमित अनुभवों को लांघ जाते हैं। जब कोई बच्चा किसी खिलौने की भावनाओं की चर्चा करता है तो वह स्वयं को खिलौने की स्थिति में रख रहा होता है। दूसरे पर क्या बीत रही है, यह हम भाषा के जरिए अनुभव कर सकते हैं।

7. तैयारी

बातचीत का विषय बहुत बार ऐसी घटनाएं होती हैं जो अभी घटी नहीं हैं और उनमें कुछ ऐसी भी होती हैं जो शायद कभी न घटें। बच्चे कई बार अपने डर, अपनी योजनाएं, अपेक्षाएं और अजीब परिस्थितियों में क्या होगा, इस पर अपने विचार प्रकट करते हैं। भविष्य की तस्वीर रचने में शब्द उनकी मदद करते हैं। कभी–कभी यह तस्वीर भविष्य को साकार बनाने में मदद करती है कभी ऐसा भी होता है कि यह तस्वीर उन्हें भविष्य का सामना करने की ताकत देती है।

8. पड़ताल और तर्क

हरेक स्थिति में एक उलझन छिपी होती है जिसे हल करने के लिए छोटे बच्चे को यह ढूंढना पड़ता है कि अमुक चीज़ अपने मौजूदा रूप में क्यों है। कई प्रश्न ऐसे होते हैं जिसका उत्तर छोटा बच्चा सफलतापूर्वक ढूंढ सकता है। जैसे, बस एकाएक क्यों रुकी? या उसे ठंडे पानी से नहाना क्यों पसंद नहीं है? तीन साल का बच्चा इन उलझनों को समझ सकता है, हालांकि यह जरूरी नहीं कि सब बच्चे किसी बात का सही कारण साफ–साफ बतला सकें। प्रायः वे बच्चे ऐसा कर पाने में समर्थ होते हैं जिन्होंने बड़ों को भाषा के सहारे किसी चीज़ की पड़ताल करते या तर्क करते सुना हो या जिन्हें ऐसा करने के लिए भरोसा मिला हो।

ऊपर दी गई समस्याओं के अलावा कई समस्याएं ऐसी होती हैं जिन्हें छोटा बच्चा 'वैज्ञानिक' अर्थ में नहीं सुलझा सकता। उदाहरण के लिए 'बारिश' क्यों होती है 'बहुत तेज़ हवा से पेड़ क्यों गिर जाता है जैसे सवालों का सही हल चार–पांच वर्ष के बच्चे की पहुंच के बाहर है। इसके बावजूद, ऐसी समस्याएं भी पड़ताल के लिए भाषा के प्रयोग के बहुत उम्दा मौके उपलब्ध करा सकती हैं। इससे फर्क नहीं पड़ता कि दिया गया कारण सही है या नहीं। महत्व इस बात का है कि बच्चा भाषा का इस्तेमाल तर्क करने, किसी नई बात को बूझने के लिए करे। भाषा से यह काम लेते बड़ों को कोई बच्चा जितना अधिक सुनेगा, भाषा का यह काम उतना ही बच्चे की पहुंच के भीतर आता जाएगा।

भाषा के जिन आठ कामों की चर्चा अभी हमने की है, क्या आप उन्हें पहचान सकते हैं?

अपनी परीक्षा लेने के लिए बच्चों की बातचीत के इन आठ उदाहरणों को भाषा के आठ कामों के तहत रखिए:

1. **बादल चले गए। बारिश रुक गई।**
2. **मैं जाऊंगा जम्मा। वहां मिलेगा मम्मा।**
3. **इस तरह नहीं। ये देखो घुंडी।**
4. **पानी रोज़ सवेरे इतने सारे घरों में कैसे पहुंच जाता है?**
5. **मैं इस कप को यहां रखूंगा। फिर रामू को आवाज दूंगा।**
6. **वे मिठाइयां बिल्कुल वैसी हैं जैसी जीत चाचा लाए थे।**
7. **दिवाली पर मुझे नई कमीज मिलेगी।**
8. **बिल्कुल बाजार जैसा था। इतनी सारी बत्तखें इतना शोर मचा रही थीं।**

हमारी बात का असर हम पर ही पड़ता है

बच्चों के जीवन में भाषा की तरह–तरह जिम्मेदारियों की इस चर्चा से एक बात यह साफ होती है कि भाषा एक बेहद लचीला माध्यम है। हम उसे जीवन की किसी भी परिस्थिति के अनुसार ढाल सकते हैं। उसे अपनी जरूरत के अनुसार ढाल कर हम परिस्थिति को भी अपने अधिक अनुकूल बना लेते हैं। रोज़ाना की जिन्दगी में इसके उदाहरण ढूंढे जा सकते हैं। जब हम किसी से नाराज़ होते हैं तो अपने गुस्से को प्रकट करने के लिए वे शब्द व स्वर चुनते हैं जो परिस्थिति पर हमारी इच्छा के अनुसार असर डालें। लड़ने की इच्छा हो तो हम कड़े शब्दों का प्रयोग करते हैं। मामले को शांत करना हो तो नरम शब्दों और धीमे स्वर से काम लेते हैं।

हम कह सकते हैं कि **भाषा को लचीले ढंग से इस्तेमाल करने की क्षमता काफी हद तक यह तय करती है कि जीवन की विभिन्न स्थितियों का सामना हम किस तरह करेंगे।** एक स्तर पर हमारी भाषा किसी स्थिति में हमारी प्रतिक्रिया प्रकट करती है। एक अन्य स्तर पर हमारी भाषा उस स्थिति को, जिससे हम जूझ रहे हैं, प्रभावित भी करती है। हमारे इर्दगिर्द हर वक्त जो कुछ हो रहा होता है, भाषा उस सबसे निपटने में हमारी सहायता करती है। हम चाहे उस सब में स्वयं शरीक हों या सिर्फ उस पर विचार कर रहे हों, भाषा की मदद हमें दोनों दशाओं में मिलती है।

हम किसी घटना के प्रत्यक्ष गवाह हों या न हों उस घटना को प्रस्तुत करने के लिए इस्तेमाल की गई भाषा हमारी प्रतिक्रिया पर असर डालती है। हजारों चीजें रोज़ हमसे बहुत दूर स्थित जगहों पर होती रहती हैं। ये चीजें हम तक अखबार की खबर के रूप में पहुंचती हैं। एक तरह से अखबार हमें किसी घटना की तस्वीर बनाने में मदद देता है, उसी तरह जैसे एक बच्चा सड़क पर कोई चीज़ देखकर अपनी मां को बताए। अखबार या बच्चे द्वारा बनाई गई तस्वीर उतनी ही वास्तविक या सही होगी जितनी सही तस्वीर बनाने के लिए प्रयोग की गई भाषा होगी। कोई बयान कितना सही है, यह प्रायः बयान देने वाले के इरादे पर निर्भर होता है – यानी सटीकता में हमेशा कमी–बेशी रहना स्वाभाविक है। यदि बच्चा एक दुर्घटना देखकर डर गया है तो संभव है कि वह उसे कुछ बढ़ा–चढ़ाकर प्रस्तुत करें। बढ़ा–चढ़ाकर कहने से वह अपने डर को सही साबित करता है और इस तरह उस दृश्य से, जिसे उसने देखा है, समझौता करने में समर्थ होता है।

आखिरी बात यह है कि भाषा हमारी उम्मीदों पर असर डालती है। चीजों को धीरज से समझाने का शौकीन आदमी दूसरों में भी ऐसी ही अपेक्षा करता है। इसी प्रकार चीज़ों की गहराई से पड़ताल करने वाला व्यक्ति उम्मीद करता है कि दूसरे उसकी पड़ताल में रुचि लेंगे। इस तरह के व्यक्ति पड़ताल और व्याख्या के लिए भाषा का प्रयोग करके एक ऐसा वातावरण रचते हैं जिसमें व्याख्या और पड़ताल महत्वपूर्ण काम माने जाते हों। इसके विपरीत यदि किसी संस्था या समुदाय में भाषा का प्रयोग इन उद्देश्यों के लिए नहीं किया जाता हो तो वहां बड़े हो रहे बच्चों को ध्यान से कोई बात समझाने या धैर्यपूर्वक तर्क करने की आदत शायद ही पड़ सके। यदि माता–पिता और अध्यापक भाषा का इस्तेमाल मुख्यतया बच्चों को काबू में रखने के लिए करते हों तो यह स्वाभाविक है कि बच्चे भाषा को काबू करने का साधन मानने लगेंगे। यह बहुत संभव है कि बड़े होकर वे ऐसा कोई काम न करना चाहें जिसके लिए उन्हें आदेश न दिया गया हो।

हमने इस पाठ की शुरूआत इस प्रश्न के साथ की थी कि भाषा बच्चे के व्यक्तित्व–उसकी दृष्टि, क्षमताओं, मनोवृत्तियों, रुचियों और मूल्यों–को क्यों प्रभावित करती है। इस प्रश्न का उत्तर अब हम यह कह कर दे सकते हैं कि भाषा बच्चे के व्यक्तित्व को इसलिए प्रभावित करती है क्योंकि **बच्चा भाषा द्वारा रचे गए वातावरण में जीता और बड़ा होता है**। इस वातावरण को बनाने में अध्यापक काफी योग देता है। यदि अध्यापक बच्चे के जीवन में भाषा के विभिन्न कार्य क्षेत्रों के प्रति संवेदनशील है तो वह बच्चे की बौद्धिक और भावनात्मक जरूरतों के अनुकूल कदम उठा सकता है। अलग–अलग अवसरों पर बच्चे द्वारा प्रयोग की गई भाषा पर अध्यापक की प्रतिक्रिया बहुत महत्वपूर्ण होती है। यदि प्रतिक्रिया दिखाती है कि अध्यापक बच्चे द्वारा एक खास ढंग से प्रयोग की गई भाषा का उद्देश्य समझ रहा है तो ऐसी प्रतिक्रिया भाषा–प्रयोग के उस ढंग को और समृद्ध बनाएगी। इसके विपरीत यदि अध्यापक की प्रतिक्रिया 'सही' और 'गलत' के संबंध में किन्हीं धारणाओं पर आधारित हो तो वह बच्चे की स्वतंत्र अभिव्यक्ति और संवाद–क्षमता के रास्ते में बाधा खड़ी करेगी।

अपना सिर थपथपाना व पेट को मलना

– जीन एचिसन
Articulate Mammal

मनुष्यों में एक और तरह का जैविक अनुकूलन होता है जो अपने आप स्पष्ट रूप से नहीं दिखता। लेकिन गहराई से सोचने पर यह काफी चौकाने वाला अनुकूलन है। अनुकूलन का अर्थ तो साफ है, वह है सफल होने के लिए परिस्थितियों के अनुरूप अपने आप को ढालना। हम यहाँ जिस अनुकूलन की तरफ इशारा कर रहे हैं वह हर समय बातचीत करने में सामने आता है। अगर हम इस बारे में सोचें कि बोलते समय हम क्या करते हैं, तो यह बात ज्यादा समझ आएगी। बोलते समय ध्वनि उत्पादन में और कही गई बात को समझने में बहुत सारी व तरह–तरह की प्रक्रियाएँ/एक साथ जुड़कर काम करती है (लेशले 1951)।

बातचीत की चर्चा को और खोलने से पहले यह देखना उपयुक्त होगा कि जैविकीय गतिविधियों में एक साथ कई कार्य एक साथ करना कितना सरल अथवा कितना मुश्किल होता है।

स्कूल जाने की उमर वाले बच्चे भी जान जाते हैं कि एक साथ अपने सिर को थपथपाना और पेट को मलना बहुत मुश्किल है। अगर आप भी प्रयास करे तो महसूस कर सकेंगे। आप अपनी जीभ को मुँह के एक तरफ से, दूसरी तरफ हिलाने का प्रयास करें और टाँगों को एक के ऊपर एक रखें और फिर साथ–साथ रखें (Cross-uncross) तो आप महसूस करेंगे कि यह संभव नहीं है। और इसके साथ–साथ ही अगर आप कोशिश करें की आपके हाथ आपके सिर को थपकाएँ और पेट को मलें तो यह पूरा काम नामुमकिन हो जाएगा। करतब दिखाने वाला नट ज़रूर अपनी नाक पर बोतल रखकर, टखनों में रिंग घुमाते–घुमाते हाथों में सात थालियों को हवा में रख सकता है– पर इन सबके लिए उसने पूरी जिंदगी अभ्यास में खर्ची होगी। और यह भी हर कोई उतने अभ्यास से भी यह करना नहीं सीख सकता और यह कार्य कितना अस्वाभाविक है, इसी से साबित हो जाता है कि नट अपना यह हुनर दिखाकर अच्छा खासा पैसा कमा पाता है।

अगर हम ध्यान से सोचे तो भाषा बहुत सारी प्रक्रियाओं के एक साथ होने से व उनमें जुड़ाव कर पाने से उत्पन्न होती है। इन प्रक्रियाओं को देखने से लगता है कि यह सब कई मायने में एक नट के करतबों से ज्यादा पेचीदा है।

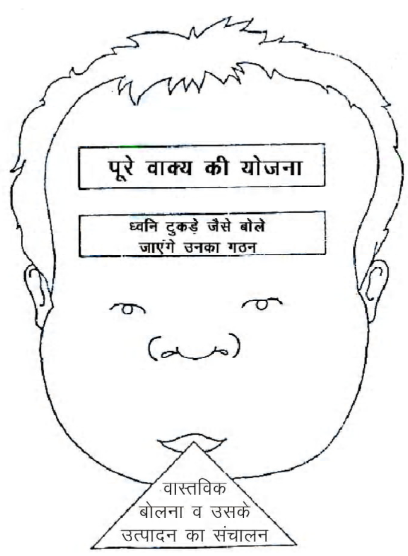

भाषा उत्पादन में कम से कम तीन प्रक्रियाएँ एक साथ होती हैं – पहली प्रक्रिया है– ध्वनि का उत्पादन, दूसरी है– आगे आने वाले वाक्यांशों की ध्वन्यात्मक तैयारी (याने उसमें शामिल आवाजों के बारे में सोचना), तीसरा, शेष वाक्य की रचना की योजना व मन में उसका प्रतिपादन। इनमें से प्रत्येक प्रक्रिया जितनी दिखती है, उससे अधिक जटिल है। शब्दों के उच्चारण में निहित जटिलताएँ एकदम से हमें समझ में नहीं आतीं। उदाहरण के लिए ये माना जाता है कि अंग्रेजी में 'गीज़' (Geese) बोलते समय, पहले 'ग' बोला जाएगा फिर 'ई' की आवाज़ होगी और फिर 'ज़'। परन्तु गीज़ बोलने में इससे कहीं ज्यादा होता है।

पहली बात तो यह है कि 'ग' की आवाज़ जो 'गूज़' में है वह 'गीज़' में ग की आवाज़ से बहुत फर्क है, यह अंतर 'ग' पर लगने वाली मात्रा से निर्धारित होता है। बोलने वाला पहले से ही 'ई' या 'ऊ' का अनुमान

अनजाने में (Sub consciously) करता है। आगे आने वाली मात्रा कौन सी है यह सोच कर वह उसके अनुसार 'ग' की आवाज़ को परिवर्तित कर लेता है। इसी तरह की एक और बात जो हम अनजाने में सफलतापूर्वक करते रहते हैं वह है "Geese" में बोली जाने वाली ध्वनि को "Geyser" (गीज़र) के स्वर से छोटा करना। (आप यह भी देख रहे हैं कि इसका संबंध लिखने के ढंग से भी उतना सीधा नहीं है जितना हम मानते हैं। "Geyser" में "y" की ध्वनि में और yellow में "y" की ध्वनि बहुत फर्क है)

अतः यह स्पष्ट है कि बोलने वाला अलग–अलग अवयवों हिस्सों का क्रमवार उच्चारण भर नहीं करता बल्कि कही उससे ज्यादा करना होता है।

1 2 3
G EE SE

वह आपस में गुंथी व जुड़ी ध्वनियों को निकालने के लिए परस्पर व्यापन करती हुई क्रियाओं की श्रृंखला बनाता जाता है, जिसमें बाद में आने वाली ध्वनि पहले आने वाली ध्वनि पर काफी प्रभाव डालती है।

G..
EE..
SE..

इस परस्पर व्यापन के लिए तंत्रिकाओं और पेशियों में अच्छा खासा तालमेल आवश्यक है, विशेषकर इसलिए कि बोलने की गति काफी तेज़ होती है। एक सामान्य व्यक्ति प्रायः 200 ध्वनि के टुकड़े (Syllable) प्रति मिनट बोलता है। बोलने के साथ–साथ ही वह अगले 2–3 शब्दों वाले वाक्यांश को भी अपने दिमाग में रचकर बोले जाने के लिए सक्रिय कर रहे होते हैं।

ध्वन्यात्मक रूप में इसका उदाहरण हमें तब देखने को मिलता है जब जीभ फिसल जाने से कोई ध्वनि जो किसी ध्वनि के बाद में आने वाली है, पहले ही बोल दी जाती है और दूसरी बाद में। जैसे– किसी ने ओसामा बिन लादेन छिपा है के बजाए ओबामा सिन लादेन छिपा है कह दिया। या जैसे किसी ने कहा "On the nerve of vergeous breakdown" जब वो कहना चाहता था "On the verge of a nervous breakdown" पर उन्होंने 'nerve' को ज़रूरत से पहले सक्रिय कर दिया।

आप जरा इन शब्दों को देखें Nervous verge of a breakdown ओसामा, लादेन, बिन, है, छिपा अगर मानव 2–4 शब्द समूहों के टुकड़ों को ही एक बार में बोलते तो पूर्व तैयारी कर पाना इतना आश्यर्चजनक नहीं लगता। हैरान करने वाली बात यह है कि आगे आने वाली ध्वनियों को सक्रिय करने की प्रक्रिया और लम्बी–चौड़ी बात की तैयारी एक साथ चलती है। जरा सोचिए बोलते वक्त हम एक साथ कितने वाक्यांश बोल देते हैं। लैनबर्ग (1967, p. 107) इसकी तुलना मोज़ैक जैसी कलाकारी (छोटे–छोटे टुकड़ों से बनी तस्वीर या आकृति) से करते हैंः समझ में आने वाली बात में शामिल शब्दों की ध्वनि श्रृंखला एक ऐसा क्रम अथवा पैटर्न (Pattern) है जिसकी तुलना मोज़ैक जैसी कलाकारी से की जा सकती है। मोज़ैक एक–एक छोटे पत्थर को देखकर उस रूप व पूरे ढाँचे की कल्पना के आधार पर सही जगह देख कर लगाया जाता है। बोलने की प्रक्रिया कुछ–कुछ उससे मिलती है। पत्थर जमाना शुरू करने से पहले ही जैसे आकृति पूर्ण रूप में कलाकार के दिमाग में बन चुकी होती है वैसी ही या उससे कुछ आगे तक की योजना बोलने वाले के दिमाग में बनती रहती है। (मोज़ैक के कलाकार को अपनी कल्पना का स्वरूप एक बार तय करके आगे बढ़ना होता है, किन्तु बोलने वाले को उसमें नित सुधार भी करना हो सकता है।)

Syllable – क्या होता है? ....
वाक्यांश – क्या होता है? ....

कभी–कभी वाक्य सरल होते हैं। उन की बनावट में कोई जटिलता नहीं होती। सभी हिस्से भी व अर्थ भी स्पष्ट उभर कर आते हैं, जैसे "The baby fell down stairs" "The cat was sick" And I have resigned, ''बच्चा सीढ़ियों से गिर गया, बिल्ली बीमार थी और मैंने इस्तीफा दे दिया है।'' इन को समझना व बोलना सरल प्रतीत होता है। किन्तु कभी कभार वाक्य काफी पेचीदा भी होते हैं। इनमें वक्ता और श्रोता दोनों को उपवाक्यों की परस्पर निर्भरता (interdependencies) को याद रखना पड़ता है। उदाहरण के तौर पर यदि इस तरह का वाक्य है कि, बच्चा सीढ़ियों से गिर गया या बिल्ली बीमार हुई तो मैं या तो इस्तीफा दे दूँगा या पागल हो जाऊँगा। (If either the baby falls down stairs or the cat is sick, then I shall either resign or go mad). यहाँ, 'तो' 'यदि' पर आश्रित होगा तो वाक्य पूरा नहीं होगा। और इसी तरह 'या' (either) के साथ एक और या (or) का आना अनिवार्य है। इसके साथ 'Falls' अथवा 'गिरने' का कौन सा रूप उपयोग होगा यह शिशु अथवा उसके स्थान पर जो है उससे जुड़ा होगा। इसी तरह 'थी' (was) के रूप को बिल्ली के अनुसार ही होना होगा। स्पष्टतः यह पूरा वाक्य इसकी हुबहू छवि, और उसके लक्षणों के साथ पहले ही बन गया होगा। इसके बनने का क्रम योजनाबद्ध होगा।

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि इंसानों की बातचीत में शामिल होकर बोलने के लिए लगातार योजना बनाते रहना व बोलते रहना ज़रूरी है। यह दोनों साथ–साथ कर पाने की क्षमता इस हद तक है कि यह माना जा सकता है उन्हें, इसी तरह के समन्वयन के लिए विशेष तौर पर बनाया गया हैं।

परन्तु फिर भी यह सोचना होगा कि इसमें किस–किस तरह के तरीके शामिल हैं? यह कैसे होता है? कैसे मनुष्य कथनों को सार्थक ढंग से बोल पाते हैं? और सोचते–सोचते भी सही क्रम में बोलते चलते हैं? क्यों वह इन्हें गड्ड–मड्ड नहीं कर देते? लगभग सभी लोग RABBIT को सही ढंग से Rabit ही कैसे बोल पाते हैं, वे उसे BARIT या TIRAB क्यों नहीं बोलते? यह ध्यान देने योग्य बात है कि जिन लोगों के दिमागों को कोई भी क्षति हुई है, वे अकसर ऐसा बोल जाते हैं।

लैनबर्ग (1967) सुझाते हैं कि बोलने का सही क्रम ऐसे नियमों के तहत होता है जो लयबद्ध हैं। यह सभी बोलियों में मदद करते हैं। यह तो सब जानते हैं कि पद्य को याद रखना गद्य को याद रखने से सरल होता है क्योंकि पद्य में एक अंतर्निहित लय होती है।

I wandered lonely as a cloud
(ti-tim - ti-tum- ti-tum - ti-tum)
That floats on High O'er vales and Hells
(ti-tim - ti-tum- ti-tum - ti-tum)

ऐसा भी हो सकता है कि मनुष्य की भाषा में कोई अंतर्निहित जैविक ताल (Biological 'beat') हो, ऐसी ताल जो उसे लय आधारित उचित क्रम बनाने में सहायक हो। इस ताल के टूट जाने से ही भाषा असंयमित तेज़ रफ्तार से बोली जाने लगती हो (जैसे पार्किन्सन्स की बीमारी में)। लैनबर्ग सुझाते हैं कि भाषा उत्पादन में एक सेकण्ड का 1/6वाँ हिस्सा समय की आधार इकाई है। यह अंदाज़ा उन्होंने कई प्रयोगों के आधार पर बनाया है। इसमें एक तथ्य जो शायद हम सब परख सकते हैं वह यह है कि सामान्य गति से बोलने में 6 स्वतंत्र ध्वनि टुकड़े (syllable) एक सेकण्ड में बोले जाते हैं। हालाँकि इन में से कई सूक्ष्म पहलुओं व बारीक बातों पर अभी अटकलें ही लगाई जा रही हैं।

हमें भले अभी विस्तृत जानकारी नहीं हो पर मोटी तस्वीर स्पष्ट है। भाषा के प्रति जिस तरह का शारीरिक अनुकूलन इंसान का है, वैसा पेड़, पौधे या बंदर का नहीं है। हमारे वाक् अंग, फेफड़े, दिमाग, आदि भाषा की बारीकियों को समझने व उपयोग करने के लिए, वैसे ही तैयार हैं जैसे बंदर पेड़ पर चढ़ने के लिए तैयार हैं।

रेमण्ड स्कुपिन 2005
भाषा का मानव विज्ञान विश्व स्तरीय परिप्रेक्ष्य प्रिन्टिस हॉल

भाषा एक प्रतीकों का व्यवस्थित ढांचा है। इस व्यवस्था में बने प्रतीकों का कुछ मान्य अर्थ होता है। इन प्रतीकों से बनी भाषा द्वारा ही एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक सांस्कृतिक विचार व धरोहर संचारित होती है। भाषा के द्वारा समाज के लोग एक–दूसरे से बातचीत कर सकते हैं। यह संस्कृति का एक अहम हिस्सा है। भाषा इंसान की मदद करती है कि वह एक दूसरे को बता सकें कि उनके क्या अनुभव रहे हैं, वे क्या अनुभव कर रहे हैं और उनकी भविष्य को लेकर क्या योजनाएं हैं। संस्कृति की तरह ही, भाषा इंसान के पैदा होने से पहले ही उपस्थित रहती है और सारे लोग इसे आपस में सामूहिक रूप से बांटते हैं। अमरीका में पैदा होने वाला बच्चा अंग्रेजी भाषा के संपर्क में आता है, रूस में पैदा होने वाला, रूसी से। इस तरह भाषाएं अलग–अलग समाजों में प्रतीकात्मक समझ के लिए एक संदर्भ प्रदान करती हैं। इस मायने में भाषा संस्कृति का हिस्सा है जो इंसान को अनुभावातीत करता है। भाषा के बिना लोगों को संस्कृति संचारित करने में परेशानी होगी। संस्कृति के बिना मानव अपनी अद्वितीय मानवता खो देंगे।

भाषाविद जब भाषा की बात करते हैं तो उनका मतलब बोली हुई भाषा से होता है, लेकिन 'बोली' भाषा संप्रेषण का एक आकार है। संप्रेषण का मतलब है एक दूसरे को जानकारी देना। इस अध्याय में हम पढ़ेंगे कि जानवरों में भी कुछ–कुछ संप्रेषण करने की क्षमताएँ होती हैं। हम यह भी जानेंगे कि इंसान भाषा के अलावा अन्य तरीकों से भी एक दूसरे से संप्रेषण कर सकते हैं।

अमानव संप्रेषण

बंदरों को चिह्न सिखाना

मनोवैज्ञानिकों और अन्य वैज्ञानिकों ने जीव–जन्तु संप्रेषण पर बहुत शोध किया है। सबसे ज्यादा रोचक व विवादास्पद शोध वन मानुष (Chimpanzee) व गोरिल्ला पर किया गया है जो शारीरिक व विकास के स्तर के रूप में इंसान के करीब है। ऐलन (Allen) और बियेट्रीस गार्डनर (Beatrice Gardner) ने 1966 में एक वनमानुष (Chimpanzee) को, जिसका नाम वाशो था, गोद लिया व उसे 'चिह्न भाषा' भाषा का अमौखिक आकार जो बहरे लोग इस्तेमाल करते हैं सिखाने लगी – बहुत वर्षों बाद, Washoe ने सौ से भी अधिक चिह्न सीख लिए। यह एक चिपांजी के लिए सराहनीय, यहाँ तक की अप्रत्याशित उपलब्धि थी, जिसने इस धारणा को ललकारा कि सिर्फ इंसान में ही चिह्न या 'प्रतीक' सीखने की क्षमता है। (Gardner and Gardner, 1969)

1970 में यर्कस (Yerks) रीजनल प्राइमेट रिसर्च सेन्टर, एमेरी विश्वविद्यालय, एटलांटा, जियोरजिया में 'लाना' नाम की चिपांजी को एक ऐसा कम्प्यूटर 'की–बोर्ड' दिया जिसमें चिह्न को अलग–अलग ढंग से दर्शाया गया या इस 'की–बोर्ड' से इनपुट देकर 'लाना' संप्रेषण करना सिखी। शोधकर्त्ताओं ने यह पाया कि 'लाना' कम्प्यूटर के चिह्नों को सीख कर उनका उपयोग कर सकती थी। उसने खीरे को एक 'हरा केला' बताया और संतरे को संतरी' रंग का सेब (Rumbaugh, 1970) वनमानुष विशेषज्ञ रोजर फाउट्स (Roger Fouts) ने उसी तरह का कार्य तीन और चिपांजी के साथ किया जिस तरह का कार्य गार्डनर (Gardner) ने वाशो (Washoe) के साथ किया था। उन्होंने पाया कि यह चिपांजी कुछ खास तरह के शब्द/वर्ग खाने के लिए उपयोग करते हैं जैसे वे अजवाइन के लिए (Celery) पाईप फूड, खरबूजे के लिए ''कैंडी ड्रिंक'' और

मूली जिसे पहले वाशो ने चखा था, उसने नाम दिया ऐसा खाद्य जिसे खाने पर दर्द व रोना आता हो यानि दर्द रोना खाना (hurt-cry-food) (Budd, 1979).

एक और जाने माने शोध अध्ययन में फ्रेनसीस पैटरसन (Francine Patterson) ने 'कोको' नामक एक मादा गोरिल्ला को चिह्न भाषा के 170 शब्द सिखाए। कोको को विश्व का बात करने वाला पहला गोरिल्ला माना गया। चार साल की उम्र में कोको को Stanford-Binet Intelligence test दिया गया जिसमें उसने 85 अंक प्राप्त किये जो कि एक औसत इंसान से बस थोड़ा ही कम है। पैटरसन ने बताया कि कोको ने अफ्रीका में जिस तरह उसको पकड़ा गया था उसकी कहानी भी सुनायी। इसी के साथ कोको ने झूठ बोलने, कसमखाने, मजाक करने व चिन्हों को नये व सृजनात्मक तरीके से जोड़ने की क्षमता भी दर्शायी।

वानर चिह्न भाषा का पुनः परीक्षण

वनमानुषों द्वारा भाषा के उपयोग के संबंध में किये गये इन अध्ययनों ने मानव व अन्य जानवरों के बीच दूरी को लेकर जो धारणाएँ थी उनके बारे में कई सवाल खड़े किये? लेकिन इन अध्ययनों की आलोचना भी की गयी है। आलोचना का एक स्रोत कोलंबिया विश्वविद्यालय में हर्बट टैरेस (1986) द्वारा किये गये अध्ययन पर आधारित है। टैरेसे ने निम नामक चिपांजी को प्रशिक्षित करते हुए इस संदर्भ में हुए पूर्व अध्ययनों की पुनः जाँच शुरू की। इस हेतु उसने पूर्व के भाषायी सत्रों के विडियोटेप जिनमें चिपांजी को भाषा सिखाने की कोशिश की गई थी उनका ध्यान से अवलोकन किया। वह यह देखना चाहता था कि इन सत्रों में प्रशिक्षण के किन तरीकों को अपनाया गया, उन्होंने क्या प्रशिक्षु द्वारा चिपांजी को कोई दिशा निर्देश दिये गये इत्यादि। उसने चिपांजियों के बीच संप्रेषण से संबंधित कई अन्य विडियोटेप का भी अध्ययन किया। टैरेस (Terrace) के निष्कर्षों ने पहले के कुछ अध्ययनों पर कई प्रश्न खड़े किये। विडियोटेप के विश्लेषण ने यह स्पष्ट किया कि न ही निम ने चिह्न व्यवहार की कभी पहल की और न ही दूसरों के सांकेतिक व्यवहार का जवाब ही दिया। 50 प्रतिशत चिह्न तो सिर्फ नकल ही थे। निम ने न तो यह सीखा संचारण या संवाद दो तरफा होता है और न ही उसने बिना किसी पुरस्कार के कभी भी कोई चिह्न दिखाया। उसने किसी भी अन्य चिपांजी जिसे चिह्न – भाषा 'सिखाई' गई थी से बात करने की कोशिश भी नहीं की। उसने सिर्फ उसे ही चिह्न दिखाए, जिसने उसे सिखाया था। यह भी पता चला कि प्रेरक ने अनजाने में चिपांजी को शारीरिक इशारे भी दिए थे।

टैरेस (Terrace) के निष्कर्षों से यह साफ स्पष्ट हुआ कि यह तो माना जा सकता है कि चिपांजी एक बहुत बुद्धिमान जानवर है जो बहुत से चिह्न सीख सकता है। लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि वह वाक्य बनाना और व्याकरण के नियम उपयोग करना, जो एक अर्थपूर्ण वाक्य बनाने में मदद करते हैं, समझ सकता है। अंग्रेजी सीखने वाला बच्चा आसानी से वाक्यों में संज्ञा, कर्त्ता व कर्म (object) के स्थान पर आने वाले शब्दों में फेर बदल कर नये वाक्य बना सकता है। चिपांजी न तो इस तरह के नियम सीख सकते हैं, और न ही वाक्य बना सकते हैं। चिपांजी की बुद्धिमता सराहनीय होती है लेकिन इंसान की तरह वाक्य बनाने की व्याकरण–सम्मत क्षमता नहीं होती।

टैरेस (Terrace) के काम ने वानर भाषा के विवाद को समाप्त नहीं किया। Sue Savage Rumbaugh (1986), ने अपनी किताब Ape Language - From Conditioned Response to Symbol (1986) में बताया है कि एक दस साल का कांज़ी नामक चिपांजी एक दो वर्षीय बच्चे की तरह बातचीत करता है। कांज़ी ने इंसानी भाषा के शब्दों को इंगित करने वाले ज्यामितीय प्रतीकों का उपयोग करके संप्रेषण करना सीख लिया है। 250 शाब्दिक को एक बड़े से 'की–बोर्ड' पर दर्शाया गया था, $2^1/_2$ साल की उम्र में ही कांज़ी की–बोर्ड पर 'पकड़ो' (chase) शब्द को इंगित करने वाले प्रतीक को दिखा कर भाग जाता था। Savage Rumbaugh ने कांज़ी का 'पकड़ो' की ओर इशारा करके जल्दी से भागना कई बार देखा। कांजी ने छह साल की उम्र तक शब्दों को इंगित करने वाले 90 चिह्न सीख लिए।

इसके अतिरिक्त Rumbaugh ने पाया कि कांज़ी के व्यवहार से लगता था कि वह अंग्रेज़ी भाषा के उच्चारित शब्दों को समझता है। उन्होंने पाया कि कांज़ी भी इन्सानी बच्चे की तरह बोले गए शब्दों को ध्यान से सुनता है। 'स्पीच संश्लेषक' वह यंत्र है जो बोलते हुए इन्सान की तरह आवाज निकाल सकता है। कांजी ऐसे किसी यंत्र द्वारा निकाले गए शब्दों को भी समझता था। Savage एक और आश्चर्यजनक बात बताती है, उनका कहाना है कि कांजी को 'वाक्य–रचना' की भी अधकचरी समझ हो गयी थी। वह शब्दों को अर्थपूर्ण ढंग से जमा पा रहा था। वह यह बता पाता था कि वह क्या खेल चाहता है और किस क्रम में। जैसे अगर वह चाहता था कि कोई उसे पकड़े और फिर काटने का प्रयास करे, तो वह पहले 'पकड़ो' को दबाता और फिर 'काटने' को। Savage Rumbaugh का अनुमान है कि कांज़ी 650 वाक्यों को समझ सकता था।

यह और इनके बाद के बाद के कुछ और नतीजे महत्त्वपूर्ण हैं लेकिन यह स्पष्ट नहीं है कि क्या इनसे यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि वानर भी भाषा सीख सकते हैं। ज्यादातर मानव वैज्ञानिक मानते हैं कि वानर हाथों के उपयोग से व प्लास्टिक से बने भाषायी चिह्नों का उपयोग करने की क्षमता दिखाते हैं। वह किसी दो वर्षीय बालक के स्तर से ज्यादा भाषा नहीं उपयोग कर सकते किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि वे असफल मानव हैं। चिपांजी अपने आप में बहुत सक्षम चिपांजी हैं। ऐसा लगता है कि मानव की भाषीय क्षमता बहुत ही अलग तरह की है।

वानर संप्रेषण पर आचार–शास्त्र शोध

आचार–शास्त्री, ऐसे वैज्ञानिक हैं जो जानवर के व्यवहार का अध्ययन उनके स्वाभाविक परिवेश में करते हैं। इन वैज्ञानिकों ने पाया है कि सभी जानवरों कई तरह की आवाज़े निश्चित संदर्भ में खास अर्थ के लिए निकालते हैं। कुत्ते, मुर्गी, बंदर व चिपांजी में बुलाने के तरीके होते हैं।

अफ्रीका में किए गए George Schaller के एक शोध ने चिपांजी द्वारा उपयोग की जाने वाले 22 ध्वनि चिह्न पहचाने। यह संख्या Howler बंदर के लिए 20, जापानी मकाक के लिए 30, और गिबन्नस के लिए 9 है। गोरिल्लाओं समेत इन सभी जानवरों द्वारा निकाली गई यह सभी आवाज़ें विशिष्ट व्यवहार या भावात्मक मनोदशा से संबंधित हैं– जैसे आराम, खाना, यौन सम्बन्धी, खेल, गुस्सा व खतरे की सूचना करना। जब छोटे बच्चों की मां कहीं जाती है, तो वह भी विशेष प्रकार की आवाज़ें निकालते हैं। हालांकि शैलर मानते हैं कि कुछ ऐसी भी आवाज़ें हैं जिनके साथ कोई विशिष्ट व्यवहार नहीं प्रतीत जुड़ा होता।

चिपांजी संप्रेषण – Jane Goodall

Jane Goodall ने चिपांजियों का उनके प्राकृतिक परिवेश में सबसे लंबा अध्ययन किया। 1960 से ही Gombe गेम रिसर्व में चिपांजी पर अध्ययन कर रहीं Goodall ने चिपांजियों द्वारा उपयोग की गई आवाज़ों पर जानकारी इकट्ठी की। उनके अध्ययन से पता चलता है कि चिपांजी अलग–अलग तरह की पुकार का इस्तेमाल करते हैं जो उनकी भावात्मक मनोदशा – जैसे डर, गुस्सा व यौनावेश इत्यादि से जुड़ी होती हैं। उनका निष्कर्ष था कि चिपांजी उपयुक्त भावात्मक दशा के बिना कोई आवाज़ नहीं निकाल सकते (Goodall 1986 : 125)। उन्होंने पाया कि चिपांजी की दो तरह की पुकार होती हैं – एक अपने समूह के भीतर (Inter-party) व दूसरी अन्य समूहों के लिए जो दूर है। हाफंने, घुरघुराने की आवाज़ें समूह में अपने से ज्यादा ताकतवर जानवर को इज्जत देने के लिए और भौंकना, पिनपिनाना, चिल्लाना, खांसना और अन्य तरह की आवाज़े बाकी सभी समूह सदस्यों से संप्रेषण के लिए। दूसरी श्रेणी की आवाज़ें यानी दूर की पुकार श्रेणी के कई– उपयोग होते हैं– वह पास में उपलब्ध खाने के स्रोत के बारे में बताने के लिए, मैं व अन्य साथी अपने इलाके में इस समय कहाँ हूँ इसकी सटीक सूचना देने के लिए, मुसीबत में मदद मांगने के लिए, दूर रह रहे सहयोगियों को पुकारने के लिए हो सकती है। और शोध करके यह पता करने की जरूरत है कि क्या चिपांजी

अलग–अलग तरह के खाने व अलग–अलग खतरों की तरफ संकेत करने के लिए कुल अलग–अलग आवाज़ें निकालते हैं?

जानवरों में संप्रेषण और मानव भाषा

जानवरों में संप्रेषण के बारे में 'प्रयोगशाला' व जानवरों के स्वाभाविक परिवेश में किए गए अध्ययन', मानव व जानवर संप्रेषण में अंतर के बारे में रोचक अंतर्दृष्टि देते हैं। कई दार्शनिकों ने 'भाषा व बोल पाने की क्षमता' को मानव व जानवरों में अंतर का मुख्य आधार बताया है। जानवरों पर किए आधुनिक शोधों से यह तो पता चलता भाषा का फासला इतना अधिक तो नहीं है, जितना समझा जाता है। परन्तु मानवीय भाषाओं व जानवर संप्रेषण में मूल भिन्नताएँ तो हैं। प्रश्न यह नहीं है, कि क्या जानवर भी संप्रेषण कर सकते हैं क्योंकि यह अब स्पष्ट है। असली प्रश्न यह है कि जानवर संप्रेषण का तरीका मानव से किस प्रकार भिन्न है? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए भाषीय मानव शास्त्री ने मानव भाषाओं के कई विशिष्ट गुण बताएं हैं – इनमें से चार सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण हैं– उत्पादन क्षमता, विस्थापन, मनमानापन और आवाज़ों को मिलाना या जोड़ना। (Hockett & Ascher, 1964)

उत्पादन क्षमता (Productivity)

इंसानी भाषाएं नैसर्गिक तौर से लचीली व सृजनात्मक होती हैं। इन का उपयोग करने वाले छोटे बच्चे भी ऐसे नए–नए वाक्य बोल सकते हैं जिन्हें किसी ने पहले कभी भी न सुना हो।

हम वर्तमान, भूत व भविष्य किसी के बारे में भी अनगिनत बातें बता सकते हैं। हम हर तरह के विचार, अनुभव व उनके अर्थ असीमित तरीकों में अभिव्यक्त कर सकते हैं। इसके विपरीत अपने स्वाभाविक परिवेश में जानवरों के संप्रेषण सीमित और स्थाई होते हैं। किसी भी जानकारी के लिए उपयोग की गई आवाज़ बदलती नहीं है। चिपांजी के बच्चे उसी परिस्थति में आने पर अपने माँ–बाप की तरह की ही आवाज़ इस्तेमाल करेंगे। इसके विपरीत मानवीय भाषा की अत्यधिक लचीली प्रकृति उसे अनूठी कार्य क्षमता और अदभुत व असीमित सृजन करने की संभावना देती है। William Von Thunboldt ने इन्सानी भाषा की इस बात के बारे में कहा है कि यह सीमित मीडिया का असीमित उपयोग– "The Infinite use of Finite media" (Humboldt 1972, Pinker, 1994)A

विस्थापन (Displacement)

स्वाभाविक परिवेश व प्रयोगशालाओं में किए अध्ययन से यह स्पष्ट है कि पशुओं द्वारा प्रयुक्त आवाज़ों का अर्थ किसी एक विशिष्ट प्रेरक परिस्थिति से जुड़ा होता है। जैसे चिपांजी का कोई भी उच्चारण एक विशिष्ट परिस्थिति व उसमें भी एक विशेष भावात्मक उद्वेग से जुड़ा होता है– 'गुर्राना' या 'चिल्लाना' खतरे की अनुपस्थिति में नहीं होगा। उसी प्रकार से तोता या मैना बहुत सारी आवाज़ की नकल तो कर सकती हैं परन्तु एक शब्द को दूसरे से नहीं बदल सकती। इसके विपरीत, इंसानी भाषा में किसी भी व्यक्ति, चीज़ या ऐसी परिस्थिति के बारे में बात हो सकती है, जो वहाँ मौजूद भी न हो इसे ही विस्थापन कहते हैं। विस्थापन यानी समय, संदर्भ परिस्थिति से हटकर चर्चा कर पाना। पहले से लेकर अब तक और आगे तक के बारे में व्यवस्थित रूप से बात कर पाना और तर्क कर पाना।

विस्थापन की क्षमता इन्सानों के लिए बातचीत में अत्याधिक अमूर्त अवधारणाओं का उपयोग सम्भव बनाती है। वे भूत, भविष्य व वर्तमान समय के संदर्भ में अपने लक्ष्य, सपने अपनी योजना व अनुभव के बारे में बता सकते हैं, उन पर चर्चा कर सकते हैं। वे आध्यात्मिक अनुभवों, काल्पनिक रचनाओं व ऐसे phenomen के बारे विमर्श कर सकते हैं जिनका कोई वास्तविक ठोस अस्तित्व नहीं है। वे पूराने इतिहास की चर्चा कई

तरह से कर सकते हैं और दंत कथाओं, परिवार का वंश क्रम आदि सभी के बारे में चर्चा कर सकते हैं। मृत्यु के बाद की कल्पना व चर्चा स्वर्ग, निर्वाण जैसी धर्म द्वारा रचित धारणाओं के और myth के माध्यम से कर सकते हैं। विस्थापन इन्सान को पूर्वदृष्टि का उपयोग कर भविष्य की योजना बना पाने की काबलियत देता है और भाषीय क्षमता में विस्थापन की संभावना इन्सानों की बाकि अन्य इंसानी काबलियतों से कई तरह से जुड़ी है। अमूर्त सोच व प्रतीकों को गढ़ने व उनके उपयोग की क्षमता इन्सानों को अमूर्त अवधारणाओं का उपयोग करके समृद्ध समझ व विश्व दृष्टिकोण बनाने में सक्षम बनाती है।

Arbitrariness (मनमानापन)

इंसानी भाषा की एक और खासियत है उसका मनमानापन।– किसी वस्तु अथवा विचार के लिए उपयोग किए जा रहे शब्दों का उस वस्तु अथवा अमूर्त विचार से संबंध नहीं होता। अंग्रेजी में वन, टू, थ्री संख्या बताते हैं, हिन्दी एक, दो, तीन, तमिल में ओन, रंड, मुन और चीनी भाषा में इन्हें Yi, er, san कहते हैं। हम यह नहीं कह सकते कि इनमें से कोई भी उन संख्याओं के लिए 'सही' शब्द है। क्योंकि ऐसा कोई सही शब्द है ही नहीं। Spanish में आऊच को 'ay' कहते है और नूटकन भाषा में इसे इश्का हक कहते हैं। एक भेड इकट्ठी करने वाले जर्मन शेपर्ड (Shepherd) कुत्ते को फ्रेंच पुडल (French Poodle) कुत्ते की भौंक समझने में कोई कठिनाई नहीं होगी। लेकिन एक अंग्रेजी भाषी व्यक्ति को किसी चीनी भाषा बोलने वाले को समझने में कठिनाई होगी।

Combining sounds to Produce meaning (आवाज़ों को जोड़ कर अर्थपूर्ण कथन बनाना)

हमने कहा है कि जानवर ये आवाज़ें निकालते है उनका विशिष्ट परिस्थितियों में ही अर्थ है और वह उन्हीं अर्थों को व्यक्त करती हैं। इंसानी भाषा में शब्द, ध्वनि की इकाइयों को अलग–अलग तरह से जोड़कर बनते हैं। ध्वनि की इन इकाइयों की अपने आप में कोई अर्थ नहीं है। अगर सभी इन्सानी भाषाओं को देखे तो हम पाते हैं कि इनमें 12 से लेकर 60 तक ऐसी इकाइयाँ होती है। इन इकाइयों को ध्वनिग्राम (Phoneme) कहते है। एक ध्वनिग्राम बदलने से वह कोई दूसरा ही शब्द बन जाता है। जैसे अंग्रेजी में dime और dine 'म' की जगह 'न' रखने से दूसरा ही अर्थ व्यक्त होता है। अंग्रेजी में 45 ध्वनिग्राम हैं, इटेलियन में 27 और हवाइयन में 13 (फार्ब 1974 के अनुसार)।

अमानव, आवाज़ की इकाइयों को जोड़ कर नये अर्थ नहीं व्यक्त कर सकते। हर उच्चारण का मकसद उससे जुड़े व्यवहार की मांग करना होता है। इसके विपरीत, मानव भाषा में आवाज के अलग–अलग टुकड़ों को अलग–अलग ढंग से जोड़कर नित नए अर्थ व्यक्त किए जा सकते हैं। उदाहरण के तौर पर अंग्रेजी के अक्षर प्रतीकों (letter) P, t, c द्वारा इंगित ध्वनियों का कोई अर्थ नहीं होता।– किन्तु जब उनको pat, apt, cat, pact, tact जैसे शब्दों की ध्वनियों को इंगित करने में इस्तेमाल किया जाता है तो सब उन्हें पढ़ पाते हैं और उनमें नए अर्थों की पहचान करते हैं। (यही नहीं नयी तरह से टुकड़ों को जोड़कर नये–नये शब्द जिनके अर्थ हम खुद तय करते हैं बना पाते हैं।) हवाईयन भाषा में सिर्फ 13 आवाज़ इकाइयों को लेकर 3,000 शब्द बन सकते हैं– ध्वनिग्राम का अपना कोई अर्थ नहीं होता लेकिन उनको अलग–अलग तरीके से जोड़–तोड़ कर कई अर्थपूर्ण शब्द बनाये जा सकते हैं– जितने की लोगों को ज़रूरत है। किसी भी अन्य जानवर में नहीं होती।

इन्सानी भाषा के यह लक्षण देखने के बाद यह स्पष्ट है कि इंसानी और जानवरों की भाषा में कुछ बुनियादी अंतर हैं। लेकिन कुछ शोधकर्त्ता जो प्रयोगशाला में चिपांजी के साथ काम कर रहे हैं वह अभी भी इंसानी भाषा को ही ऐसी 'सच्ची भाषा' कहने में हिचकिचाते हैं। जो जानवरों की भाषा से पूर्णतः अलग है। वे इसे भाषा के मानवकेन्द्रित नज़रिए की संज्ञा देते हैं और उसकी आलोचना करते हैं। वे इंसानी भाषा को

'स्टैर्डड' मानना सही नहीं समझते हैं क्योंकि उनके अनुसार चिंपाजी के शरीर में वह क्षमता नहीं होती कि वे इंसानों की तरह आवाज़े निकाल सकें। वे अपने शारीरिक ढांचे के अनुरूप आवाज़ों का उपयोग कर पाते हैं इसलिए, उनकी भाषा का इंसानों की बोली गई भाषा के साथ तुलना करना ठीक नहीं होगा।

भाषा का विकास

कई शताब्दियों से भाषा वैज्ञानिकों, दार्शनिकों व भौतिक मानव शास्त्रीयों ने भाषा के विकास व उद्‌भव के संबंध में अध्ययन किया है। इसे समझने का एक प्रयास जिसे bow wow थ्यौरी (सिद्धान्त) कहते हैं, मानता है कि भाषा का विकास तब हुआ, जब इंसान ने ध्वनि को लय में जोड़कर प्रकृति की आवाजों की नकल करनी शुरू की। इससे कई प्रकृति से जुड़ी घटनाओं के लिए (onomatopoeic) शब्द जैसे cock-a-doodle, do, 'sneeze' ;k 'mumble' का प्रयोग शुरू हुआ।

दूसरी धारणा है, इन्सानी भाषा का विकास प्राकृतिक वस्तुओं की स्वाभाविक आवाज़ों को पहचानने से शुरू हुआ। इसे Ding Dong सिद्धान्त कहते हैं। इसके अनुसार शब्द और उसके अर्थ में एक संबंध है क्योंकि प्रकृति उसे एक सुस्वर ध्वनि देता है। उदाहरणार्थ पूरी प्रकृति जिसमें पत्थर, नदी, नहर, झरने, पौधे, पक्षी, जानवर आदि शामिल हैं में हर हिस्सा एक आवाज निकालता है जिसे इन्सान पहचान सकते हैं। पत्थर से निकलती सस्वर ध्वनि पत्थर के समान प्रतीत होगी। यह दोनों विवेचनाएँ नकार दी गई हैं और इन्हें पूरी तरह हटा दिया गया है। भाषा के विकास के बारे में नई समझ बनी है, जिसमें इन्सान के शरीर में हुए परिवर्तनों का महत्त्व है।

भाषा की संरचना (The Anatomy of Language)

जैसे पहले बताया गया है, मानव समान प्राणियों (hominids) का विकास मस्तिष्क के बढ़ते हुए आकार के साथ जुड़ा हुआ होगा। इन प्राणियों (Hominids) का बढ़ा हुआ मस्तिष्क प्रमस्तिष्कीय छाल (cerebral cortex) के आकार को भी बढ़ता हुआ दिखाता है। यह छाल (cortex) मस्तिष्क का वह हिस्सा है, जो मस्तिष्क के जटिल व इन्सान विशिष्ट कार्य करता है जैसे याद्‌दाश्त और शायद प्रतीकों के साथ कार्य करने की क्षमता। इसके अलावा सांस्कृतिक पकड़ व क्षमता भी इसी से आती है। मस्तिष्क की याद्‌दाश्त, सीखना, उसकी प्रक्रिया व अन्य क्षमताएँ भी विज्ञान पूरी तरह से नहीं समझ पाता है। फिर भी हमें पता है कि प्रमस्तिष्कीय छाल में हज़ारों करोड़ों कोशिकाएँ होती हैं, जो सूचना इकट्‌ठी करके उसे संभालते व process करते हैं।

मानव मस्तिष्क व बोली (Human Brain Anatomy and Speech)

मस्तिष्क के अन्य हिस्से भी इंसान की भाषाई क्षमता में मुख्य भूमिका निभाते हैं। इंसान का मस्तिष्क दो अर्ध गोलाकार हिस्सों में विभाजित है। हालांकि दोनों हिस्से बराबर प्रतीत होते हैं और सारे कार्यों में अहम् भूमिका निभाते हैं। फिर भी उनके कार्य कुछ अलग–अलग भी हैं, अधिकतर भाषा संबंधी दक्षताएँ एक ही हिस्से से ज्यादा जुड़ी होती हैं। आमतौर पर, बायां हिस्सा, भाषा से संबंधित दक्षताएं नियत्रिंत करता है और दायां, जगह सम्बन्धी समझ और अनुपात (spatial orientation and proportion)। बायें हिस्से का एक भाग– जिसे ब्रौक (Brocks) हिस्सा कहते हैं, भाषा को अधिक प्रभावित करता है, यह हिस्सा ध्वनि व आवाज़ को ठीक से निकाल पाना व व्याकरण–संबंधित क्षमताओं से जुड़ा हुआ है।

भाषा से जुड़ा है दूसरा हिस्सा, वेरनीके का क्षेत्र (Wernickes area) है। यह भी बाएं गोलार्द्ध की तरफ है। यह हिस्सा शब्दों व वाक्यों के अर्थ समझने, याने भाषा के अर्थ तत्त्व से जुड़ा हुआ है। इसलिए मस्तिष्क का यह हिस्सा सुनने व पढ़ने में मदद करता है।

मानव संरचना व बोली (Human Anatomy and Speech)

इन्सान के शरीर की बनावट व कार्य करने के ढंग में ऐसे तत्व हैं जो उसकी भाषा उपयोग करने की समता बनाते हैं। इंसान के अलावा किसी भी अन्य जीव में लगातार आवाज निकालते रहने के लिए उपयुक्त ढाँचा नहीं है। मानव के बोलने के ढाँचा एक टेढ़ी–मेढ़ी नली के रूप में दिखते हैं। इसमें फेफड़े, श्वास नली, गला (larynx) और आवाज डिब्बा (voice box)। इस आवाज डिब्बे के अंदर स्वर तंतु (vocal chords) हैं। एक और बोल पाने के लिए आवश्यक अंक ग्रसनी (Pharyx) है। जीभ के पीछे यह बोलने के ढांचे का वह हिस्सा है जो शुरू होता है। Larynx फेफड़ों में हवा को बनाए रखता है व उसके प्रवाह को नियंत्रित करता है। यह सभी अंग हमारी जीभ, होठ, व नाक से मिलजुल कर आवाज के उत्पादन में मदद करता है। फेफड़े ग्रसनी में हवा फेंकते हैं, ग्रसनी (Pharyx) हवा को नियंत्रित करने के लिए अपना आकार बदल लेती है। नाक का छेद, होठ व जीभ किसी भी क्षण हवा के प्रवाह को रोक सकता है। इसी से ही स्वर या व्यंजन की आवाज़ें निकलती है।

चिपांजी और आधुनिक मानव के शरीर की बनावट के ढांचे में बढ़ी भिन्नताए हैं– स्वरयंत्र का नीचे स्थित होना। इससे मानव एक प्रमुख अंतर है इंसान में vocal tract के ऊपरी हिस्से की लम्बाई बढ जाती है। यद्यपि इस व्यवस्था से सांस लेना थोड़ा ज्यादा मुश्किल हो जाता है। इससे दम घुटने से मृत्यु का डर बन जाता है। और दातों के जमघट भरा–भरा हो जाता है, जिसकी वजह से टेड़े–मेड़े अक्ल दाड़ आने का भी डर रहता है। इसके बावजूद, यहीं ढांचा है जो भाषा को संभव बनाता है।

इन्सान समान प्राणी जो इंसान नहीं हैं जैसे चिपांजी बातचीत नहीं कर सकते। उनका मौखिक ढांचा उन्हें इंसानों की तरह आवाज़ निकालने की इजाजत नहीं देता। इसके अलावा उनके द्वारा निकाली गई आवाज सोच–समझकर व्यवस्थित रूप से निकाली व दो का परिस्थिति के आवेश में निकाली आवाज होती है।

क्या कभी पहले आदि प्राणी (Hominids) जो मानव समाज है वे बोल सकते थे?

कुछ भौतिक मानव शास्त्री कम्प्यूटर प्रोग्राम का इस्तेमाल करके नरवानरगण hominids व आधुनिक मानव के शारीरिक ढांचे की तुलना करने की कोशिश कर रहे हैं। इसकी मदद से Philip Lieberman o Jefferay Laitman ने भाषा के विकास को लेकर एक अवधारणा प्रस्तुत की है। उनका मानना है पहले के मानव समान प्राणी (जैसे australopithecines) में वह हिस्सा (vocal tract) नहीं था जो इंसानों को स्वर उत्पन्न करने में मदद करता है। Neanderthail, Archaic, जैसे आदि मानव भी अ, इ, उ जैसे स्वर नहीं निकाल सकते थे इस वजह से उनकी भाषाई क्षमताएं कम थी। लेकिन अगर Nearderrthel phonemes को उत्पन्न करके अर्थपूर्ण इकाई बना सकते थे, तो उनके पास भाषा भी रही होगी। लेकिन अधिकतर शोधकर्त्ताओं ने यह निष्कर्ष निकाला कि भाषा जैसे कि हम जानते हैं सिर्फ पिछले कुछ 100,000 वर्षों में ही आई हो और वह बोलने के हिस्से (vocal tract) के विकास व मानव (Homo sapiens) में अन्य गुणों के विकास से जुड़ी हैं।

इस अवलोकन ने भाषा के विकास को लेकर एक लोकप्रिय अवधारणा को जन्म दिया कि australopithecines शायद चिह्न भाषा, आवाज़ों व इशारों से संचारण व संप्रेषण करते थे। इन क्षमताओं का Homo Habitus, Homo Erectus और Homo Sapiens के विकास के साथ ही धीरे–धीरे और भी विकास हुआ। इस विकास ने धीरे–धीरे भाषा के प्रतीकात्मक स्वरूप व उसकी ताकत को बढ़ाने में भी मदद की। तथ्यों की कमी के कारण यह अवधारणाएं विवादास्पद ही हैं।

भाषा के क्रम विकास को लेकर जो भी विशिष्ट पहलु हैं, यह कह पाना मुश्किल है कि भाषा के विकास (एक साधारण चिह्न संबंधित संचारण से आधुनिक, प्रतीकात्मक रूप) का सबसे अहम अन्तराल कौन सा रहा होगा। कौन व काल है, कौन सा कदम है। जहाँ से यह ममता से एक बढ़ी कूद लगा कर आगे बढ़ी हैं। लेकिन यह माना जाता है कि भाषाई क्षमताओं ने इंसान की अन्य सभी क्षमताओं जैसे अनुकूलन व सृजनात्मकता को बढ़ावा दिया। इंसान के जैविक विकास में भाषा की क्षमता का विकास शायद आखिरी पड़ाव था। तब से मानव इतिहास व हमारा विकास संस्कृतिक विकास से निर्धारित हुआ है न कि जैविक विकास से। लेकिन यह सांस्कृतिक विकास, अनुकूलन व सृजनात्मकता में विकास भाषाई क्षमता के विकास के बिना संभव नहीं था।

सामाजिक भाषा विज्ञान (Sociolinguistics)

भाषा वैज्ञानी मानव शात्रियों (Linguistic anthropologists) ने अलग–अलग सामाजिक परिवेशों में भाषा के उपयोग पर शोध किया है। इसे ही सामाजिक भाषा विज्ञान कहते हैं। सामाजिक भाषा वैज्ञानिक एक ही भाषाई समुदाय की भाषा अलग–अलग सामाजिक परिवेशों में उपस्थित भाषाई भिन्नता को समझने का प्रयास करते हैं। इसमें वे उनकी भाषा के ढांचे को आधार लेकर उसमें आई विभिन्नताओं पर ध्यान देते हैं। सामान्य तौर पर भाषा वैज्ञानिक मानवशास्त्री इसे pragmatics का अध्ययन भी कहते हैं, एक भाषाई समुदाय में भाषा इस्तेमाल करने के नियमों का अध्ययन। भाषाई समुदाय वह (Speech community) सामाजिक इकाई है, जिनमें भाषा इस्तेमाल करने के बहुत से पहलु साँझा होते हैं। जैसे अमरीकी समाज में अंग्रेजी को उपयोग करने के कुछ अलग तरह के ढंग, जैसे खास तरह की वाक्य संरचना व उच्चारण के नियम विशेष संदर्भों में ठीक मान लिए जाते हैं। इसे अमरीकी मानक अंग्रेजी कहते हैं। लेकिन कुछ और वाक्य संरचनाएं व उच्चारण के ढंग सही नहीं माने जाते एक अमरीकी बच्ची परिवार में इस तरह के इस्तेमाल कर सकती है जिसे उसका परिवार प्यारा cute समझता है। यह बच्ची एक उम्र तक ऐसी भाषा का प्रयोग बार–बार कर सकती है। लेकिन जब बच्चा अपने परिवार से निकल कर बड़े भाषाई (Speech) समुदाय में जाता है तब वह पाता है कि उसकी भाषा उपयोग का ढंग (habit) अन्य लोगों से भिन्न है। अगर बच्चा घर में वाक्य शब्दों व व्यक्त करने के ढंग का प्रयोग करता है, तो उसको डांटा जा सकता है या फिर उसका मज़ाक भी उड़ाया जा सकता है। अपने भाषाई समुदाय (Enculturation) की संस्कृति से अंतःक्रिया कर बच्चा उसमें रम जाता है व इसके वह 'भाषाई समुदाय' में सामाजिक एकीकरण से बच्चा अलग–अलग सामाजिक सांस्कृतिक व पारिवारिक संदर्भों में इस्तेमाल की जाने वाली भाषा सीख लेता है। अपने समुदाय में सांस्कृतिक एकात्मता (Enculturation) की प्रक्रिया में भाषा एक अहम भूमिका निभाती है। अमरीकी बच्चे अपने ही 'भाषा समुदाय' के अंदर प्रयुक्त उच्चारण व व्याकरण के इस्तेमाल के ढंग सीख लेते हैं।

बातचीत की भाषा में विभिन्नता (Dialectical Differences in Spoken Language)

एक ही भाषा बोलने व उपयोग करने वाले समूह में ऐसे छोटे–छोटे कई भाषाई समुदाय हो सकते हैं जिनके भाषा प्रयोग के तरीके में खास किस्म के लक्षण हैं। यदि इन छोटे–छोटे उपसमूहों द्वारा प्रयोग की जा रही भाषा का ढंग अलग–अलग तो है पर इतना ही अलग है कि लोग एक दूसरे की बात तो फिर भी समझ पाते हैं तब इन सब को उस भाषा समूह की बोलियाँ कहते हैं। Dialect या बोली का मतलब है – एक भाषा के अंदर ही उच्चारण, शब्दावली व syntactical (वाक्य संरचनात्मक) छोटी–छोटी किन्तु भिन्नताएं। उदाहरण के तौर पर मानक अमरीकी अंग्रेजी के कई भिन्न स्वरूप हैं, जो अलग–अलग क्षेत्रों जैसे उत्तर–पूर्व (North-east) मध्य–पश्चिम (mid-west) और दक्षिण–पश्चिम (south west) में पायी जाती है। जैसी अमरीकी राज्य के दक्षिण में यह सुनने को मिल सकता है – It wan't (या weren't me) या Mrs के लिए Miz और

सलफा (sulpuh) 'र' की ध्वनि का अकसर शब्दों में से गायब हो जाना, जैसे four के लिए 'फोह', Hear के लिए हीह (heah), sulphus (sulph) के लिए सलफह। लेकिन जो 'र' की ध्वनि स्वर के ठीक पहले हैं वह गायब नहीं होती।

अंग्रेज़ी की कई बोलियों को ज़्यादा भद्रव इज्जत वाला माना जाता है। यह अंतर शैक्षिक स्तर, वर्गीय विभेद, जातीय उंच नीच, कौमीय, आदि और क्षेत्रीय भिन्नताओं से बनते हैं। जब भाषाओं को एक वैश्विक सिद्धान्त (global phenomenon) की तरह देखा जाता है तो यह स्पष्ट है कि सारी भाषाएं बोलियां ही है, जो विश्व के अलग–अलग हिस्सों में जनमी हैं। वास्तव में अंग्रेज़ी कोई एक मानक भाषा नहीं है वरन् बहुत सी बोलियां से मिलकर बनी है। भाषाविद् यह नहीं मानेंगे कि ब्रिटिश अंग्रेज़ी, अमरीकी अंग्रेज़ी से ज्यादा सही है, और यह सिर्फ इसलिए क्योंकि अंग्रेज़ी का जन्मस्थल इंगलैंड है। इंगलैण्ड, आस्ट्रेलिया कनाडा, अमरीका, भारत, साउथ अफ्रीका, वैस्टइण्डीज में बोली जाने वाली अंग्रेज़ी की उच्चारण व शब्दावली में स्पष्ट दिखने वाली भिन्नताएं हैं। यही बात लगभग सभी अन्य भाषाओं पर भी लागू की जा सकती है।

अमरीका के भाषाई समुदायों का अध्ययन कर रहे कई भाषाविदों का मानना है, कि विभिन्न क्षेत्रों में उपयोग होने वाली बोली की विशिष्टताएं धीरे–धीरे लुप्त हो रही हैं। जब लोग नौकरी या शिक्षा के लिए एक जगह से दूसरी जगह जाते हैं, और जैसे–जैसे दुरदर्शन फिल्म व संचार के माध्यम बढ़ रहे हैं वैसे–वैसे अमरीकी लोगों का बोलना अब एक समान ही लगने लगा हैं। इस तरह की प्रक्रियाएं संसार की अन्य भाषाएं व बोलियां को प्रभावित कर रही है।

भाषा में आदरसूचकों का उपयोग (Honorifics in Language)

सामाजिक भाषा वैज्ञानिकों Sociolinguistics ने पाया है कि कई भाषाओं में आदरसूचक रूप व्याकरण, वाक्य संरचना (syntax) व शब्दों के उपयोग को प्रभावित करते हैं। भाषा के आदरसूचक प्रकार उस समाज में पाए जाने वाले अलग–अलग स्तरों को दिखाने के लिए होते हैं। जिन समाजों में सामाजिक असमानताएं है उनमें आदरसूचक काफी सामान्य होते हैं। यह आदरसूचक लोगों के अलग सामाजिक स्तर को स्पष्ट दर्शाते हैं। ये पुरुष और महिलाओं, रिश्तेदार व गैर समाज के ऊपरी व निचले तबके के लोगों के .... में इस्तेमाल होते हैं। उदाहरण के लिए प्रशान्त महासागर के द्वीपों के कई समाजों जैसे हवाई (Hawaii) के समाज में राजकीय परिवार के सदस्यों के लिए बिलकुल अलग ही आदरसूचक शब्दावली का इस्तेमाल होता है। भाषा के इस प्रकार की बाकी लोग आपस में बातचीत के लिए प्रयोग नहीं कर सकते।

थाई Thai भाषा में कई प्रकार के सर्वनाम अलग–अलग सामाजिक परिवेश में उपयोग किए जाते हैं। उम्र, सामाजिक आप से बातचीत में आप के लिए व किसी और के लिए कौन सा सर्वनाम उपयोग होगा यह तब के लिंग, शिक्षा, राजकीय औहदे इत्यादि से निर्धारित होता है। उदाहरण प्रथम व्यक्ति का सर्वनाम I (मैं) है, थाई में पुरुषों के लिए I फोम (Phom) है। यह दो बराबर के लोगों के बीच भद्र संवाद के लिए इस्तेमाल होता है। लेकिन अगर वह पुरुष किसी अपने से उच्च स्तरीय सरकारी अफसर या किसी बौद्ध भिक्षु से बात कर रहा हो तो वह क्रेपहोम (kraphom) का उपयोग करेगा। यदि वह पुरुष किसी राजकुमार से बात कर रहा हो तो वह I के लिए क्लावकरामोम (Klaawkramom) का उपयोग करेगा। कुल मिलाकर थाई भाषा में (I) मैं सर्वनाम के 13 रूप हैं। Thai भाषा में अन्य सर्वनामों के कई–कई रूप है जो इज्ज़त, नम्रता, आदर दर्शाते हैं।

जापानी व कोरियन भाषा में आदरसूचक स्वरूप बोलने वाले से यह मांग करते हैं कि वह क्रिया के विभिन्न रूप व उद्बोधन के लिए उपयोगी शब्दों को आदर, भद्रता व संदर्भ के अनुसार चुने। यह रोजमर्रा की भाषा में उपयोग किए जाने वाले स्वरूप में फर्क होते हैं। भाषा के उम्र, लिंग, सामाजिक स्तर दर्शाते हैं

और यह भी दर्शाते हैं कि किसी व्यक्ति को उस समाज में अन्दर का अथवा बाहर का माना जाता है। जापानी लोग tatemae और honne में हमेशा भेद करते हैं। Tatemae भद्र या नम्र भाषा का रूप है जो अपरिचित लोगों के साथ उपयोग में लाया जाता है और honne जो करीबी दोस्त व परिवार के साथ असली भावनाओं को दर्शाने के लिए उपयोग होता है।

अभिवादन व्यवहार (Greeting Behaviour)

हर समाज, हर भाषा के लोग स्वाभाविक तौर पर एक दूसरे का अभिवादन करते ही रहते हैं। सामाजिक भाषा वैज्ञानिक अध्ययन दिखाते हैं कि यह साधारण दिखने वाले रोजमर्रा के व्यवहार भी वास्तव में काफी जटिल होते हैं और अलग–अलग सामाजिक व सांस्कृतिक संदर्भ में अलग–अलग अर्थ व्यक्त करते हैं। अंग्रेजी भाषा बोलने वाले बहुत से संदर्भों में Hi या Hello बोलते हैं। ये शब्द (healthy be thou) आप स्वस्थ रहें से बने हैं। अमेरिकी समाज में लोग एक दूसरे को मिलने पर पूछते हैं, 'आप कैसे हैं? या सब कुछ कैसा चल रहा है?' ज्यादातर मौकों पर उन्हें गम्भीर प्रश्न नहीं माना जाता। और इनका जवाब हाथ हिला कर, सिर को हलके से झुका कर या फिर हलकी मुस्कुराहट से दिया जाता है। यह सामान्य तरीके हैं और लगभग यान्त्रिक व स्वाभाविक है इस पर ज्यादा सोच विचार कर नहीं किया जाता।

मुसलिम समुदाय के दो मर्दों हाथ मिला कर व अस–सलामे– वालेकुम से एक–दूसरे का अभिवादन करते हैं (इसका अर्थ है– अल्लाह का सुकून रहम आपके साथ रहे।) यह वाक्यांश अरबी न बोलने वाले मुस्लिम समाज में भी बोला जाता है। इसी तरह से यहूदी संप्रदाएं के लोग बोले हैं– आप सुख शांति से रहे। दक्षिण पूर्व एशिया के कुछ समाज जैसे वियतनाम में पूछते हैं, ''क्या आपने चावल खाया''?

इन्हीं सभी सम्बोधनों में दूसरों की खैरियत का ख्याल है। अंग्रेज़ी और वियतनामी भाषा में लोगों के शारीरिक स्वस्थ पर ज़ोर है जबकि अरबी और यहूदी में आत्मिक पर। लेकिन यह सब लोगों का आपस में धुर तरीके से मेल–जोल बढ़ाने में मदद करते हैं।

इन छोटे–छोटे संवादों में किन्तु इनके अलावा भी बहुत और सामाजिक जानकारी भी मिलती है। जैसे कि अमरीका का अंग्रेज़ी भाषीय व्यक्ति निम्नलिखित प्रकार के वार्तालाप के विभिन्न सामाजिक परिवेश पहचान लेगा :

1. "Hello Mr. Thomas!"

   "Hello Johnny! कैसे हो?"

2. "Good Morning, Monica"

   "Good Morning, Sir"

3. "Sarah! तुम कैसी हो? बहुत अच्छी लग रही हो?

   "Bill, तुम्हें देख कर अच्छा लगा।"

4. "Good Evening, Congressman"

   "Hello! जी आपको देखकर अच्छा लगा।"

पहले अभिवादन में बोलने वाला एक व्यस्क और एक बच्चा है, दूसरे में रूतबे का अन्तर है, हो सकता है, बोलने वाला (employer) नियोजक और कार्यकर्त्ता (employee) हो।

तीसरे में करीबी परिचितों के बीच संवाद है

चौथे में दूसरा व्यक्ति ओहदे वाला है, वह पहले वाले को अच्छी तरह जानता या पहचानता नहीं है।

स्कूपिन (1988) ने थाइलैण्ड में अलग–अलग जातीय व धार्मिक समूहों में पाए जाने वाले अभिवादन व्यवहार का अध्ययन किया। उन्होंने पाया, कि संस्कृति द्वारा सुस्पष्ट प्रतिमान निर्धारित हैं जो बताते हैं कि अलग–अलग जाति व भिन्न स्तर के लोगों के बीच किस तरह का व्यवहार होगा। थाई बौद्धों में अभिवादन का पारम्परिक तरीका है हाथ उठाकर चेहरे व छाती को हल्के से छूना और साथ–साथ हल्के–हल्के आदर के कुछ शब्द बोलना इसको वाज कहते हैं। और यह अलग–अलग संदर्भों में कुछ अलग–अलग होते हैं। इसकी पहल निचले स्तर का इंसान करता है। हाथ जितना ऊपर उठता है, उतना ही ज़्यादा आदर। छोटा बच्चा वाज करते समय आँखों की भवों से ऊपर उंगली रखता है और जो बड़ा इस वाज को वापस करेगा, वह उंगलियां सिर्फ छाती तक ही उठाएगा। उच्च स्तर का इंसान निचले स्तर के इंसान का अभिवादन लगभग कभी नहीं करता। थाईलैण्ड के अन्य जातीय व धार्मिक समूह वाज सिर्फ थाई बौद्धों के साथ औपचारिक संपर्क में ही प्रयोग करते हैं, आपस में वही पारंपरिक अरबी अभिवादन का प्रयोग करते हैं।

थाई अभिवादन का एक और तरीका जो बौद्धों के लिए भी प्रयोग होता वह है, क्राब – नीचे झुक कर ज़मीन पर मुंह करके उच्च धार्मिक या राजनैतिक अफसर का वाज करना। क्राब किसी उच्च स्तरीय राजसी परिवार, बौद्ध भिक्षु, अफसर या अपने मां बाप के लिए प्रयोग होता है। जैसा पहले भी कहा था इस तरह के प्रदर्शित इज्ज़तपूर्ण तरीकों से अभिवादन उन्हीं समाज में पाया जाता है, जहां सामाजिक भेद–भाव होता है।

यद्यपि सम्मानपूर्ण अभिवादन का तरीका एक समाज से दूसरे समाज में भिन्न है, फिर भी संसार के सभी लोग एक दूसरे द्वारा किए जा रहे अभिवादन के निहितार्थ समझ सकते हैं।

Nonverbal communication (अमौखिक संप्रेषण)

लोगों से मेल–जोल करते समय हम, अमौखिक संकेतों का भी इस्तेमाल करते हैं। बोली गई भाषा की तरह ही अमौखिक संकेत भी जानवरों की तुलना में समाज पर निर्भर करते हैं। कुत्ता, बिल्ली व कोई अन्य जानवर को एक–दूसरे से गैर मौखिक संचार करते समय कोई कठिनाई नहीं होती। किन्तु इंसानी अमौखिक संप्रेषण बहुत विविध रूप ले सकता है। ऐसा कह सकते हैं कि इंसान एक मात्र ऐसे जानवर एक–दूसरे को समझने में भूल भी कर सकते हैं।

Kinesics (गति संवेदन)

शोधकर्त्ताओं का मानना है, कि इंसान के लगभग 250,000 मुख के भाव हो सकते हैं। इन मैं से कई का अलग–अलग परिस्थिति में अलग–अलग मतलब होता है। जैसे मुस्कुराहट खुशी का इज़हार करती है। लेकिन कुछ अन्य परिस्थिति में मुस्कुराहट का मतलब दूसरे व्यक्ति की व्यंगात्मक तौहीन भी हो सकता है। इसी प्रकार से सिर, आंख, भवें, हाथ व शरीर का मुद्रा अलग–अलग मतलब दर्शाता है, जिसे वहां की संस्कृति परिभाषित करती है।

अमरीकी चीज़ों की तरफ उंगली का इशारा करके बताते हैं व अन्य लोग अपनी आंखों, ठोढ़ी व सिर से बताते हैं। अपना सिर ऊपर–नीचे हिलाने का मतलब है– हां व एक तरफ से दूसरी तरफ हिलाने का मतलब ना। लेकिन भारत, ग्रीस व तुर्की के कई भागों में इसका विपरीत अर्थ है एक O.K. संकेत का मतलब, अमरीका या इंगलैण्ड में मतलब है, ''तुम ठीक हो'', लेकिन बेलजियम या फ्रांस में इसका मतलब है, ''तुम शून्य हो'' और ग्रीस और तुर्की में यह बहुत अभद्र बेहूदा संकेत माना जाएगा। अमरीका में अपने सिर की तरफ

इशारा करने का मतलब है, वह स्मार्ट है व यूरोप में इसका मतलब मूर्ख। 1960 में V चिन्ह का मतलब ''शांति'' व ग्रीस में तौहीन था। इसी वजह से लोग एक–दूसरे को गलत समझते हैं।

इसके बावजूद शोध दिखलाता है कि कुछ मुख की अभिव्यक्तियों से सम्बन्धित भाव सभी जगह पाए जाते हैं, मनोवैज्ञानिक, Paul Ekman ने दिखाया है, कि मुख की अभिव्यक्तियों से संबंधित कुछ मूल समानताएं हैं। अलग–अलग समाज के लोग मुंह की अभिव्यक्तियों जो खुशी, गम, चौंकना, गुस्सा इत्यादि दिखाते हैं, पहचान लेते हैं। Newman का काम Papua New Guinea के लोगों के साथ था, जिनका हाल में ही पाश्चात्य संस्कृति के लोगों के साथ वास्ता पड़ा। जब Fore लोगों को तस्वीर दिखाई गई, उन्हें पहचानने में कोई तकलीफ नहीं हुई। Ekman ने बताया है कि कुछ 'सार्विक भाव' संसार के सभी लोगों में दिखते हैं।

Proxemics (सामीप्य)

भाषा का एक और अमौखिक रूप है दूरी का प्रयोग करना। अलग–अलग समाज किस तरह जगह को देखता व उसका प्रयोग करता है, को Proxemics कहते हैं। Edward T. Hall (1981) का मानना है, कि जगह को लेकर, कोई सार्विक नियम नहीं है। अमरीकी समाज में लोग अलग–अलग मात्रा में, अलग–अलग परिस्थितियों में 'personal space' रखते हैं। हम अपने करीबी जानकारों से 18" का फासला रखते हैं और जिन्हें हम नहीं जानते, उनके साथ ज़्यादा दूरी रखते हैं। कई समाज में लोग बहुत नज़दीकी से संप्रेषण करते हैं बावजूद इसके कि उनके बीच क्या संबंध है।

सामाजिक मेल–जोल का अमौखिक संप्रेषण एक ज़रूरी पहलु है। स्वाभाविक इशारे, जैसे जापान में झुकना, अमरीका में हाथ मिलाना अलग–अलग परिवेश में गहरा प्रतीकात्मक महत्त्व रखते हैं। ऐसा माना गया है, अमौखिक संप्रेषण का अध्ययन इंसानी व्यवहार की समझ को ना सिर्फ अलंकृत करेगा, बल्कि सुधारेगा भी।

सबक–II
भाषा का दूसरा कदम

पाठ 1. बच्चों की भाषा सीखने की क्षमता – 1 : चार वर्ष का बच्चा वयस्क के बराबर – भाषा के नियमों की सहज समझ – बच्चा कैसे सीखता है? बोरियत की वर्णमालाएँ – मजेदार सीखने के तरीके।

पाठ 2. बच्चों की भाषा सीखने की क्षमता – 2 : ठीक वर्तनी क्या है?– ''जैसा बोलो वैसा लिखो''– वर्तनी में मुश्किलें – वर्तनी के दोहरे प्रचलन।

पाठ 3. भाषा सिखाना माने क्या? : एकलव्य समूह के प्रयोग – स्कूलों में छात्रों और टीचरों की मुश्किलें – क्या भाषा एक ''विषय'' है? – अपनी भाषा का इस्तेमाल – गलतियाँ क्या समझाती है? – सीखने के पड़ाव –लिखना।

पाठ 4. भाषा व भाषा शिक्षण : सीखाना बनाम सुधारना – बच्चा पहले से ही समृद्ध है – घर की भाषा, किताबों की भाषा – बच्चों की बातचीत से बनी पाठ्यपुस्तके – भाषा सिखाने का उद्देश्य क्या है?

पाठ 5. बच्चे भाषा कैसे सीखते हैं : कुदरती जादू, या लंबा लंबा सफर कुदरती सीखना – भाषा सीखने की मंज़िले–उम्र और भाषा सीखना – 20,000 शब्द – भाषा और बुद्धि का रिश्ता – भाषा और दिमाग का बाँया हिस्सा – भाषा और माहौल – सीखना और संयुक्त उद्यम – आगे और पीछे सीखना – गलतियाँ।

हमने अभिमन्यु की कहानी पढ़ी–सुनी है। कि वह, अर्जुन का बेटा, जब अपनी माँ के पेट में ही था तब उसने अपने बाप अर्जुन की बातचीत सुनी। अर्जुन अपनी पत्नी को युद्ध के चक्रव्यूह में घुसने की तरकीब बता रहा था। अभिमन्यु ने यह तरकीब तो सुन ली मगर किसी वजह से बाद की बात – जिसमें चक्रव्यूह से बाहर निकलने की तरकीब अर्जुन ने बतायी थी – वह नहीं सुन पाया। बाद में महाभारत की लड़ाई में क्या हुआ यह भी हम जानते हैं। जब बड़े–बड़े जनरैल मर गये तब नौजवान अभिमन्यु को लड़ाई में जाना पड़ा। वह चक्रव्यूह में घुस तो गया मगर बाहर निकल नहीं पाया – वहीं अपने चाचाओं, ताऊओं, आदि के हाथों मारा गया।

इस कहानी का हमारी इस किताब में एक खास दर्जा है।

पहली बात तो यह है कि अभिमन्यु अपने जन्म से पहले ही, अपनी माँ के पेट में, काफी कुछ सीखने लगा था। कुछ–कुछ यही बात सिर्फ अभिमन्यु में ही नहीं बल्कि हर बच्चे में देखी जाती है। हाँ, चक्रव्यूह वगैरह सीखना तो कहानीबाजी है, मगर वैज्ञानिक खोज ने साबित कर दिया है कि जन्म से पहले ही बच्चा बहुत कुछ तैयार हो जाता है। फिर जन्म के बाद शुरूआती 2–3 सालों में हर बच्चा अपने घर की बातचीत सुन–परख कर भाषा का ज्ञान हासिल कर लेता है। और 4–5 साल तक उसकी भाषाई काबिलियत लगभग एक व्यस्क आदमी के बराबर हो जाती है। हाँ।

फिर क्या होता है? फिर बच्चा स्कूल में डाल दिया जाता है – एक ऐसा चक्रव्यूह जो उसे अभिमन्यु की तरह खत्म करने की भरसक कोशिश करता है। 'मतारी' नहीं 'माता' कहो, 'अब्बू' नहीं 'पिता' कहो। गेन्द जिससे वह अच्छी तरह खेलता है, उसे फिर से ग–ए की मात्रा – आधान–द की शक्ल में पहचानना पड़ता है। अच्छे भली कहानियों की जगह अजीब, बेमतलब सीख रटनी पड़ती है। अचरज की बात नहीं कि एल्बर्ट आइन्सटीन जैसे महानतम वैज्ञानिक अपने बचपन में स्कूल से भागे थे, या भागने की सोचते रहते थे। अगर स्कूल नहीं होते, तो शायद आज तक दर्जनों आइन्सटीन हुए होते।

तो फिर, स्कूली पढ़ायी में क्या–क्या नुक्स है? टीचरों के तरीके, किताबों की बनावट, पढ़ाने के गुर, लिखवाने के तरीके, व्याकरण नाम का अजगर, तमीज़ से बैठने का आतंक, परीक्षा का जानलेवा बुखार – ये सब जैसे हमारे स्कूलों में हैं वैसा क्यों है? हम, हमारे सबसे प्यारी चीज़, यानि हमारे बच्चों को स्कूल नाम की जेल में क्यों झोंक देते हैं? सोचने वाली बात है।

गौरतलब है : स्कूलों का निज़ाम ज़्यादा पुराना नहीं है। प्राचीन काल में – पुरी दुनिया में – राजों – रजवाड़ों के राजकुमारों (राजकुमारियों को भी नहीं) को गुरुओं – आचार्यों द्वारा शिक्षा दी जाती थी। उन्हें आगे जाकर राजकाज तो करना होता था। आम जनता जाहिल रहती थी। पिछले सौ–डेढ़ सौ सालों तक। तब से स्कूल नाम का निज़ाम शुरू हुआ है। पढ़ने–पढ़ाने की साइंस के बारे में भी जानकारी कम थी। पिछले 20–30 सालों में यह जानकारी बढ़ी है। साथ–साथ स्कूली पढ़ाई में भी निखार आना शुरू हुआ है।

मगर, अभी सफर काफी लम्बा तय करना है। पढ़ के देखो।

बच्चों की भाषा सीखने की क्षमता

रमाकांत अग्निहोत्री

जब हम स्कूल में बच्चों को पढना–लिखना सिखाने का (अक्सर असफल) प्रयास करते हैं तो अक्सर यह भूल जाते हैं कि हर बच्चे में भाषा सीखने की असीम क्षमता होती है और वह अपनी भाषा व उसका व्याकरण पूर्णतया आत्मसात करने के बाद ही स्कूल आता है। यानी चार वर्ष की आयु का बच्चा भाषागत दृष्टि से एक वयस्क ही होता है। ध्वनि–संरचना का जटिल संसार बच्चा स्वयं बिना किसी की मदद के सुलझा लेता है। यही नहीं कि हर बच्चा जानता है कि उसकी भाषा की ध्वनियां कैसे बोली जाएंगी अपितु यह भी कि ये ध्वनियां किस क्रम में आ सकती है और किस क्रम में नहीं। ये सब नियम बच्चे के दिमाग में सुव्यवस्थित ढंग से उपलब्ध रहते हैं। बच्चा सार्थक शब्द ही बोलता है, यदा–कदा नए–नए शब्द बनाता भी है तो वे ध्वनि संरचना के नियमों का उल्लंघन नहीं करते। जरा सोचिए कि 'प, फ, ब, भ और म' में क्या अंतर है। सब ओष्ठय ध्वनियां हैं। चलिए ओंठ तो दिखाई देते हैं। कुछ अनुकरण संभव है। 'क, ख, ग, घ और ङ' के उच्चारण व अंतर को बच्चा कैसे पकड़ता है। और बच्चे को यह नियम कौन बताता है कि हिन्दी के अधिकतर शब्द 'कल, नल, काला, बाल, कील, दरवाजा, किताब, पेड़, फूल' आदि जैसे होंगे यानी उनकी संरचना 'व्यंजन–स्वर–व्यंजन–स्वर' होगी। 'परिणाम' शब्द की ध्वनि संरचना देखिए–

प्+अ+र्+इ+ण्+आ+म

बच्चा यह नियम कैसे पकड़ लेता है कि हिन्दी शब्दों के अंत में 'अ' (जो लिखित हिन्दी में सदैव दिखाई देता है) नहीं बोला जाएगा। 'कल' को 'क्+अ+ल्' बोलते हैं न कि 'क्+अ+ल्+अ' जैसा कि लिखा गया है।

कुछ देर के लिए लिखने को भूलकर ध्वनि–संरचना के बारे में सोचिए। हिन्दी–भाषी चार वर्ष की आयु के बच्चे के दिमाग में हिन्दी ध्वनि–संरचना का क्या चित्र होगा यह समझना तो असंभव है। लेकिन उसकी एक छोटी–सी झलक देखने का प्रयास हम कर सकते हैं, बच्चे की भाषा के आधार पर। बच्चा 'पापा, बाबा, मामा, चाचा, काका; काना, खाना; जाना, पाना; पानी, नानी; बाल, जाल; कील, नील आदि शब्दों में स्पष्ट अंतर करता है। यह अंतर कर पाना तभी संभव है जब बच्चे में 'प्, ब्, म्, क्, च्, ख्, ज्, न्, ल्,' आदि को एक–दूसरे से अलग करने की क्षमता हो। आखिर 'कील' और 'नील' में क्या अंतर है। केवल 'क्' और 'न्' का। 'क्' कण्ठ से बोली जाने वाली ध्वनि है– अल्पप्राण है व अघोष है। 'न्' दन्त्य है ' नासिक व सघोष। यह सब न तो मां–बाप जानते हैं, न रिश्तेदार।

बच्चा नियम पकड़ता है

बच्चा यह सब कैसे पकड़ लेता है? और यह एक–दो ध्वनियों की बात नहीं। पूरी ध्वनि–व्यवस्था इन सूत्रों में बंधी है। व्यंजन व्यवस्था देखिए (देखिए तालिका)।

बच्चा यह कैसे समझ लेता है कि 'प्' अल्पप्राण, अघोष, ओष्ठय ध्वनि है और 'घ्' महाप्राण, सघोष, कण्ठय ध्वनि है।

जैसा विवरण ऊपर दिया गया है वैसा तो बच्चा नहीं दे सकता। परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि यह अंतर उसके दिमाग में है। वह 'पर' और 'घर' में अंतर करता है। दोनों में 'अर' तो समान है। अंतर केवल

'प्' और 'घ्' का ही है। अल्पप्राण/महाप्राण में यह समझना होता है कि ध्वनि के साथ अतिरिक्त वायु का उपयोग होगा या नहीं – 'ख' में है लेकिन 'क' में नहीं। सघोष/अघोष में यह समझना होता है कि गले के अंदर छुपी श्वास नली के ऊपर बैठी स्वर–तंत्री में कंपन है या नहीं। 'क' और 'ख' में कंपन नहीं है, वे अघोष हैं, 'ग' और 'घ' में कंपन है, वे सघोष हैं।

	अघोष		सघोष		सघोष नासिक
	अल्पप्राण	महाप्राण	अल्पप्राण	महाप्राण	
कण्ठ	क	ख	ग	घ	ङ
तालव्य	च	छ	ज	झ	ञ
मूर्धन्य	ट	ठ	ड	ढ	ण
दन्त्य	त	थ	द	ध	न
ओष्ठय	प	फ	ब	भ	म
इन 25 व्यंजनों के अलावा य, र, ल, व, स, ह; श, ष, ळ, ड़ और ढ़ के साथ वर्णमाला में अक्सर संयुक्त व्यंजन 'क्ष, त्र, ज्ञ और श्र' भी दिए जाते हैं। कुछ अन्य ध्वनियों यथा क़, ख़, ग़, फ़, ज़ आदि के बारे में भी चर्चा करेंगे।					

<u>स्वर–ध्वनियों का संसार देखिए</u>

अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ

ओ औ अं अः ँ ऑ

('ऋ' के बारे में अलग से चर्चा करेंगे। लिखने में मात्राओं का प्रश्न भी सामने आएगा।)

'अ' और 'आ' में अंतर शायद बहुत सरल लगे पर जरा महससू करके देखिए कि 'इ' और 'ए' में क्या अंतर है। सुनने में तो साफ है जैसे 'कि' और 'के'। पर बोलने में यह अंतर कैसे लाया जाता है। बच्चा यह कैसे पकड़ लेता है कि 'उ' में जीभ को पीछे खींचना है व ओठों को गोल करना है? यह भी समझता है कि व्यंजनों में तो वायु–प्रवाह को कहीं–न–कहीं अवश्य रोकना है; परन्तु स्वरों में वायु निरंतर बहती रहनी चाहिए। क्या यह सब अनुकरण से सीखना संभव है?

ध्वनि संरचना के दो नियमों की, जो 3–4 साल का बच्चा निश्चित रूप से जानता है, हमने ऊपर चर्चा की। एक तो यह कि बच्चा पकड़ लेता है कि अधिकतर शब्दों की संरचना 'व्यंजन–स्वर–व्यंजन–स्वर' होगी। दूसरा यह कि ध्वन्यात्मक मूल्य स्थान के अनुसार अलग–अलग हो सकते हैं। 'लड़का' में 'ल' पूरा है लेकिन 'कमल' व 'कलकल' के तीनों 'ल्' आधे हैं। हिन्दी का नियम है कि 'व्यंजन–स्वर–व्यंजन–स्वर' की कड़ी में अंतिम स्वर बोला नहीं जाएगा।

कुछ और नियम देखिए। अनुस्वार–अनुनासिक (चंद्रबिन्दु) तथा नासिक्य व्यंजनों को कैसे लिपिबद्ध किया जाएगा तथा वर्णमाला व वर्तनी में उसका प्रयोग कैसे होगा; ये तो स्कूली बातें हैं, लिखाई–पढ़ाई से जुड़ी। परन्तु इनके उपयोग के ध्वन्यात्मक नियम तो बच्चा सीखकर ही स्कूल आता है। स्वयं अपनी काबिलियत से सीखकर। बच्चा जनता है– 'जिस वर्ग की ध्वनि उससे पहले उसी वर्ग का समस्थानीय पंचम नासिक व्यंजन'। यथा 'पंप' में 'म्' होगा; 'आनंद' में 'न्'; 'चंचल' में 'ञ'; 'पंडित' में 'ण्'। देखिए 'संबंध' में पहला अनुस्वार 'म्' (प वर्ग के 'ब्' से पहले) और दूसरा 'न्' (त वर्ग के 'ध्' से पहले) – क्या कोई बच्चा कभी 'सन्बम्ध' बोलता है?

बच्चा नित ऊल–जलूल नए शब्द बनाया करे पर इस नियम का उल्लंघन न होगा। 'इंक–विंक' में समस्थानीय नासिक व्यंजन 'ङ' ही आएगा। अनुनासिकता बिल्कुल अलग बात है और इसका संबंध स्वरों से है व्यंजनों से नहीं। कुछ विशेष शब्दों में बच्चे को यह सीखना है कि स्वर की ध्वनि मुख के साथ–साथ नाक से भी निकलेगी यथा आँख, आँधी, मैं, हूँ, ऊँट, फूँकना आदि। कुछ शब्दों में तो बच्चे को अनुनासिक स्वरों व नासिक्य व्यंजनों में सूक्ष्म ध्वनात्मक अंतर करना होता है जैसे– हँस (स्वर अनुनासिकता) व हंस (नासिक व्यंजन, पक्षी)।

<u>व्यंजन–स्वर–व्यंजन–स्वर</u>

ध्वनि–व्यवस्था के अन्य नियम देखिए। हर भाषा में संयुक्त ध्वनियों के अपने नियम होते हैं। भाषा इस्तेमाल करने वाला हर व्यक्ति इन्हें जानता है पर किसी को बता नहीं सकता। भाषा–वैज्ञानिक भी अनेक तरह के शोध के बाद उनकी झलक भर ही देख पाते हैं। क्योंकि प्रधान नियम है 'व्यंजन–स्वर–व्यंजन–स्वर' इसलिए संयुक्त–ध्वनियां कम ही देखने में आती हैं और जब आती हैं तो उन पर अनेक तरह के अंकुश लगे रहते हैं। अंग्रेजी में शब्द के शुरू में तीन से अधिक व्यंजन ध्वनियां आ ही नहीं सकती। और ये तीन भी केवल ऐसे शब्दो में मिलती हैं– Strike, Street, Scream, Split, Squash आदि। यानी अंग्रेजी का यह नियम है कि यदि शब्द के शुरू में तीन व्यंजन ध्वनियां होंगी तो

– पहली व्यंजन ध्वनि केवल 'स्'
– दूसरी व्यंजन ध्वनि केवल 'प्', 'त्' या 'क्'
– तीसरी व्यंजन ध्वनि केवल 'य्', 'र्', 'ल्' या 'व्'

हिन्दी में भी 'स्त्री' में 'स्', 'त्' व 'र्' ही हैं। 'प्रकार', 'न्यूनता', 'स्नान', 'स्नेह', 'क्रम', 'ट्रक', 'प्यास', 'व्याख्या' आदि के आरंभ में केवल दो ही व्यंजन ध्वनियां हैं। क्या हिन्दी में ऐसा संभव है कि शब्द के आरंभ में तीन व्यंजन ध्वनियां आएं और उनका क्रम होः

सघोष महाप्राण

\+

अघोष महाप्राण

\+

अघोष अल्पप्राण

(यथा 'घ्')+(यथा 'ख्')+(यथा 'क्')

आखिर बच्चे कैसे समझ लेते हैं कि 'हरव्कीच' जैसा शब्द हिन्दी में नहीं हो सकता? यही नहीं कि बच्चे हिन्दी के 41 व्यंजनों को अलग कर लेते हैं; वे इस नियम को भी सहज ही आत्मसात कर लेते हैं कि कौन–कौन सी व्यंजन ध्वनियां एक–दूसरे के साथ जुड़ सकती हैं। संभव है कि हिन्दी का यह नियम है कि 'सघोष महाप्राण + अघोष महाप्राण + अघोष अल्पप्राण' वाला क्रम हिन्दी में नहीं हो सकता। (जो अन्य किसी भाषा में हो सकता है)। यानि 'ध्थ्ठे', 'भ्थ्टा', 'ध्ख्ती', 'भ्चू' आदि हिन्दी में संभव नहीं। हिन्दी का शब्दकोष देखें ' शब्दों के शुरू में अधिकांश 'क्' के साथ 'र' मिलेगा या 'श्' यानी 'क्रम', 'क्षमा' आदि। दो ही व्यंजन; उसके बाद स्वर।

'व्यंजन–स्वर', 'स्वर–व्यंजन' का क्रम बना रहे, यानी दो स्वर या दो व्यंजन साथ–साथ न आएं इस व्यवस्था के लिए अलग–अलग भाषाएं अलग–अलग प्रावधान करती हैं। बांग्ला में 'सीता का' कहने के लिए केवल 'र्' जोड़ते हैं, 'सीतार'। लेकिन 'राम का' कहने के लिए केवल 'र' जोड़ने से काम नहीं चलेगा क्योंकि 'राम' में दो व्यंजन साथ–साथ आ जाएंगे। इसलिए 'एर' का प्रयोग, 'र' से पहले स्वर, 'रामेर'।

अंग्रेजी में भी यही नियम भाषा की पूरी ध्वनि–संरचना पर फैला हुआ है। a boy कहते हैं लेकिन an egg; दो स्वरों के बीच 'न्' आ गया। car-park में दोनों 'र' का उच्चारण नहीं होता, इंगलैंड की अंग्रेजी में। लेकिन car-engine में 'र्' का उच्चारण होगा। 'स्टेशन' को पंजाब में 'सटेशन', उत्तर प्रदेश में 'इस्टेशन' व हरियाणा में 'टेशन'। दो व्यंजन साथ–साथ भाते नहीं हमें। बोलने को तो बोल ही सकते हैं। अंग्रेजी में तो दो स्वर साथ होने पर 'र्' अक्सर आसमान से टपक पड़ता है जैसे India and Pakistan में India के बाद 'र्' आएगा उच्चारण में; वैसे ही idea of में idea के बाद।

बच्चा यह कैसे सीखता है?

ध्वनि–संरचना के संसार की यह एक छोटी–सी झलक है। बच्चा यह सब स्वयं कैसे सीख लेता है, चार वर्ष की छोटी–सी आयु में? अनुकरण से तो नहीं सीख सकता। अनुकरण उस बात का हो जो कोई दिखा सके या बता सके। ये नियम तो भाषा वैज्ञानिक भी ठीक से नहीं समझते। इस तरह का भाषागत् ज्ञान होने के लिए खासकर दो चीजें होनी आवश्यक लगती है। भाषा सीखने की सहजात क्षमता और ऐसा वातावरण जिसमें भाषा तो खूब हो लेकिन स्पष्ट तौर पर नियम व व्याकरण न हों। वातावरण ऐसा कि बच्चे को कुछ बोझ महसूस न हो, बोरियत न लगे, मजबूरी न हो। बच्चे का ध्यान मौके की बात पर हो, न कि व्याकरण के नियमों व भाषा की शुद्धता पर। बच्चे के लिए हम किसी विशेष भाषागत वातावरण की रचना नहीं करते। स्वाभाविक, सहज संदर्भों में भाषा का प्रयोग करते हैं – उससे बातचीत करते हैं, उसकी बातचीत (कितनी भी गलत क्यों न हो) प्यार से सुनते हैं व उसको अन्य लोगों की बातचीत (चाहे उसे समझ आए न आए) सुनने की पूर्ण स्वतंत्रता देते हैं। सामाजिक बातचीत के अथाह समुद्र से बच्चा स्वयं एक सुव्यवस्थित व्याकरण व शब्द ढूंढ लाता है। ये कहां तक जायज है कि ऐसे बच्चे को हम स्कूल आने पर वर्णमाला, मात्रा व वर्तनी सिखाना शुरू करते हैं?

शुरूआत वर्णमाला से ही क्यों?

आप खुद ही सोचिए ऐसी क्षमताओं वाले बच्चे को जब आप 'न' से 'नल' व 'च' से 'चल' पढ़ाते–लिखाते हैं तो उसे कितनी बोरियत होती होगी। जो बच्चा रोजमर्रा की बातचीत से स्वयं सब ध्वनियां एवं ध्वनि संरचना के जटिल नियम सहज ही ढूंढ लाता है, क्या वह लिखने–पढ़ने की भाषा से वर्णमाला व वर्तनी के नियम न ढूंढ लाएगा? पता नहीं कब बच्चे की काबिलियत पर हम यकीन करना सीखेंगे?

बच्चे को कविता, कहानी, चित्रकथा, गीत सुनाइए–पढ़ाइए, उसके आसपास उसकी मनचाही सामग्री रखिए। हिज्जे सीखना कोई कठिन कार्य नहीं है बच्चे के लिए। अलग–अलग संदर्भों में अलग–अलग शब्द–चित्रों में जब वही वर्ण बच्चों के सामने आएंगे तो वह उन्हें स्वयं ही पहचान लेगा। सीखने की प्रक्रिया यह नहीं है कि टुकड़े–टुकड़े जोड़ो और एक पूर्ण इकाई बन जाएगी। ठीक इससे उल्टी है। एक पूर्ण छवि पहले बनती है उसमें रंग बाद में भरे जाते हैं, अलग–अलग तरह से। आप ही बताइए– ताजमहल बनने से पहले बना या बनने के बाद? सीखने की मुख्यतः वही दो शर्तें हैं – बच्चे की काबिलियत पर विश्वास व बच्चे के लिए मज़ेदार वातावरण का निर्माण।

बच्चों की भाषा सीखने की क्षमता

रमाकांत अग्निहोत्री

हिन्दी की वर्तनी व्यवस्था भी बेहद जटिल है। ऐसी स्थिति में अध्यापक का क्या रोल होना चाहिए?

देवनागरी के मानकीकरण की कोशिश लगातार होती रही है और इसके साथ–साथ देवनागरी लिपि सिखाने के तरीकों का भी मानकीकरण होता रहा है। आखिर हिन्दी राजभाषा है (ध्यान दें, राज्य भाषा नहीं है संविधान के अनुसार) और भारत सरकार ने समय–समय पर इसकी लिपि व वर्तनी में एकरूपता लाने के लिए विविध स्तरों पर प्रयास किए हैं। 1966 में शिक्षा मंत्रालय ने 'मानक देवनागरी वर्णमाला' प्रकाशित की। 1967 में 'हिन्दी वर्तनी का मानकीकरण' पुस्तिका छपी और 1989 में केंद्रीय हिन्दी निदेशालय ने 'देवनागरी लिपि तथा हिन्दी वर्तनी का मानकीकरण' नामक पुस्तिका में 'मानक हिन्दी वर्णमाला, मानक हिन्दी वर्तनी, परिवर्धित देवनागरी वर्णमाला तथा संख्यावाचक शब्दों' को एक साथ छापा। इसकी प्रस्तावना में केंद्रीय हिन्दी निदेशालय के निदेशक ने पेज 3–4 पर लिखा हैः

''प्रायः देखा गया है कि हिन्दी लिखते समय लोग देवनागरी वर्णमाला में प्रयुक्त वर्णों, शिरोरेखा और मात्राओं की लिखावट में एक निश्चित दिशा–पद्धति का निर्वाह नहीं करते। प्रारंभिक शालाओं में इसकी ओर ध्यान नहीं दिया जाता। द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी सिखाते समय तो इस प्रसंग पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। इसलिए 'हिन्दी वर्णमाला : लेखन विधि' इसमें दी जा रही है।''

इस लेखन विधि में 'स' लिखना ऐसे सिखाया गया है

लेकिन उसको ऐसे लिखने में क्या आपत्ति हैः

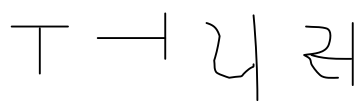

या उन हजारों अन्य तरीकों से जिनसे 'स' लिखा जा सकता है। हर बच्चा अपनी इच्छानुसार अपना लिखने का तरीका बनाए इससे किसी को कोई आपत्ति क्यों होगी? अंततः वास्तव में होता तो ऐसा ही है। शायद ही कोई दो व्यक्ति हों जिनकी लिखावट बिल्कुल एक ही जैसी हो। क्यों पठन–पाठन का इतना मूल्यवान समय हम ऐसी बेकार गतिविधियों में गंवाते हैं? क्या लिखावट में सरलता व महनत का कोई वैज्ञानिक पैमाना हो सकता है?

वर्तनी की कठिनाइयां

यह सच है कि हिन्दी की वर्णमाला व वर्तनी सीखना कोई आसान काम नहीं। वास्तव में यह बात हर भाषा को लिखने–पढ़ने के बारे में सच है। हिन्दी के विषय में अधिक कठिनाई इसलिए आती है कि लोग इस भाषा को बहुत वैज्ञानिक समझते हैं; एवं ऐसा मानते हैं कि यह भाषा बच्चे के लिए बहुत सरल होनी चाहिए। फिर जब बच्चे निरंतर गलतियां करते हैं तो मां–बाप व अध्यापक झुंझलाते हैं। हिन्दी लिखने का देवनागरी में जिस तरह मानकीकरण हुआ है उसकी वैज्ञानिकता व सरलता दोनों पर प्रश्न चिह्न हैं। बच्चों को न सिर्फ व्यंजन व स्वर वर्ण सीखने होते हैं, बल्कि उन्हें निम्न मात्राएं भी सीखनी होती हैं।

ा ि ी ु ू े ै ो ौ

और अक्सर साथ ही हल्–चिह्न (्) और काफी जगह देवनागरी अंक।

1 2 3 4 5 6 7 8 9 0

शायद देवनागरी में ही ऐसा होता है कि एक ही वर्ण के कई रूप होते हैं और उसे चारों तरफ से बदला जा सकता है। उदाहरण के लिए 'क' को देखिए: 'क', 'क्', 'क', 'कि', 'की', 'कु', 'कू', 'के', 'को', 'कं' आदि और फिर 'क्ष' में भी 'क्'। दाएं–बाएं, ऊपर–नीचे हर तरफ कुछ न कुछ जोड़ने की संभावना। रोमन लिपि में ऐसा कुछ नहीं। दाईं तरफ को बराबर लिखते जाइए, बस। 'कि' में 'इ' की मात्रा लिखी पहले जाती है, पर बोली बाद में जाती है। अध्यापक अक्सर कहते हैं– देवनागरी सरल है, जैसा बोलो, वैसा लिखो। हिन्दी लिखने में यह बात सदा सार्थक नहीं होती। बच्चे बहुत–सी गलतियां मात्राओं के प्रयोग में करते हैं। सच बात यह है कि आज की हिन्दी में 'इ' और 'ई' व 'उ' और 'ऊ' में कोई विशेष अंतर नहीं रहा है। इसलिए बच्चे वही लिखते हैं तो सुनते हैं। यह बात 'ऋ' व 'श' और 'ष' के प्रयोग से और भी स्पष्ट हो जाती है। संस्कृत में 'ऋ' एक स्वर–ध्वनि थी। हिन्दी वर्णमाला में इसे लिखा तो स्वरों में जाता है पर इसका उच्चारण है 'रि' यानी 'व्यंजन' (र्) + स्वर (इ)'। (गुजरात, महाराष्ट्र व दक्षिण भारत में इसका उच्चारण 'रू' जैसा है।) जब 'ऋ' व्यंजनों के बाद आती है तो उच्चारण कई बार 'र' हो जाता है जैसे 'कृपा' या 'क्रपा', 'नृप' का 'न्रप' आदि। इसी प्रकार 'श' व 'ष' में किसी समय अंतर रहा होगा, लेकिन अब नहीं है। अब यही कहकर समझाना पड़ता है कि 'पेट कटा 'ष' लिखो', या षट्कोण वाला 'ष' – शक्कर वाला 'श' नहीं आदि। इस परिस्थिति में यदि बच्चे:

ऋषि को रिशि,

विष को विश,

ऋतु को रितु,

कोष को कोश

आदि लिखें तो उनका क्या दोष? उन्हें तो सही लिखने के लिए सराहना मिलनी चाहिए; लेकिन उन्हें तो सदैव गलत लिखने के लिए डांट पड़ती है।

जैसा बोलो वैसे लिखो?

इसी प्रकार आपको अनेक ऐसे शब्द मिल जाएंगे जिनमें इ–ई, उ–ऊ, ए–ऐ या ओ–औ में अंतर साफ नहीं है। क्या 'भक्ति' की 'इ' उतनी ही छोटी है जितनी की 'कि' या 'कवि' की या फिर लगभग उतनी ही लंबी है जितनी की 'की' या 'घी' की। आप 'पेन' बोलते हैं या 'पैन'; 'भोंकना', 'भौंकना' या 'भूंकना'। उच्चरण वास्तव में अनेक हैं लेकिन लेखन मानकीकृत एकरूप। बच्चे गलती करें तो दोष उनका। वास्तव में सही लिपि सिखाने का नियम यह हो ही नहीं सकता कि 'जैसे बोलो, वैसे लिखो।' वर्तनी में सिखाने वाली बात ही यह कि, बोला जाएगा 'रिशि' लेकिन लिखना है 'ऋषि'। बच्चे को यह सिखाना है कि 'ऋतु', 'ऋषभ', 'ऋण', 'ऋषि' आदि कुछ ऐसे शब्द हैं जिनमें 'रि' को 'ऋ' लिखना है। इसी प्रकार 'श' और 'ष' के बारे में। वर्तनी के जो नियम तर्कसंगत हैं वे तो बच्चा खुद ही आत्मसात कर लेगा। 'क्ष', 'त्र', 'ज्ञ' और 'श्र' के संबंध में बच्चों को यह समझने में कोई परेशानी नहीं होती कि इनमें दो–दो व्यंजन शामिल हैं। हां, यदि आप 'कक्षा' को 'कच्छा' बोलते हैं और बच्चा आपके बोलने पर वही लिखता है जो आप बोलते हैं तो आपको क्या करना चाहिए यह आप ही जानिए!

'ड़' और 'ढ़' हिन्दी वर्णमाला में कई बार अलग से लिखे जाते हैं। आजकल तो 'ट वर्ग' के साथ ही लिख देते हैं। इनकी भी अपनी कहानी है।

अधिकतर शब्दों के शुरू में 'ड' व 'ढ' ध्वनि का प्रयोग होता था व दो स्वरों के बीच 'ड़' व 'ढ़' यथा डर, डाल, खड्ड, ढाल, ढक्कन आदि; व स्वरों के मध्य में लड़का, घड़ा, बड़ा, पढ़ाई, चढ़ाई आदि। पर संस्कृत, फारसी व अंग्रेजी के अनेक शब्दों पर यह नियम नहीं जमा जैसे– निडर, डालडा, सोडा, रेडियो, झंडा आदि। ध्वनि संरचना की दृष्टि से चारों ध्वनियां महत्त्वपूर्ण हैं। पैर में कहां बिन्दी लगेगी एवं कहां नहीं, इसका कोई नियम नहीं है। अगर आप 'रेड़ियो' बोलते हैं तो बच्चा शायद वही लिखेगा।

क़, ख़, ग़, ज़, और फ़

जिन ध्वनियों के लिए वर्णमाला में क़, ख़, ग़, ज़ और फ़ रखे गए हैं उनकी कहानी तो और भी जटिल है। क्या आप क़यामत, क़साई, नक़द, नक़ल, अख़बार, ख़बर, ख़ाकी, ख़ानदानी, तारीख़, शराबख़ाना, काग़ज, नग़मा, सुराग़, सौग़ात, ज़ख्म, ज़मानत, ज़मींदार, फ़र्ज़, नज़ारा, फ़रवरी, फ़कीर, फ़सल, मुत, माफ़ी, लिफ़ाफ़ा आदि को हिन्दी के शब्द मानते हैं, और क्या आप चाहते हैं कि इनका उच्चारण भी संस्कृत में आए शब्दों जैसा शुद्ध हो?

साफ है इस बात का उत्तर इस पर निर्भर करेगा कि आपकी हिन्दी की परिभाषा क्या है? काफी प्रयत्न हुए हैं इन शब्दों को हिन्दी से निकाल फेंकने के। रही सही कसर छपाई की मज़बूरियों ने निकाल दी। 'क़' और 'ग़' के बारे में तो मानकीकरण करने वाली संस्थाओं ने मान ही लिया है कि वे हिन्दी के 'क' और 'ग' में घुल–मिल गए हैं– तो 'कसाई', 'कागज़' बोलिए और वैसा ही लिखिए। और ''.....ख़'' लगभग हिन्दी 'ख' में खपने की प्रक्रिया में है और शेष दो (ज़, फ़) धीरे–धीरे अपना अस्तित्व खोने/बनाए रखने के लिए संघर्षरत हैं'' (पृष्ठ 13, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, 1989) आप अध्यापक हैं या माता–पिता हैं – आप ही निर्णय लें कि आप किस तरफ संघर्ष करना चाहते हैं।

चंद्रबिन्दु की स्थिति

यह तो स्पष्ट हो ही गया होगा कि कब कौन–सी ध्वनि किस भाषा की कहलाएगी और उसको लिखने के लिए कौन–सा वर्ण वर्णमाला में रखा जाएगा, यह निर्णय राजनैतिक है। खैर छपाई की राजनीति ने काम काफी सरल कर दिया है: 'ड़' और 'ढ़' को छोड़कर शायद ही आपको किसी वर्ण के नीचे बिन्दी दिखाई दे। चंद्रबिन्दु भी आपको कहीं दिखाई नहीं देगा। और कई जगह तो पूर्ण–विराम की जगह आपको फुल–स्टॉप ही देखने को मिलेगा। 'रव' अब 'ख' लिखा जाता है, सोचिए क्यों? आखिर 'रव' के साथ भ्रम होने का प्रश्न आज ही तो न उठा होगा?

केवल भ्रम से बचने के लिए ही ध्वनि या वर्णों का लेखा–जोखा नहीं होता। आखिर

ताक	ताक़
हंस	हँस
खाना	ख़ाना
राज	राज़
बाग	बाग़
सजा	सज़ा
फन	फ़न

आदि में काफी अंतर है। यदि ँ व 'क़', 'ख़', 'ज़', 'ग़', 'फ़' को निकाल दिया जाए तो शब्दों के अर्थ में भ्रम की काफ़ी गुंजाइश बन जाती है।

''किंतु जहां चंद्रबिन्दु के प्रयोग से छपाई आदि में बहुत कठिनाई हो और चंद्रबिन्दु के स्थान पर बिंदु का प्रयोग किसी प्रकार का भ्रम उत्पन्न न करे, वहां चंद्रबिंदु के स्थान पर बिंदु के प्रयोग की छूट दी जा सकती है''

(पेज 13, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, 1989)

अंग्रेजी के शब्द सही लिखने के लिए वर्णमाला में कुछ जोड़ना भी पड़े तो चलेगा। चंद्रबिन्दु तो हटा दिया, लेकिन वृतमुखी (ॅ) जोड़ दिया यथा हॉल, डॉक्टर, कॉलिज आदि।

वर्तनी के दोहरे प्रचलन

बड़ी ही जटिल व्यवस्था है वर्तनी के नियमों की। संयुक्त–वर्ण कैसे लिखे जाएंगे; हलन्त का क्या औचित्य है? 'श्रीमान्', 'महान्' लिखें या 'श्रीमान', 'महान' या दोनों ही चलने दें। 'र' को आपने 'ऋ' व 'श्र' में देखा।

और भी कई समस्याएं सुलझानी हैं पांच–छः साल के बच्चे को जो हिन्दी की लिपि सीख रहा है। स्वरों का रूप कहां 'आ', 'इ', 'ई' आदि होगा और कहां इन्हें मात्राओं से दिखाया जाएगा; 'गयी' सही है या 'गई' या दोनों; 'द्वितीय' सही है या 'द्‌वितीय' या 'दि्वतीय'; 'कुत्ता' सही है या 'कुत्‌ता' या 'कुत्ता'। विभक्ति–चिह्न सर्वनाम के साथ लिखें या नहीं – 'आपके लिए' लेकिन 'आप ही के लिए'। 'ऐ' और 'औ' का क्या–क्या उच्चारण हो सकता है – 'कैसा', 'गवैया', 'और', 'कौवा'।

वर्तनी की जटिलता के कुछ और उदाहरण देखिए:

रम

मर

आरती

क्रम, भ्रम, द्रव्य, ग्राम

ट्रक, ट्रेन, ड्रम, ड्रामा

गर्म, धर्म, शर्म, कर्म

क्या 'रम' का 'र' वही है जो 'मर या आरती' में है? हर बच्चा 'जानता' है कि 'मर' व 'आरती' का 'र' स्वर रहित है; 'रम' के 'र' में 'अ' है। देखने व लिखने में लेकिन बराबर।

'र' पैर में या सिर पर तब जाता है जब संयुक्त व्यंजनों का हिस्सा होता है। संयुक्त व्यंजनों में यदि पहला 'र' है तो सिर पर जैसे – 'गर्म'; यदि दूसरा 'र' है तो पैर में जैसे – 'क्रम'; और यदि दूसरा 'ट' वर्ग के साथ है तो रूप ऐसा जैसा कि 'ट्रक' में है। आखिर यह जटिल नियम कौन जानता है; कौन बच्चों को सिखाता है? लेकिन हर बच्चा स्वयं लिखित सामग्री से यह नियम बना लेता है।

'क्रम' व 'कर्म' में बच्चे गलती नहीं करते। शायद ही कोई बच्चा हो जो 'ग्राम' को 'गार्म' लिखे। हां, यह तो हम लोग खुद ही नहीं जानते कि 'गरदन' सही है या 'गर्दन'; 'गरम' या 'गर्म'; 'सरदी' या 'सर्दी'; 'कुरसी' या 'कुर्सी'; 'बरतन' या 'बर्तन'।

सचमुच बहुत ही जटिल है वर्तनी व्यवस्था। कहीं–कहीं तो बहुत साफ़ नियम हैं। चेतन स्तर पर अक्सर ये नियम हमें मालूम नहीं होते। लेकिन हर हिन्दी पढ़ने–लिखने वाला व्यक्ति ये नियम स्वयं अलग–अलग रास्तों से बना लेता है। लेकिन बहुत कुछ ऐसा भी है जिसका कोई तर्क संगत आधार नहीं। दोनों परिस्थितियों में बच्चे को खुद सीखना है और उसमें सीखने की क्षमता है। ध्वनि–व्यवस्था लिपि व्यवस्था से कहीं अधिक जटिल है। और वहां तो कुछ ऐसा भी नहीं जो स्थाई हो। स्वाभाविक प्रश्न है– अध्यापक का क्या रोल है? यही कि सीखने–सिखाने की प्रक्रिया को समझें, बच्चे की क्षमता को समझें और बच्चे को अधिक–से–अधिक रोचक सामग्री दें।

इस लेख के लिए निम्न पुस्तकें संदर्भित की गई हैं:

1. देवनागरी लिपि तथा हिन्दी वर्तनी का मानकीकरण, 1989, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नई दिल्ली।
2. मानक हिन्दी का स्वरूप, भोलानाथ तिवारी, 1996, प्रभाव प्रकाशन, दिल्ली।
3. देवनागरी लेखन तथा वर्तनी व्यवस्था, लक्ष्मी नारायण शर्मा, 1976, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा।

भाषा सिखाना माने क्या

हृदयकान्त दीवान

यह आलेख मध्यप्रदेश के स्कूलों में काम कर रहे एकलव्य समूह के प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम पर आधारित है। यह समूह वैकल्पिक पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तक निर्माण, पठन–पाठन विधियों, शिक्षक प्रशिक्षण, मूल्यांकन व आंकलन, शिक्षा के विकेन्द्रिकृत संचालन आदि पहलूओं पर लगभग 550 सरकारी व गैर–सरकारी स्कूलों में काम कर रहा है। इस लेख में व्यक्त विचारों से जरूरी नहीं, एकलव्य समूह के सभी सदस्य सहमत हों।

यह बात शुरू होती है, प्राथमिक शाला में आने वाले बच्चों को पढ़ाना–लिखना सिखाने से। हमारे साथियों के शुरूआती अवलोकनों, अहसासों व विश्लेषण ने हमें यह तो समझा दिया था कि बच्चे सामान्य तौर पर पाठ्यपुस्तकों में लिखी बातें पढ़ नहीं पाते। उनमें से प्राथमिक शाला के अधिकांश छात्र–छात्राओं के लिए किताब पढ़ने का मतलब है याद्दाश्त से उस पन्ने पर लिखी बातें सुनाना। उन्होंने यह भी पाया कि सरल हिन्दी समझना भी कक्षा 6–8 वालों के लिए कठिन है और संस्कृतनिष्ठ हिन्दी समझना भी। सरल हिन्दी वह कुछ ज्यादा समझ पाते हैं पर वह ज्यादा भी इतना कम है कि उसे हासिल करने के बाद भी वह पढ़ी जा रही सामग्री को ठीक से समझ नहीं पाते। बहुत से तो हिज्जे करके पढ़ने के कारण शब्द को ही ठीक से समझ नहीं पाते थे और बहुत से तो शब्द तो समझ लेते थे लेकिन पूरा वाक्य मुश्किल था। कोई बात अगर 3–4 वाक्यों से मिलकर समझाई गई हो तो उसके लिए समझना बहुत ही मुश्किल था।

प्राथमिक शालाओं में शुरूआती अनुभव

प्राथमिक शालाओं में जाकर बच्चों के साथ बातचीत में यह कोशिश की कि वे उनकी रूचि की बातें पता करें, वह विषय पता करें जिन पर वे अकसर बातें करते हैं, उनके किस्से कहानियां व गीत आदि पता करें। यह सब इसलिए क्योंकि उनके परिचित विषय व उनके किस्से कक्षा में उपयोग करके उनमें बातचीत करवाई जा सकती है। ऐसे मौके उत्पन्न किए जा सकते हैं जिनमें ज्यादा बच्चे ज्यादा से ज्यादा बोलें और एक दूसरे की सुने, बजाए के चुपचाप बैठकर शिक्षक की सुनने के।

हमने बच्चों की बातचीत को रिकार्ड करने की कोशिश की, उनके साथ कविताएं गाईं, चित्र बनवाए व बनाए और उन्हें तरह–तरह के चित्र दिखाए। चित्र दिखाने के पीछे उद्देश्य यह था कि हम चित्र पर बातचीत करें और अपने विचारों को अभिव्यक्त करें। लेकिन चित्र दिखाने में यह समझ में आया कि चित्रों की भी एक भाषा है और उसे भी जानना आवश्यक है।

माध्यमिक शाला में विज्ञान के प्रयोगों को करवाते समय कई बातें समझ आईं। यह बातें न सिर्फ इन कक्षाओं में पढ़ रहे छात्रों के लिए थी परन्तु उन सभी के लिए भी थी जो इन कक्षाओं में व प्राथमिक शालाओं में पढ़ा रहे थे। निर्देश पढ़कर समझना व उनके अनुसार प्रयोग करना सबके लिए मुश्किल था और उतना ही मुश्किल था अपने अवलोकनों को लिख पाना। बोल कर बताना अपेक्षाकृत आसान था किंतु लिखने में अत्यधिक कठिनाई थी। अगर अवलोकन निर्धारित तरह से लेने हों व निर्धारित मापज़ोख लायक चीजों के हों और उन्हें किसी जगह भरना हो तो शिक्षक वह काम कर पाते किंतु अगर तालिका स्वयं सोच कर बनानी हो तो फिर काम नहीं होता था।

भाषा सिखाने में क्या–क्या

हमने सोचा कि भाषा सिखाने का मतलब क्या–क्या है? अब तक यह सोच रहे थे कि भाषा सिखाने याने समझ कर पढ़ना सिखाना, अपनी बात बोल पाना, दूसरे की बात समझ पाना। स्वयं भी हम अक्षरों, शब्दों व वाक्यों से मिल कर बने पैराग्राफों व सम्पूर्ण अध्यायों की बात कर रहे थे। फिर हमने उसमें अब चित्रों को पढ़ना व समझना जोड़ा, तालिकाओं को जोड़ा और एक बार जब यह बुनियादी बात समझ आ गई कि भाषा याने सिर्फ अक्षर व वाक्य आदि नहीं है तो उसमें नक्शा पढ़ना, हाव–भाव, संकेत आदि सभी जुड़ गया।

भाषा एक विषय या.....?

इस सब के जुड़ने का क्या अर्थ हुआ और यह क्यों जुड़ पाया इसके बारे में अलग से इसके पहले एक और जरूरी बात है। हमने स्कूलों में भाषा के अध्ययन व अध्यापन को समझने का प्रयास किया। हमें लगा भाषा शिक्षण में आम तौर पर जोर होता है भाषा को एक विषय के रूप में पढ़ाने पर। विषय का अर्थ यह हुआ जैसे हम विज्ञान पढ़ते हैं, सामाजिक अध्ययन पढ़ते हैं वैसे ही हिन्दी। हमारा झुकाव जल्दी से ही साहित्यिक कविताओं, कहानियों व उनके विश्लेषण पर होता है। भाषा को समझने व उसके इस्तेमाल की ताकत को बढ़ाने के बजाय पाठ्यपुस्तक में चयनित रचनाओं पर केन्द्रित प्रश्नों के सही उत्तर याद करने पर ज्यादा ध्यान दिया जाता है। शुरू में अपठित बनायी सामग्री को पढ़ कर स्वयं सवालों के उत्तर लिखने की अपेक्षा बच्चों से नहीं की जाती है। उन्हें रट कर ही शिक्षक द्वारा सही माने गए उत्तर उपयुक्त शब्दों में लिखने हैं। चयनित रचनाओं की भाषा व उनका स्तर भी ऐसा नहीं कि जिन्हें पढ़ने वाले बच्चे स्वयं पढ़ कर समझ सकें और स्वरूप अधिकांशतः ऐसा नहीं कि उन्हें उस रचना को पढ़ने में मजा आए। यही हाल का है।

प्राथमिक शालाओं में भाषा को उतना ही समय मिलता है जितना अन्य विषयों को। ऐसा उस समय होता है जब बहुत से बच्चों के लिए स्कूल, शिक्षक व किताब की भाषा उनकी अपनी भाषा से दूर से लेकर बहुत दूर तक है। भाषा सिखाने का मतलब लिपि, वर्तनी, सुन्दर लिखाई व व्याकरण बन जाते हैं। महत्व की दृष्टि से समय के अंसतुलित विभाजन के कारण भाषा से खेलने, उसमें डूबने, उसे अहसास करने व आत्मसात करने का समय ही नहीं मिलता। असल में तो इस बात का महत्व ही नहीं समझा जाता क्योंकि स्कूल में भाषा भी एक विषय है, आधार नहीं। आधार बन रहा हो तो जरूरी नहीं है कि उसमें कुछ दिखे और बच्चा क्रमबद्ध ढंग से कुछ सीखता व उसे प्रदर्शित करता दिखे। आधार तो जमीन के नीचे ही रहता है न। स्कूलों में इतना धैर्य कहां, वे तो जल्द से जल्द इमारत खड़ी कर देना चाहते हैं। चाहे वह आधारहीन, ढहने वाली व अनुपयोगी ही क्यों न हो।

बच्चे कैसे बोलें

कैसे बच्चों का पढ़कर समझने में आत्मविश्वास बने, कैसे वे अपने आप को जाहिर करने लायक हो पाएं यह हमारे लिए कुछ प्रमुख सवाल थे। हमने यह समझा कि कक्षा में बच्चों के लिए भाषा बातचीत का माध्यम बने। सभी विषयों का अध्ययन व अध्यापन किसी भाषा के माध्यम से ही होता है, इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि बच्चों को इस सब में मुश्किल न हो। बच्चे अपनी भाषा, जो कि उनकी संस्कृति, उनके मन, उनके घर व आधार का एक हिस्सा है, तो सीख नहीं रहे। फिर एक दूसरी भाषा में वे सम्प्रेषण की आजादी कैसे हासिल करें? उनकी भाषा और हमारे स्कूलों की भाषा में बहुत फर्क है। जहां कहीं भी सामान्य स्कूलों में हमें उनकी भाषा की झलक मिलती है, हम उसे गलत कह देते हैं। याने उनकी पूरी संस्कृति, अनुभव व आत्मसम्मान मिट्टी में मिल जाता है क्योंकि स्कूल में उसका उपयोग गलत है, गंवारी है। न जाने और भी क्या–क्या जुड़ा है उनकी अपनी भाषा के उपयोग की इस बदहाली के साथ।

बच्चों की भाषा व भाषा की समृद्धता बनाम गलतियां

इस सबसे हमने सीखा उनकी भाषा को कक्षा में स्थान देना, सही–सही लिखने व गलतियां ढूंढने के स्थान पर लिखने व बोलने के ज्यादा मौके देना, इस बात पर ध्यान देना। क्योंकि हम सब कोशिश करके–गलतियां करके ही सीखते हैं। कोई भी पहले ही दिन से ठीक–ठाक व उल्लेखनीय ढंग से कोई काम नहीं कर सकता। गलतियां हमारे सीखने के पथ को दर्शाती हैं। वे ही हमारे द्वारा विचारों, आइडियाओं की समझ के विकास का आधार है। हमें यह लगा कि भाषा सीखने में यह बात बहुत ही आवश्यक है।

अपनी भाषा का ढांचा, उसका व्याकरण हर बच्चा सीख जाता है क्योंकि वह भाषा को बोलते–बोलते, सुनते–सुनते सारे नियम समझ लेता है। हो सकता है कि वह उन्हें बता न पाए, समझा न पाए किन्तु वह वाक्यों को पहचान सकता है, व ठीक कर सकता है। अपनी भाषा को सीखना उसके लिए एक सहज एवं स्वाभाविक क्रिया है फिर दूसरी भाषा सिखाने में गलतियों, व्याकरण व अस्वाभाविकता पर कितना जोर हो? क्या विभिन्न परिस्थितियों में भाषा का इस्तेमाल कर वह उस भाषा के व्याकरण का अहसास नहीं कर सकता?

गलतियां अथवा सृजन

हम गलतियां सुधारने की अपेक्षा उन्हें बढ़ावा देना चाहते थे, उनकी अपनी भाषा के इस्तेमाल के लिए। उनमें यह विश्वास व आस्था जगाने की कि वह स्कूल में उपयोग की जा सकती है व इस पिछड़ा नहीं समझा जाएगा। हम उसके लिए कक्षा में व कक्षा के बाहर भाषा के लचीले व निजी इस्तेमाल के मौके बनाने पर जोर देना चाहते हैं।

भाषा के विकास व उसकी समृद्धता का उसके लचीलेपन व सहजता से सीधा संबंध है। कोई भी जीवित भाषा व्याकरण की किताबों व शब्दकोशों की दीवारों में कैद नहीं हो सकती। ये ग्रंथ भाषा सीखने में सहायता के लिए है, न कि उसे सीखने में व उसके ज्यादा अलग–अलग मौकों पर उपयोग की क्षमता के विकास में बाधा बनने के लिए। हमने यह माना की बच्चे की भाषा का मानकीकृत भाषा में मिल जाना एक हद तक भाषायी समृद्धता को बढ़ाएगा और ऐसी संरचनाओं के विकास में मदद करेगा जो सीखने वालों के लिए सीढ़ियां होंगी। हमने यह भी माना कि गलती को स्थूल व सतही तौर पर जांच कर ( ) का चिह्न लगाकर सही ढंग से नहीं समझा जा सकता। शुरूआती सालों में अपने विचार लिखने व बोलने का प्रयास करना ज्यादा जरूरी है बनिस्पत गलतियां न करने व संकीर्ण 'तथाकथित मानक किताबी' भाषा में जकड़े जाने के।

भाषा–सोच का आधार?

भाषा शिक्षण के बारे में सोचते–सोचते हमें यह समझ में आया कि भाषा हमारे लिए सम्प्रेषण के माध्यम से भी ज्यादा है। शायद प्रकट या अप्रकट रूप से यह हमारे हर काम को संचालित करती है। एक मोटा उदाहरणः जब हम किसी चीज को देखते हैं, तो हमारी नजरों का पैनापन भी विवरण के लिए हासिल शब्दों पर आधारित है। जिस भाषा में बर्फ के लिए 26 शब्द हैं उसमें देखने वाला उन सभी रूपों को अलग–अलग देख सकता है। कांच का पारखी कांच में बारीक किस्मों को अलग नाम देकर छांट सकता है। जो हमारे लिए लोहा है, लोहार के लिए अलग–अलग गुण वाली सामग्री है आदि। वैसे भी किसी विचार या आइडिया को समझने के लिए हम उसके साथ अन्य कई शब्दों को जोड़ते हैं। जितने व्यापक संदर्भों में, जितने ज्यादा शब्दों अथवा विचारों व अवधारणाओं के साथ जोड़कर हम उस विचार अथवा अवधारणा को समझ पाएंगे, उतनी ही हमारी उस अवधारणा की समझ गहरी होगी।

फिर हमने यह बात पढ़ी और उसे महसूस किया कि बच्चे जब कोई क्रिया करते हैं, जिसमें वह मन से मशगूल हों तो वह अपने आप से बोलते रहते हैं। उसे बोलने से वे अपने काम को व्यवस्थित करते हैं व संचालित करते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि हम क्रियाओं को भी भाषा के अंदर समाते हैं।

हम लोग अवधारणाएं कैसे सीखते हैं, विचार कैसे समझते हैं व समझने व सोचने के अपने ढांचे को कैसे बदलते व ज्यादा सुदृढ़ बनाते हैं? इन सब के बारे में कई तरीके के विचार व सोच हैं। आज यह माना जाता है कि सामान्यतः सीखते समय हम ठोस अनुभवों में अमूर्तता की तरफ जाते हैं। पर ऐसा क्यों हो जाता है कि बहुत से बच्चे व बड़े अमूर्तता में हिचक जाते हैं और सोच के तार्किक ढांचे या तार्किक समझ नहीं बना पाते? यह एक खास विषय में नहीं वरन् सभी अर्मूत बातों पर लागू है।

सीखने के विकास के ढंग से संबंधित समझ के विभिन्न ढांचों व मॉडलों में कोई एक स्पष्ट दिशा नहीं दिखती। इसके अलावा हमारे दिमाग की रचना, उसमें भावनाओं का स्थान, भाषा का स्थान, जगह की समझ से संबंधित अर्मूत क्षमताओं का स्थान, आदि पर भी शोध कार्य जारी है और हम किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंचे हैं। इस सब के बीच हम प्राथमिक शाला में भाषा सिखाने के अर्थ, उसके लिए उपयुक्त तरीके व सामग्री खोजने की कोशिश कर रहे थे।

प्राथमिक शाला में भाषा शिक्षण

हम यह जरूर मानते थे कि हमें आम तौर पर उपयोग किए जा रहे तरीके व उसके पीछे छिपी समझ पर विश्वास नहीं है। यह हम भी मानते थे कि अभी स्कूलों में बच्चों के अनुभवों, सोच, भावनाओं, कल्पना व फन्तासी का कोई स्थान नहीं है और वह अनिवार्य है। भाषा सिखाना सोच के ढांचों के विकास के साथ–साथ ही किया जा सकता है। भाषा सीखने व अमूर्तता की ओर बढ़ने में संबंध है। पढ़ी गई बात को गहराई से समझने के लिए विश्लेषण, संश्लेषण, तुलना, कल्पना, उसका गैर संर्दभीकरण, सामान्यीकरण, उसमें क्रम की पहचान, सार निकालना आदि–आदि कितनी ही क्षमताओं का उपयोग जरूरी है। इनमें कितनी गणित सीखने की प्रक्रिया में नहीं जुड़ती?

दरअसल खासतौर पर प्राथमिक शाला में हमें बच्चों को अटूट अनुभव देने की आवश्यकता महसूस होती है। यह जुड़ाव मात्र स्थूल रूप में नहीं कि, एक ही किताब में भाषा भी व गणित भी दोनों को सिखाया जाना है, वरन् किताब को और सीखने की प्रक्रिया के साथ–साथ क्या सीखा जाना है, उसको परिभाषित करने के ढंग में। यह आवश्यक नहीं कि किताब के हर सबक में भाषा हो, गणित भी हो, विज्ञान भी हो और सामाजिक अध्ययन भी, किन्तु यह कि इन सबकों का सिलसिला एक अटूट समझ पर आधारित हो। ऐसी इकाईयों की संरचना का क्या तार्किक आधार हो, हर इकाई में क्या शामिल हो सकता है, इसमें भाषा कैसी हो, चित्र कैसे होने चाहिए आदि, वे सवाल हैं जिनके बारे में विचार करना, बच्चों के सोच के ढांचे के अनुसार सामग्री व कार्य विधि बनाने में मदद करेंगे।

प्राथमिक शाला कार्यक्रम के अन्तर्गत हम विशेष तौर पर लिखित भाषा को भी सीखने की बात कर रहे थे। ऐसे अभ्यास सोच रहे थे जिसमें कि सीखने वाला औपचारिक तर्क समझ सके व अभिव्यक्त कर सके। एक सार्थक कोशिश कर सके अपने विचारों को दूसरों तक पहुंचा पाने की व दूसरे के विचार समझ पाने की, व्यापक संदर्भों व अनुभवों के साथ–साथ विभिन्न प्रकार की किताबों से जूझ पाने की। हमने माना कि इस सब को करने के लिए भाषा व गणित सीखने में एक गहरा संबंध है। गणित की अवधारणाओं के विकास का ढांचा भी तर्कों के ढांचे पर आधारित है। इस तर्कों के ढांचे के विकास के लिए इसके टुकड़ों को भाषा में व्यक्त कर पाना बहुत आवश्यक हे। हमने यह भी माना कि तथाकथित इन अलग–अलग विषयों की बिखरी अवधारणाओं में गहरे संबंध हो सकते हैं और उनमें पारस्परिक समझ को मजबूत बनाने की गुंजाइश है। इन

सभी विषयों को एक दूसरे के सापेक्ष रखकर ही समझना चाहिए। उनकी विभिन्न अवधारणाओं में अमूर्तता का स्तर, अवधारणा समझने के लिए आवश्यक बुनयादी ढांचे का विकास, अलग–अलग विषयों में एक–दूसरे के समान या एक–दूसरे से जुड़े विचारों/अवधारणाओं/क्षमताओं आदि को एक ढांचे में लेना चाहिए।

जैसा कि मैंने पहले भी कहा कि यह आवश्यक नहीं है कि हर अभ्यास में सब कुछ हो, यह भी आवश्यक नहीं है कि बच्चा यह सब एक साथ सीख जाए पर इस पारस्परिक संबंध व निर्भरता का ध्यान रखना होगा और उसी के आधार पर कार्य का संतुलन बनाना होगा। ऐसा ही कुछ प्रयास हमने प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम में किया है। इसमें भाषा को उसके बच्चे कल्पना, समझ, अभिव्यक्ति, जगह की समझ, परिप्रेक्ष्य के विकास आदि ही नहीं वरन्, मस्तिष्क व सम्पूर्ण व्यक्तित्व के आधार के रूप में मानकर कार्यक्रम के सभी हिस्से विकसित किए गए हैं।

विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर (राजस्थान)

भाषा व भाषा शिक्षण

कुछ विचार–

रमाकान्त अग्निहोत्री
हृदयकान्त दीवान

भाषा हमारे जीवन का शायद उतना ही कुदरती अंग है जितना कि सांस लेना। बिना बातचीत किए, चाहे बोलकर या लिखकर, समाज में शायद कुछ भी करना संभव नहीं है। अपनी बात समझाने के लिए, दूसरे की बात समझने के लिए, नई बातें जानने के लिए, पढ़ने–लिखने के लिए, सभी कुछ के लिए तो हम भाषा का सहारा लेते हैं। इस स्वाभाविकता के ही कारण शायद हम भाषा और उसके उपयोग पर कभी गम्भीरता से विचार नहीं कर पाते। यदि कोई बच्चा इतिहास, भूगोल या विज्ञान में पीछे रह जाता है तो हम (शिक्षक हों या पालक) बहुत चिन्तित हो जाते हैं। भाषा के बारे में अक्सर यही सोचा जाता है कि भाषा तो बच्चों को आती ही है, फिर आगे की कक्षा में अपने पसन्द का विषय लेने के लिए आमतौर पर भाषा की समझ का महत्व ही नहीं होता है।

शालाओं में जो थोड़ी बहुत भाषा पढ़ायी भी जाती है उसका उद्देश्य अक्सर बच्चे को भाषा सिखाना नहीं बल्कि उसकी भाषा सुधारनी है। शालाओं में भाषा की शुद्धता पर अधिक ध्यान दिया जाता है, बजाए इसके कि बच्चा लिखी हुई बात को समझ पाए और अपनी बात कह पाए। भाषा सिखाने के बारे में सोचते समय हम भूल जाते हैं कि भाषा बौद्धिक व मानसिक विकास का आधार भी है और माध्यम भी। अखबार, पत्र–पत्रिकाएं, साहित्य या शासन के कागजात सभी को समझने के लिए भाषा सीखना जरूरी है। जो भाषा सीखने में पिछड़ गया उसका सामाजिक जीवन के लगभग हर पहलू में पिछड़ना तय है।

लेकिन यह भी एक निर्विवाद सत्य है कि हर बच्चा अपने आसपास बोली जा रही भाषा अच्छी तरह से जानता है। जैसे वह उठना, चलना–फिरना, खाना–पीना आदि सीखता है, वैसे ही वह यह भाषा सीखता है और उसे अपने उपयोग के अनुरूप ढाल लेता है। बच्चा वही भाषा सीखता है जो उसके माता–पिता, सगे–सम्बन्धी, पड़ौसी और मित्र बोलते हैं। इसी भाषा के माध्यम से बच्चा अपनी पहचान बनाता है और परिवार के अलग–अलग कार्यों व गतिविधियों में भाग लेता है। इस भाषा को लिखने–पढ़ने के अलावा सभी तरह से उपयोग करना बच्चा खुद सीख लेता है। यह भाषा, चाहे हम उसे बोली कहें या कुछ और भाषा–विज्ञान की दृष्टि से उतनी ही समृद्ध और नियमबद्ध है जितनी कि कोई भी मानकीकृत भाषा। दोनों की अपनी–अपनी ध्वनि और शब्द संसार होता है। और वाक्य बनाने के अपने अपने नियम। दोनों का अपना–अपना साहित्य भी हो सकता है और अपनी–अपनी परम्परागत कहानियां जो पीढ़ी दर पीढ़ी सुनाई जाती है। किसी भी बोली को लिपि देकर और विभिन्न गतिविधियों क लिए उपयोग करके हम उसे उस स्तर पर ला कसते हैं जिसे आमतौर पर भाषा कहा जाता है। साफ है कि किसी बोली का भाषा बनना एक भाषिक नहीं बल्कि ऐतिहासिक एवं सामाजिक प्रश्न है। यह समझ भाषा पढ़ाने वाले शिक्षक के लिए आवश्यक है, जिससे कि वह बच्चों की बोली के प्रति एक सकारात्मक दृष्टिकोण रख पाए और उसे अविकसित या असभ्य मान कर नकार न दे।

यह तो सही है कि हर बोली मानकीकृत भाषा नहीं बन पाती परन्तु बोलने वालों की धारणाओं, मूल्यों एवं दृष्टिकोणों को हर बोली अपने आप में संजोए रहती है। जिस प्रकार इस बोली को बोलने वालों के समाज व संस्कृति को समझने के लिए उनकी बोली ही एक मात्र सहारा है, उसी प्रकार बोली को समझने के लिए बोलने वालों के समाज और उनकी संस्कृति को समझना आवश्यक है। बच्चों को एक मानकीकृत भाषा सिखाते समय, इस बात का अहसास आवश्यक है। यह अहसास होने पर ही हम बच्चों की दुविधा के प्रति

संवेदनशील हो पाएगें और उनके जीने के तरीके से सामंजस्य रखते हुए नई भाषा सिखा पाएंगे। वरना बच्चा इसी समस्या में उलझ कर रह जाएगा, कि जो घर में ठीक है वह स्कूल में क्यों गलत है (विशेषकर उस परिस्थिति में जब उसकी बोली का कोई मान्य स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है)। बोली/भाषा जीवन मूल्यों व संस्कृति से प्रभावित होती है और इसलिए एक ही स्थान पर अलग–अलग वर्ग के लोगों की बोली में भी अन्तर होगा। क्या एक शाला में, जहां हर आर्थिक स्तर के बच्चे पढ़ते हैं, इस अहसास का महत्व नहीं है?

यह हमारा दुर्भाग्य है कि शिक्षा प्रणाली में, विद्यालयों और पाठ्यपुस्तकों आदि में प्रयोग होने वाली भाषा घर में और दोस्तों के साथ बोली जाने वाली भाषा से अलग होती है। आम तौर पर तो शालाओं में इस्तेमाल की जाने वाली भाषा का दतरी काम–काज व शाला की चार दीवारी के बाहर बहुत कम उपयोग होता है। जहां शाला और बच्चे की आम जिन्दगी की भाषा को एक ही नाम दे दिया है (जैसा कि मध्य प्रदेश में जहां दोनों को हिन्दी कहा जाता है) वहां इन दोनों भाषाओं के अन्तर की गम्भीरता समझना और भी कठिन हो जाता है और इस भाषा को सीखने में बच्चों की समस्याओं को समझना लगभग असम्भव ही है।

स्कूल में अकस्र मानकीकृत भाषा का ही प्रयोग होता है। यह मानकीकृत भाषा अपने आप में कोई विशेष गुण नहीं रखती, पर किसी समय समृद्ध और पढ़े–लिखे तबके की भाषा होने के कारण लिपिबद्ध हो जाती है। साहित्य शब्दकोष व्याकरण आदि भी इसी भाषा में लिखे व छापे जाने लगते हैं। संचार और सम्पर्क के सभी स्थापित माध्यमों (जैसे पाठ्यपुस्तकों, अखबारों, पत्रिकाओं, रेडियों, टेलिविजन आदि) में इसी भाषा का प्रयोग होता है और इसी भाषा में पिछड़े होने के कारण बच्चे अन्य विषयों और समाज में पिछड़ जाते हैं। क्या यह आवश्यक है कि सभी बच्चों को यही भाषा सिखाई जाए? (असल में सिखाने के स्थान पर थोपना कहना आज के भाषा पढ़ाने के ढंग को ठीक से चित्रित करेगा)। क्या आप को ऐसा नहीं लगता कि आज की सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थिति में यह आवश्यक है कि बच्चें किताबों और अखबारों में लिखी बात को पूरी तरह समझें? क्या यह समाज में परिवर्तन लाने के लिए जरूरी नहीं है? यदि समाज और उसकी गतिविधियों को समझना उसमें परिवर्तन लाने का पहला महत्वपूर्ण कदम है तो क्या समझ हमारे पाठ्यक्रम में नहीं दिखनी चाहिए? खासकर जबकि हम अपने आप को शिक्षा के प्रति प्रतिबद्ध कहते हैं।

इस सबके बाद हम पूछ सकते हैं कि, क्या हम बच्चे को उसकी भाषा में नहीं पढ़ा सकते? क्या उसकी ही भाषा में अखबार व किताबें नहीं उपलब्ध हो सकती? शायद वर्तमान में यह व्यवहारिक नहीं है। हम शायद यह तर्क भी दें कि व्यापक स्तर पर संवाद के लिए बच्चों को मानकीय भाषा पढ़नी आवश्यक है। माना कि एक ऐसी भाषा का होना जिसे समझते, बोलते हो, आवश्यक है, परन्तु क्या यह मानकीकृत भाषा उसी तरह से पढ़ाई जानी चाहिए जिस तरह आजकल हम लोग अपने स्कूलों में पढ़ते–पढ़ाते हैं। क्या मानकीकृत भाषा पढ़ाने के लिए बच्चों की बोली को नकारना आवश्यक है? क्या भाषा शिक्षण बच्चे के पर्यावरण और उसकी रूची से जुड़ा हुआ नहीं हो सकता? आप किसी भी पाठ्यपुस्तक को देखें अक्सर अध्याय ऐसे विषयों पर होंगे जिनमें आमतौर पर बच्चों की कोई रूची नहीं होती और न ही बातों को बच्चों की जिन्दगी से दूर दराज का कोई संबंध होता है। भाषा ऐसी प्रयोग की जाती है जिसका बच्चों की घर परिवार की भाषा तथा उनकी ग्राह्य क्षमता से कोई तालमेल नहीं होता। इस बात का भी आमतौर पर कोई ध्यान नहीं रखा जाता है कि बच्चों को कैसे रंग, कैसे चित्र एवं कैसे उदाहरण अच्छे लगेंगे और उनके लिए सार्थक होगें। शायद यह मान्यता है कि पाठ्यपुस्तकों को आकर्षक बनाना अपने आप में कोई महत्व नहीं रखता। क्या हम ऐसी पाठ्यपुस्तकें नहीं बना सकते जिनका आधार बच्चों की बातचीत हो? उनके अध्याय उनकी रूचि के विषयों पर हो, चित्र एवं उदाहरण ऐसे हो जो उन्होंने ही बनाए हो और जो उन्हें आकर्षित करें। जिसमें लिये गए चित्र उनकी समझ व उम्र के अनुरूप हो। भाषा सिखाने के लिए उनकी बोली का इस्तेमाल हो और उनकी बोली के कुछ शब्द भी किताब में हों।

एक नया सवाल जो कि आमतौर पर भाषा की शुद्धता की वकालत करने वालों से है। यदि ऐसी पुस्तकों में बच्चों की भाषा के जिसे हम बोली कहते हैं, कुछ शब्द आ भी जाएं तो क्या मानकीकृत भाषा बिगड़ जाएगी? क्या अन्य भाषाओं भाव व अभिव्यक्ति के ढ़ंग लेकर भाषा अशुद्ध हो जाती है? यदि हम ऐसा मान लें तो अन्य समाजों में उभरे नये नये विचार हमारी भाषा में कैसे आयेंगे? शायद अन्य बोलियों के शब्दों का लेने से हमारी भाषा और समृद्ध ही होगी।

क्या हमारे लिये यह सोचना आवश्यक नहीं है कि जब बच्चा कोई गलती करता है तो क्यों करता है? क्या उस गलती का कारण समझ कर उसे सिखाना सही तरीका नहीं है? वैसे कोई भी गलतियां किये बिना सीख ही नहीं सकता चाहे वह भाषा हो या और कुछ। गलतियों के आधार पर नई बातें सीखी जाती है। भाषा के संदर्भ में जिन्हें हम गलतियां कहते हैं, वह इस बात का भी दर्पण है कि बच्चे के चारों तरफ कैसी भाषा प्रयोग की जातीहै। जिसे हम आमतौर पर गलतियां करना कहते हैं शायद वह भाषा बदलने की प्रक्रिया आवश्यक अंक भी है। यदि भाषा स्थायी रूप से मानकीकृत हो जाए और कोई नयापन या परिवर्तन न होने दिया जाए तो क्या होगा? जरा सोचिये।

वास्तव में हमारे लिए मुख्य सवाल यह है कि भाषा पढ़ाने का उद्देश्य क्या है? भाषा सिखाने का हमारे लिए क्या महत्व है? बच्चे को भाषा सिखाने में हमारी क्या अपेक्षा है? क्या यही कि वह कुछ चुने हुए विषयों पर जटिल और व्यवस्थित शब्दों में निबन्ध इत्यादि लिख पाए जो उसे रटने ही पडेंगे, चाहे और किसी विषय पर वह दस लाईन भी न लिख सके? क्या बच्चे के लिए ज्यादा उपयोगी है कि वह अपनी हर मात्रा और व्याकरण की गलती को सुधारे या यह कि वह शब्दों और वाक्य संरचना के लचीलेपन और विविधता का अहसास करें? भाषा सीखने, बच्चे की स्वतंत्र अभिव्यक्ति का विकास और भाषा के लचीलेपन का इस्तेमाल करने कीक्षमता, मात्रा और व्याकरण की शुद्धता से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। क्या यह आवश्यक नहीं है कि प्राथमिक स्तर पर बच्चे को मानकीकृत भाषा सिखाने की अपेक्षा उसे अपनी भाषा में अपने विचारों और भावनाओं को व्यक्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जाए और धीरे–धीरे एक सामंजस्य स्थापित करते हुए मानकीकृत भाषा सिखाई जाए?

चर्चा के बिन्दुः

1. बच्चों के भाषा सीखने में किन–किन तत्वों का प्रभाव पड़ता है?
2. बच्चों के भाषा विकास के दौरान हमें किस प्रकार का धैर्य रखना चाहिए?

बच्चे भाषा कैसे सीखते हैं : कुदरती जादू या लंबा, लंबा सफर?

जीन आइचिसन

यह व्याख्यान भाषा के ज्ञान के निर्माण के बारे में है, और इस बारे में है कि क्या भाषा सीखना एक कुदरती जादू है या एक लंबा परिश्रम? खैर, यह थोड़ा–थोड़ा दोनों है। ज़ाहिर है कि कुछ तो कुदरती यानी जन्मजात है अन्यथा गोल्डफिश भी बोलना सीख जाती। मगर सीखने की भी भूमिका है; बरसों बाद ही बच्चे दक्ष हो पाते हैं। मैं मुख्य रूप से प्रथम भाषा सीखने के बारे में बात कर रही हूं मगर थोड़ी बात दूसरी भाषा सीखने के बारे में भी।

सबसे पहले, यह सीखने की मंजिले वितरित पर्चे के पहले खण्ड में कहा गया है कि भाषा में कुदरती रूप से निर्देशत सीखना शामिल होता है। इस तरह के सीखने में जंतु सहजवृत्ति से जानता है कि उसे किस बात पर ध्यान देना है, मगर बारीकियां सीखने में समय लगाना होता है। पक्षी और मधुमक्खियां और फूल इसके उम्दा उदाहरण है।

फूल एक–दूसरे से काफी अलग होते हैं और मधुमक्खियां फूलों के बारे में जानते हुए पैदा नहीं होती, उन्हें सीखना होता है। उन्हें सहजवृत्ति से पता होता है कि उन्हें गंध, रंग और आकृति पर इसी क्रम में ध्यान देना है। इसलिए वे किसी बस स्टॉप या पोस्ट बॉक्स की ओर उड़ना सीखने की बजाय गुलाब तक उड़ना सीखती हैं जबकि कभी–कभी बस स्टॉप और पोस्ट बॉक्स भी चटख रंगों के होते हैं। इसी प्रकार से मानव शिशु भी कुदरती तौर पर लोगों के मुंह से निकलती ध्वनियों पर ध्यान देते हैं और उन्हें सहजवृत्ति से इनका अर्थ निकालना आता है। मगर इसमें लंबा समय लगता है।

हम रोने के साथ शुरू करते हैं। शुरू में बच्चे सिर्फ रोते हैं। ऐसा कहते हैं कि बेंजामिन फ्रेंकलिन ने (बच्चों के बारे में) कहा था, ''एक सिरे पर ज़ोरदार आवाज़ और दूसरे पर ज़िम्मेदारी का कोई एहसास नहीं''। सारी भाषाओं में एक ही तरह का रोना देखा जा सकता है। कोई भारतीय मां और कोई अंग्रेजी मां खुद अपने और एक–दूसरे के बच्चे का रोना पहचान जाएंगी। इसके बाद बच्चे गूं–गूं करते हैं, यह करीब 6 सप्ताह में आता है। और इसके बाद करीब छः माह पर वे ऊल जलूल आवाज़ें निकालते हैं, या जैसी आवाज़ें दोहराते रहते हैं। माता–पिता कई बार मान लेते हैं कि उनके बच्चे उन्हें पुकार रहे हैं, हालांकि अपने होंठों के साथ प्रयोग करते हुए यही आवाज़ें निकालना उनके लिए सबसे आसान होता है। अब हम उतार–चढ़ाव पर आते हैं, जो करीब 8 माह में आता है। बच्चों की आवाज़ ऐसी लगती है जैसे वे बातें कर रहे हैं, मगर वे तो सिर्फ सुनी हुई भाषा की लय की नकल कर रहे हैं।

फिर हमें दो शुरूआती भाषाएं मिलती हैं। एकल–शब्द–उद्‌गार करीब 12 माह में आता है। जैसे अंग्रेज़ी में बच्चे अक्सर 'du' कहते हैं जिसका मतलब होता है juice। दो शब्दों के उद्‌गार करीब 18 माह में आते हैं– जैसे more do मतलब more juice। where daddy जैसे सवाल, और no bed जैसे नकारात्मक वाक्य करीब दो वर्ष में आते हैं।

अब हम आगे के मुकाम पर पहुंचते हैं। हम देखते हैं कि लंबे वाक्य करीब 3 वर्ष की उम्र में आते हैं मगर थोड़ा सावधानी से छानबीन करने पर पता चलता है कि इस समय तक बच्चे कहीं अधिक जानते हैं। 10 वर्ष की उम्र तक सारी प्रमुख संरचनाएं तैयार हो जाती हैं, काफी जटिल संरचनाएं भी। मगर सीखने का एक पक्ष आजीवन जारी रहता है– शब्द सीखना, शब्द भंडार का अर्जन।

अब हम अगले पड़ाव पर पहुंचते हैं: शब्द सामर्थ्य। बच्चे बहुत छोटे उम्र से ही कई शब्द समझते हैं; मेरा भतीजा, जब उसके माता–पिता कहते कि 'मुझे बाघ दिखाओ' तो वह अपने पालने के ऊपर लगे चित्र

में काफी विश्वसनीय ढंग से बाघ की ओर इशारा कर सकता था मगर उसके लिए यह एक खेल भर था। जब उसके माता–पिता बाघ शब्द बोलते तो उसे पता था कि पट्टे वाले जानवर की ओर इशारा करना है। उसे शायद यह पता नहीं था कि यह उस जानवर का नाम है जिसकी ओर वह इशारा कर रहा है। किसी अवस्था में बच्चे नामों की ताकत समझ जाते हैं, वे 'नामकरण समझ' नामक कोई चीज़ हासिल कर लेते हैं यानी यह समझ कि चीज़ों के नाम होते हैं। वे इस मुकाम पर दूसरे साल में, आम तौर पर 15 से 18 माह की उम्र में पहुंचते हैं। इसके बाद वे हर चीज़ को नाम देते हैं। अब ज़ाहिर है हम घुटने चलते बच्चों से इसकी बात नहीं कर सकते, मगर बहरे बच्चों के अनुभव से इस मुकाम के बारे में काफी कुछ जानते हैं जो नामकरण समझ के पड़ाव पर देर से पहुंचते हैं।

हाल का एक मामला एक बहरे मेक्सिकन अल डेफांसो का है, जिसने नामकरण की समझ खोज ली थी जबकि उसे बताया नहीं गया था। उसने इसकी खोज चरणों में की थी। सबसे पहले संख्याएं, फिर संज्ञाएं और फिर क्रियाएं। अब सब लोग सहमत है कि करीब 18 माह की उम्र में शब्द उफान आता है, जब लगता है कि बच्चे शब्द सोखते जाते हैं। दो वर्ष की उम्र तक आम तौर पर बच्चे कई सैकड़ा शब्द जानते हैं, और बड़े लोगों के समान बोलते हैं जबकि वे अभी बड़े नहीं हुए हैं, और तीन वर्ष की उम्र तक हज़ार से ज्यादा शब्द जानते हैं। बच्चों के पास सक्रिय शब्द भंडार करीब 3000 शब्दों का होता है, अक्रिय शब्द भंडार (जिन्हें वे समझते हैं) संभवतः इससे काफी ज़्यादा, अनुमानित 10000 शब्दों का, हो सकता है। शब्द खोज करीब 13 वर्ष की उम्र में होती है। मैंने एक शोधकर्ता एन कोपेल के साथ 11–14 वर्ष के ब्रिटिश बच्चों के शब्द भंडार का एक सर्वेक्षण किया था। हमने 400 बच्चों की जांच की थी, दो स्कूलों के 200–200 बच्चे थे और हमने देखा कि 11 और 12 वर्षीय बच्चे एक समूह में रहे और 13–14 वर्षीय बच्चे दूसरे समूह में। अधिकांश ब्रिटिश बच्चों ने 13 वर्ष की उम्र तक 20,000 शब्द हासिल कर लिए थे। यह संख्या याद रखें 20,000। 20,000 शब्द वह सरहदी मात्रा है जो धाराप्रवाह अंग्रेज़ी बोलने के लिए चाहिए। मैंने पाया कि विदेशी छात्र, जिनमें से कुछ का परीक्षण मैंने किया था (कुछ भारतीय भी थे), जो इस मात्रा तक पहुंच गए थे किसी भी विषय के बारे में दक्षता पूर्वक बात कर सकते थे। और 20,000 से कम शब्दों वालों को जूझना पड़ता था। औसत ब्रिटिश भाषी वयस्क 50,000 शब्द जानता है। तुलना के लिए देखें कि कॉन्साइस ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी का दावा है कि उसमें 75,000 शब्द हैं। तो एक औसत ब्रिटिश वयस्क दो–तिहाई कॉन्साइस ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी जानता है। मगर कोई इससे पीछे भी है तो चिंता नहीं क्योंकि शब्द सीखना आजीवन चलता है।

अब मैं अगले खण्ड पर जा रही हूं– भाषा और बुद्धिमत्ता का पृथक्करण। भाषा, यानी बोलने की क्षमता, (आश्चर्यजनक रूप से) आम बुद्धिमत्ता से अलग है। आम तौर पर भाषा और बुद्धि साथ–साथ आगे बढ़ते हैं, मगर ऐसे कई विचित्र मगर मेधावी इन्सान हैं जिनमें भाषा और बुद्धि अलग–अलग होते हैं। पहली है एक महिला लौरा, कभी–कभी मार्था। लौरा व्याकरण की दृष्टि से नफीस वाक्यों का उपयोग करती थी मगर अक्सर इनका कुछ मतलब नहीं होता था, जैसे– ''पिछले वर्ष मैं 16 वर्ष की थी और अब मैं इस साल 19 वर्ष की हूं''; और यह मेरा प्रिय वाक्य है– ''वह सोच रही थी कि यह कोई आम स्कूल नहीं है, यह तो बस अच्छा सा पुराने किस्म का था, कोई बसें नहीं और मुझे यह बिलकुल अच्छा नहीं लगता कि वह मेरे मुंह में पेपर ऑवेल डोले।'' लौरा सीखे हुए वाक्यों के टुकडे नहीं दोहरा रही थी, क्योंकि वह व्याकरण की गलतियां भी करती थी। जैसे, "These are two glasses I have taken, it was given by a friend, I don't know how I catched it." एक और उदाहरण क्रिस्टोफर का है जिसकी भाषा व बुद्धि अलग–अलग हो गए थे। वह गंभीर मानसिक अपंगता से पीड़ित है। वह अपनी देखभाल नहीं कर पाता, मगर भाषा सीखने में खासा हुनर रखता है। जब वह 29 वर्ष का था, उसने स्वीडिश से यह तर्जुमा किया था– "Mia is sitting crouched in the kitchen sofa, with her knees bent and her feet tied up in lovely night shirt, the cat spins in her knee." यह एकदम सही अनुवाद था। "Mia is crouched up on the kitchen sofa, with her knees drawn out and her feet tucked into her stripy nightie, the cat is purring into her knee." भी वही अनुवाद है

जो क्रिस्टोफर का था मगर क्रिस्टोफर ने purr शब्द को स्वीडिश के शब्द spin शब्द से भ्रमित कर दिया था जो purr जैसा ही लगता है। और एक किस्म का बच्चा है, जो बच्चे विलियम सिंड्रोम से पीडित हैं। वे विशेष कार्यों से नहीं निपट पाते, जैसे, वे एक सायकल से पुर्ज़ों को जोड़कर पूरी सायकल नहीं बना पाते। मगर उनकी भाषा काफी नफीस और विस्तृत होती है। उदाहरण के लिए 17 वर्ष के एक बच्चे द्वारा दिया गया ब्रेन स्कैन का विवरण देखिए– ''एक बड़ी चुंबकीय मशीन होती है, उसने भेजे के अंदर का चित्र खींचा। आप बात कर सकते हैं मगर अपना सिर नहीं घुमा सकते क्योंकि उससे पूरी चीज़ बरबाद हो जाएगी और उन्हें फिर से शुरू करना पड़ेगा। यह सब होने के बाद, वे आपको एक कंप्यूटर पर आपका भेजा दिखाते हैं और वे देखते हैं कि वह कितना बड़ा है।''

अब मैं उन तथ्यों का वर्णन करना या चर्चा करना चाहती हूं कि इन्सान जैविक रूप से, शारीरिक व मानसिक दोनों तरह से, भाषा के लिए ढले हैं। शारीरिक स्तर पर जीभ मांसल और गतिशील है। वह कुत्ते जैसे अन्य जानवरों की तरह सुस्त नहीं है। इन्सान की जीभ उपयोगी है; यह न सिर्फ मुंह के हर हिस्से से भोजन को बटोर सकती है, बल्कि विभिन्न किस्म की आवाज़ें निकाल सकती है। इन्सान के दांत एक बराबर होते हैं, और हालांकि शायद यह भोजन खाने के लिहाज़ से बहुत बढ़िया न हो, मगर इसकी बदौलत मुंह में एक उपयोगी पर्दा बनाने में मदद मिलती है जिसके द्वारा [t, s, z, l] जैसी आवाज़ें उच्चारित की जा सकती हैं। बोलते समय फेफड़े सांस को जल्दी–जल्दी खींचने और धीरे–धीरे छोड़ने में मददगार होते हैं।

यह अनुकूलन असाधारण है क्योंकि अधिकांश मामलों में श्वसन को नियंत्रित नहीं किया जा सकता। मगर इन्सान बगैर परेशानी घण्टों बोल सकते हैं; उन्हें सांस लेने में दिक्कत की नहीं, गला दुखने की संभावना ज़्यादा है। हमारे स्वर रज्जु गले में झिल्लियों की पतली–पतली पट्टियां है, जो मूलतः (और आज भी) फेफड़ों को बंद करके पसलियों के पिंजर को सख्त बनाने में उपयोगी हैं जो भारी बोझ उठाने या पेड़ों पर झूलने जैसे मेहनत के काम में ज़रूरी होता है।

किसी चिंपैंज़ी के सिर और भाषा और शरीर इन्सान के सिर में अंतर पर गौर कीजिए। इन्सान नाक की गुहा को बंद कर सकते हैं और पहचानने योग्य आवाज़ें पैदा कर सकते हैं, खासतौर से तीन एंकर स्वर [i, u, a]। और जब एक बार हम ये तीन स्वर बोल पाएं, तो यह भाषा की हमारी उड़ान की कुंजियों में से एक थी। अब मैं 50–75 हज़ार साल पहले की बात कर रही हूं। अब, हमारे मानव मस्तिष्क भाषा के लिए विशेषीकृत हो गए हैं। हमारे दिमाग चिम्पैंज़ी से बड़े हैं, खास तौर से अगला हिस्सा, मगर वास्तव में साइज़ की बजाय गुणवत्ता का ज़्यादा महत्त्व है। अधिकांश इन्सानों में बाएं गोलार्ध का उपयोग भाषा के लिए होता है। अधिकांश इन्सान दाएं हाथ से काम करने में दक्ष होते हैं और इनमें से 90 प्रतिशत में भाषा बाएं गोलार्ध या भेजे के बाएं हिस्से में होती है। वामहस्त लोग, जो अपेक्षाकृत बिरले होते हैं, मैं से भी अधिकांश में भाषा मुख्यतः बाएं गोलार्ध में होती है। ये आंकड़े तंत्रिका विज्ञान की एक किताब से हैं जो बताते है कि 90 प्रतिशत दक्षिणहस्त लोगों में और अधिकांश वामहस्त लोगों में भी भाषा बाएं गोलार्ध में होती है। एक जीव वैज्ञानिक एरिक लेनबर्ग ने 1967 में एक महत्त्वपूर्ण किताब लिखी थी जिसका नाम था *दी बायोलॉजिकल बेसिस ऑफ लेंग्वेज*। उन्होंने बताया था कि भाषा एक परिपक्वता नियंत्रित व्यवहार है, यानी चलना सीखने या यौन व्यवहार के समान एक व्यवहार जिसमें व्यवहार के विभिन्न पहलू व्यक्ति के जीवन के अलग–अलग मुकामों पर कुदरती रूप से विकसित होते हैं, बशर्ते कि आसपास के परिवेश में पर्याप्त उद्दीपन मौजूद हो। उन्होंने इस तरह के व्यवहार को पहचानने के लिए कुछ प्रमुख बिंदु बताए थेः

1. परिपक्वता नियंत्रित व्यवहार उसकी ज़रूरत होने से पहले उभरता है।
2. यह किसी बाह्य घटना से प्रेरित होकर शुरू नहीं होता। जब बच्चों को बोलना होता है तब माता–पिता उन्हें अचानक सिर के बल नहीं पटकते।

3. यह किसी सचेत निर्णय का परिणाम नहीं होता।

4. प्रत्यक्ष शिक्षण का असर अपेक्षाकृत कम होता है। और

5. पड़ावों का एक नियमित क्रम होता है।

1967 की अपनी किताब में लेनेबर्ग ने दलील दी थी कि एक तयशुदा निर्णायक अवधि होती है जिसके दौरान भाषा अर्जन संभव है। उन्होंने दावा किया था कि यह (अवधि) करीब दो वर्ष की उम्र में शुरू होती है और किशोरावस्था में समाप्त हो जाती है। इसके बाद, उनके मुताबित, ''भाषा अर्जन नामुमकिन है''। मगर इस कठोर निर्णायक अवधि के बारे में वे गलत थे। वे दो लिहाज़ से गलत थे। पहला कि बच्चे दो वर्ष की उम्र से पहले बड़ी मात्रा में भाषा अर्जित करते हैं। दो वर्ष से कम उम्र में बाएं गोलार्ध में गंभीर क्षति होने पर भाषा संबंधी स्थायी क्षति हो सकती है। दूसरा, पार्श्वीकरण (यानी भाषा का विशेषीकरण बाएं गोलार्ध में होना) बहुत कम उम्र के शिशुओं में देखा गया है। अर्थात यदि उनके सामने भाषा की ध्वनियां बज़ाई जाएं, तो वे बाएं गोलार्ध से ध्यान देती हैं। यह बात काफी विस्तृत प्रयोगों से पता चली है। और यह भी काफी महत्त्वपूर्ण है कि नवजात शिशु भी खुद अपनी भाषा पर ज़्यादा ध्यान देते हैं, जिससे पता चलता है कि वे कोख में ही इसकी लय के प्रति अनुकूलित हो चुके होते हैं। और लेनेबर्ग की सोच के विपरीत, किशोरावस्था किसी बिन्दु पर यकायक शुरू नहीं होती। भाषा अर्जन 13 वर्ष की उम्र के बाद भी चलता रह सकता है। अधिक उम्र के कुछ लोग भी भाषा सीखने में बढ़िया होते हैं। एक और महत्त्वपूर्ण बात है कि शब्द भंडार का निर्माण तो ताज़िन्दगी चलता रहता है। लोग अपना शब्द भंडार (यदि संभव हुआ हो तो) 100 वर्ष की उम्र तक बढ़ाते रह सकते हैं और यह भी काफी महत्त्वपूर्ण है कि शब्द भंडार का निर्माण करीब 13 वर्ष की उम्र में शिखर पर होता है। तो शोधकर्ता आजकल सरहदी अवधि की बजाय संवेदी अवधि की बात करते हैं, वह समय जिसमें बच्चों का संपर्क भाषा से कराया जाना चाहिए, मगर यह अवधि लेनेबर्ग ने जो सोचा था उससे काफी पहले शुरू हो जाती है और देर तक जारी रहती है। तो मूलतः लोग मानते हैं कि अवसरों की खिड़की ज़्यादा लंबे समय तक खुली रहती है और अपेक्षाकृत धीरे–धीरे बंद होती है। और, उदाहरण के लिए जो परिवार कनाडा प्रवास कर गए हैं, उन्होंने देखा है कि उनके बच्चे वो फ्रांसिसी सीख लेते हैं जो फ्रांसिसी कनाडावासी बोलते हैं। प्रवास के समय बच्चे जितने छोटे होते हैं, उतनी ही आसानी से वे फ्रांसिसी सीखते हैं। जैसा कि हम आज जानते हैं, यह संवेदी अवधि बदलती संवेदनाओं का दौर होता है। बहुत छोटे बच्चे अपनी भाषा की ध्वनि संरचना सीखने में बहुत तेज़ होते हैं। बड़े बच्चे व्याकरण की संरचना पर ध्यान देते हैं। किशोर बच्चे शब्द भंडार पर ध्यान देते हैं। बड़े बच्चे वास्तव में भाषा अर्जित करने के लिए तैयार नहीं होते।

भाषा और माहौल

इसमें कोई संदेह नहीं कि जो लोग बच्चों की देखभाल करते हैं वे इसमें सहायक या बाधक हो सकते हैं। एक समय था जब बच्चों से बोलने की बोली के लिए मदरीज़ यानि मां की बोली शब्द का प्रयोग होता था। मगर अब हम इस शब्द का उपयोग ज़्यादा नहीं करते क्योंकि सिर्फ मां ही बच्चों की देखभाल नहीं करती। पिता, रिश्तेदार और दोस्त भी करते हैं। तो आजकल प्रचलित शब्द देखभालकर्ता है, यानी जो भी देखभाल करे। और हम देखभालकर्ताओं और बाल–संबोधित बोली (child directed speech - CDS) की बात करते हैं। अब यह पता चला है कि लोग जो बातें प्रथम भाषा के देखभालकर्ताओं और सीडीएस के बारे में कहते हैं वे काफी हद तक द्वितीय भाषा सीखनेवालों पर भी लागू होती हैं।

अब, सबसे पहले तो सीधे बच्चे से बात करना आवश्यक है। इसमें यह मतलब नहीं है कि बच्चे को टीवी के सामने पटक दें और उम्मीद करें वह अंग्रेज़ी सीख जाएगा, वह नहीं सीखेगा। विन्सेन्ट नाम के बच्चे का एक बहुत दिलचस्प मामला हुआ था, जिसके माता पिता बधिर थे। वे चाहते थे कि विन्सेन्ट न सिर्फ उनकी भाषा– संकेत भाषा – सीखे बल्कि अंग्रेज़ी भी सीखे। तो वे उसे टीवी के सामने बैठा दिया करते थे, मगर

विन्सेन्ट ने कुछ अंग्रेज़ी नहीं सीखी। तो, कुल मिलाकर, जी हां, आपको बच्चे से बातचीत करनी चाहिए, मगर सही ढंग से। सबसे पहले तो बच्चों (या किसी भी सीखने वाले) को आलोचना की शैली में, खुले आम या दबे–छुपे, टोकना नहीं चाहिए। अर्थात आप यह कभी न कहें,''नहीं, यह गलत है।'' इस ढंग का भूल सुधार बच्चे को अवरुद्ध कर सकता है, खास तौर से यदि देखभालकर्ता आलोचना का स्वर अख्तियार कर ले। वास्तव में जितना कहा जाता है, बच्चे उससे अधिक देखते हैं। और वे यह समझ जाते हैं कि उनका तिरस्कार किया जा रहा है। यह बात द्वितीय भाषा सीख रहे बड़े बच्चों के लिए भी सही है। तो भूल सुधार, खास तौर से यदि आलोचना की शैली में किया जाए, तो बाधक बन सकता है। फिर बच्चे अक्सर इस बात पर ध्यान नहीं देते कि किस चीज़ को सुधारा जा रहा है। वे तो बस इतना जानते हैं कि उन्हें कोई पसंद नहीं करता या कोई उनकी तारीफ नहीं करता और हो सकता है कि वे इसे देखे नहीं या इसकी परवाह न करें। इसके अलावा, माता–पिता जिन चीज़ों में सुधार करते हैं उसमें एकरूपता नहीं रहती। और अक्सर वे भाषा की गलतियों की बजाय तथ्य को सुधारने की कोशिश करते हैं।

जैसे जब बच्चे ने कहा कि "teddy sock on" (जब टेडी ने जुराबें पहनी हुई थी) तो हो सकता है कि उसके पालक कहें "Good! That's right. Teddy's got a sock on"। मगर यदि बच्चे ने व्याकरण के लिहाज़ से सही कहा कि "Teddy's got his sock on" जबकि टेडी ने जुराबें नहीं पहनी हुई हैं, तब शायद पालक कहेंगे "No, you are wrong. Teddy is not wearing a sock" । संक्षेप में, जैसा कि रॉजर ब्राउन ने कभी कहा था, ''यदि भूल सुधार उसी ढंग से काम करता हो जैसा पालक सोचते हैं, तो उम्मीद की जानी चाहिए कि बच्चे सत्य को व्याकरण–विरूद्ध बोलते बड़े होंगे।''

दरअसल, मामला उल्टा लगता है। अब कई लोगों ने हाल में भूल सुधार पर अनुसंधान किया है और दर्शाया है कि यह कभी–कभी कारगर होता है, बशर्ते कि बच्चा उस समय भाषा के उस पहलू पर काम कर रहा हो और यदि यह दोस्ताना अंदाज़ में किया जाए। किसी भी समय बच्चे भाषा के किसी पहलू पर चुनिंदा ढंग से ध्यान देते हैं और यही बात द्वितीय भाषा सीखने वालों पर भी लागू होती है। जैसे एलेक्स के उदाहरण को देखिए:

किसी समय एलेक्स भूतकाल के प्रति खास तौर से सजग था। उसने कहा, "The crocodile bitted the giraffe's feet"। पिता ने कहा, "He bit his feet" और एलेक्स ने कहा, "Yes, and he bite me too" इससे पता चलता है कि बच्चे ने भूत काल पर ध्यान दिया था। मगर हम इतना जानते हैं कि पालकों और शिक्षकों को चाहिए कि वे सीखनेवाले के लिए संशोधन हेतु एक बढ़िया आधार मुहैया करवाएं। उन्हें चाहिए कि वे धीमे, सुस्पष्ट, उतार–चढ़ाव को बढ़ा–चढ़ाकर, छोटे–छोटे, सुगठित कथन दें। इसमें दोहराव होना चाहिए मगर यह सीधी पुनरावृत्ति न हो और इसमें व्याकरण की विविधता होनी चाहिए। जैसे आप बच्चे को कह सकते हैं, "It's breakfast time. Shall we make some toast? You must be hungry. What do you want to drink? Some orange?" **वैसे भी मात्र बोलना महत्त्वपूर्ण नहीं है, बच्चों या सीखनेवालों को यह महसूस भी होना चाहिए कि वे एक वयस्क के साथ एक संयुक्त उद्यम में शामिल हैं।**

उदाहरण के लिए, "Shall we go and feed the rabbits now? The rabbits must be getting hungry. The want their dinner, shall we give them some cabbage leaves? They like cabbage leaves, don't they?"

द्वितीय भाषा सीख रहे बड़े बच्चों के साथ संयुक्त उद्यम मुश्किल ज़रूर है मगर नामुमकिन नहीं है। यह मुमकिन है, बशर्तें कि आप उन्हें कुछ करने को दें, जैसे, इंग्लैण्ड या अमेरिका का नक्शा बनाकर उसमें लंदन या न्यूयॉर्क दर्शाने या भारत में दिल्ली और मुंबई को सही जगह पर रखने को कहें। भारतीय बच्चों द्वारा अंग्रेज़ी सीखने के बारे में प्रभु की एक महत्त्वपूर्ण किताब है, और रमाकांत अग्निहोत्री ने भी काफी महत्त्वपूर्ण काम किया है।

भाषा सीखने का सिलसिला

बच्चे कंप्यूटर्स से भी शुरुआत कर सकते हैं, अंततः उन्हें जिन प्रोग्राम्स से काम करना है उनकी बनिस्बत सरल प्रोग्राम्स से शुरू कर सकते हैं। इंग्लैण्ड में जब हम कंप्यूटर चालू करते हैं तो बूटिंग अप कहते हैं। अमरीकी लोग बूटस्ट्रैपिंग की बात करते हैं। तो बच्चे में बूटस्ट्रैपिंग कैसे काम करेगा? शुरू में बच्चा एक सरल परिकल्पना बनाएगगा, कि हर वाक्य डैडी, मम्मी, डैडी गो जैसे शब्दों से शुरू होता है। फिर उसके बाद कार या कप या गर्ल जैसा कोई शब्द आएगा, जैसे डैडी कार, मम्मी कप, डैडी गो। फिर वह शायद यह समझ पाए कि इन उद्गारों में अंतर थे और सोचने लगे कि ऐसा क्यों है और इससे उसकी कही बात पर क्या असर पड़ा। और अंत में वे समझ पाएंगे कि वाक्य अलग–अलग तरह के वैयाकरणिक संबंध क्यक्त करते हैं। आम तौर पर हम जानते हैं कि जब बच्चे भाषा के किसी पहलू पर लगे होते हैं, तो वे सुनने की कोशिश करते हैं, इन्तज़ार करते हैं, जोड़–तोड़ करते हैं, और फिर पुष्टि करने के लिए सुनते हैं। यों कहें कि सबसे पहले वे सुनते हैं, बोलने की कोशिश करने से पहले वे अपनी भाषा के बारे में काफी कुछ सीखते हैं। फिर वे आज़माइशी तौर पर प्रयोग करते हैं। (और हां, कभी–कभी द्वितीय भाषा सीखने वालों को काफी अधिक अंग्रेजी सुनने की ज़रूरत पड़ती है, इससे पहले कि वे बोलने को विवश हों।)

भाषा अर्जित करने के बारे में एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बच्चे और वयस्क सह–घटना (शब्द और संरचनाएं जो एक के बाद एक आती है) के प्रति विशेष रूप से सजग होते हैं। इसी ढंग से एक अंधी बच्ची सैली ने look और see के बीच अंतर सीखा था और वह अपनी भाषा में देखने वाले बच्चों से थोड़ी ही पीछे थी। जैसे "Look, here's how you wind the clock" और "Come and see the kitty." तो ज़ाहिर है कि जो शब्द वह सीख रही थी, उसने उसके दोनों ओर के शब्दों पर ध्यान दिया था। और यह सबसे महत्त्वपूर्ण है कि बच्चे (और द्वितीय भाषा सीखने वाले भी) वास्तव में चीज़ों को संदर्भ में ही सीखते हैं।

अब तक मैंने मुख्य रूप से यह बात की कि बच्चे आगे कैसे बढ़ते हैं, मगर वे अपनी गलतियों को पहचानकर पीछे भी चलते हैं। और किसी को पक्का पता नहीं है कि वे ऐसा कैसे करते हैं, सिवाय इसके कि यदि आप उनसे धीमे–धीमे और स्पष्ट रूप में बात करते रहें तो वे पीछे देखते हैं। शायद असंगतियों को पकड़ना सबसे महत्त्वपूर्ण होता है। बच्चे देखते हैं कि उनका बोलना पालकों से थोड़ा अलग है और फिर वे बदलाव कर लेते हैं।

मैंने विविधता के बारे में ज़्यादा कुछ नहीं कहा है। बच्चों का भाषा सीखना कई मायनों में सामान्य रूपरेखा में एक समान है। मगर व्यक्तियों के बीच विविधता तो होती है। कुछ बच्चे शब्दों के बारे में जानना चाहते हैं, कुछ बच्चे संरचनाओं के बारे में जानना चाहते हैं। दूसरा, भाषाओं के बीच विविधता होती है और लगता है कि भाषा के अलग–अलग प्रकार सीखने वालों में अलग–अलग रणनीतियों को बढ़ावा देते हैं। तीसरा, बेशुमार बच्चे द्विभाषा–भाषी और त्रिभाषा–भाषी बनते हैं। यह किसी भी बच्चे के लिए काफी फायदेमंद होता है। उनके पालक कभी–कभी चिंतित हो जाते हैं क्योंकि शुरू–शुरू में एक भाषा–भाषी परिवार की अपेक्षा ऐसा बच्चा भाषा में धीमे आगे बढ़ता नज़र आता है। मगर यह अस्थाई होता है। अंततः बच्चा दोनों भाषाएं अर्जित कर लेता है, हालांकि इससे कभी–कभी मदद मिलती है यदि एक पालक निरंतर एक ही भाषा बोले। यानी यदि बच्चे को पता हो कि उसकी मां अंग्रेजी बोलेगी और पिता स्पैनिश बोलेंगे तो शायद मदद मिलेगी।

बहरहाल, मैं आखरी बात पर आती हूं। समय की कमी के कारण मैंने सिर्फ भाषा की संरचना पर बात की। मैंने उस आम अंतःक्रिया की बात नहीं की जिसे भी सीखना होता है, जैसा कि निम्न कार्टून श्रृंखला में दिखता हैः

एक ने टेलीफोन को संभालना नहीं सीखा है। टेलीफोन बजता है। बच्चा उसे उठाकर कहता है ''हैलो''। दूसरे छोर की आवाज़ कहती है ''क्या मैं तुम्हारे पिताजी से बात कर सकता हूं'', बच्चा कहता है, ''ऊंह, मुझसे पूछने की ज़रूरत नहीं है।''

चर्चा

प्रश्न : सबसे पहले तो मैं आपको बहुत सुंदर व जानकारी से भरपुर व्याख्यान के लिए बधाई देता हूं। मेरा सवाल नहीं है; वास्तव में कुछ जोड़ रहा हूं। अब तक हम बातें इस लिहाज़ से ज़्यादा कर रहे हैं कि भाषा कैसे सिखाई जा सकती है या भाषा कैसे सीखी जाती है और इसका परिवेश आम तौर पर स्कूल की कक्षा होती है। मैं इसे आगे बढ़ाने के लिए शुरूआती उम्र में शिशु को उद्दीपन या बच्चे को उद्दीपन की भूमिका के बारे में जोड़ना चाहता हूं। भाषा आकार लेने लगे उससे बहुत पहले बच्चे और देखभालकर्ता के बीच संवाद होने लगता है और भाषा सीखने की भूमिकाएं शुरू हो जाती है। क्योंकि जब मां बच्ची को देखती है और बच्ची मां को देखती है और मुस्कान का आदान–प्रदान होता है, तो यह एक किस्म की अंतःक्रिया की शुरूआत है। और वर्तमान संदर्भ में, ज्ञान का निर्माण कैसे होता है, खासकर एशियई देशों में, शुरुआती उद्दीपनों की भूमिका के चलते यह महत्त्वपूर्ण हो जाता है। हम प्रथम भाषा और द्वितीय भाषा पर ध्यान दे रहे हैं, मैं कहूंगा कि कोई भाषा नहीं। जहां मैं काम कर रहा हूं (आदिवासी इलाकों में) वहां कई मर्तबा ऐसा होता है कि मां और देखभालकर्ता और बच्चों को आपसी अंतःक्रिया का मौका ही नहीं मिलता। तो हमें इस बात पर भी ज़ोर देना चाहिए कि बच्चों को कैसे भाषा का एक आवरण मिलना चाहिए, कैसे शुरुआती वर्षों में बातचीत होनी चाहिए क्योंकि वहीं समय है जब ये सारे केन्द्र सक्रिय होते हैं।

जीन आइचिसन : मूलतः मैं आपकी बातों से सहमत हूं और मेरा आशय है कि मानव भाषा के बारे में एक दिलचस्प बात यह है कि वे पैदा ही अंतःक्रिया के लिए हुई है। तो आप देखेंगे कि बहुत छोटे बच्चे की मां भी यह नाटक करती है कि वे बातचीत में अपनी बारी से बोल रही है। तो मुझे नहीं लगता कि बारी–बारी से बात करना सिखाने की ज़रूरत है। वैसे मुझे यह ज़रूर लगता है कि इसके बारे में सजग होना ज़रूरी है। मुझे लगता है कि अक्सर हम बहुत ज़्यादा बोलते हैं।

प्रश्न : इतने थोड़े समय में यह, लगभग एक पूरे कोर्स का, अद्भुत प्रस्तुतीकरण था। आपने स्वर रज्जुओं और दिमाग के बड़े होने की बात जैविक सुरक्षा के बतौर की। मगर आपने भाषा संकाय का ज़िक्र नहीं किया। आपने इस बारे में भी कुछ नहीं कहा कि भाषा का विकास कैसे हुआ है, सिवाय इसके कि आपने दो मोटे–मोटे अंतर बताए। दूसरी बात मैं यह जानना चाहूंगा कि क्या भाषा और बुद्धि के पृथक्करण को डिसलेक्सिया, सेरेब्रल डॉमिनेन्स वगैरह के रूप में समझा जा सकता है। तीसरा कि हमारे पास भारतीय बच्चों के भाषा के अर्जन को लेकर काफी आंकड़े हैं। मेरा ख्याल है कि भारतीय बच्चों के मामले में भाषा सीखना पश्चिमी बच्चों से थोड़ा तेज़ होता है। कुदरती कुछ नहीं है, हो सकता है कि यह संयुक्त परिवार की वजह से हो जो बढ़ते बच्चों को कहीं ज़्यादा भाषा इनपुट उपलब्ध करता है। चौथा, जिनेटिक डिक्लाइन्स के बारे में क्या कहेंगे, वैसे यह भी एक जैविक कारक है?

जीन आइचिसन : खैर, ये सवाल नहीं टिप्पणियां ही लगती हैं। मैं इतना ही कह सकती हूं, कि सबसे पहले तो मुझे भलीभांति पता है कि हिंदी बच्चे भाषा कैसे सीखते हैं और यह निहायत दिलचस्प है और मेरे कुछ छात्रों ने इस पर काम किया है। मगर मुझे लगा कि सिर्फ हिंदी बच्चों की बजाय अंग्रेज़ी बच्चों के बारे में सुनना ज़्यादा रोचक होगा। मैं यह मानकर चल रही थी कि यदि मैंने हिंदी के बारे में बात की तो मैं ऐसे लोगों से बात करूंगी जो पहले से जानते हैं। मगर मैं हिंदी बच्चों के बारे में साहित्य से परिचित हूं और सिर्फ हिंदी ही क्यों, कुछ दक्षिण भारतीय विद्वानों जैसे लक्ष्मी बाई ने तेलगू और तमिल (खासकर तेलगू) पर बहुत महत्त्वपूर्ण काम किया है। इसलिए मैंने भारतीय शोध का ज़िक्र नहीं किया।

मैं पूरी तरह सहमत हूं कि मैं इस बारे में ज़्यादा बात कर सकती थी कि भाषा कैसे उभरी है। हमने इस पर एक किताब भी लिखी है– *दी सीड्स ऑफ स्पीच*। आपने दो और टिप्पणियां की थी मगर मुझे पता नहीं कि वे सवाल थें या टिप्पणियां।

प्रश्न : मेरा सवाल खास तौर से भाषा और संज्ञान के पृथक्करण से संबंधित है। विलियम सिंड्रोम संबंधी अधिकांश अध्ययनों में विशिष्ट संज्ञान और अन्य किस्म के संज्ञान के परीक्षण के लिए पियाजेवादी ढांचे का उपयोग किया गया है। अब यह तो जानी–मानी बात है कि पियाजेवादी ढांचा थोड़ा अमूर्त और पेचीदा है। मुझे लगता है कि हम एक अपेक्षाकृत सरल ढांचा उपयोग करें, क्या आप बता सकते हैं कि आपके ख्याल में किस हद तक हमें वैसे ही नतीजे मिलेंगे?

जीन आइचिसन : अव्वल तो मैं पियाजेवादी नहीं हूं। यकीनन मैंने पियाजे पर हुए काम को पढ़ा है मगर पक्की तौर पर मैं पियाजेवादी ढांचे में बंधी नहीं हूं। मेरा ख्याल है कि कई लोगों ने भाषाओं के संबंधों पर, मेरा मतलब है अन्य भाषाएं सीखने वाले बच्चों पर काम किया है, जैसे स्लोबिन ने वाकई दिलचस्प काम किया है जिसमें उन्होंने कई द्विभाषा–भाषी बच्चों को देखा और यह देखने का प्रयास किया कि कौन–सी भाषा पहले विकसित होती है और क्यों। और किसी ने अभी कहा था कि हिंदी अधिक तेज़ी से विकसित होती है। आम तौर पर स्लोबिन के अध्ययनों से हमें पता चलता है कि प्रत्येक भाषा के कुछ पहलू अन्य की अपेक्षा तेज़ी से विकसित होते हैं और किसी भी भाषा में कुल मिलाकर लाभ नहीं होता। आप कुछ चीज़ें जल्दी सीखते हैं, बस।

प्रश्न : भाषा और बुद्धि के पृथक्करण के जितने भी उदाहरण आपने दिए, वे ऐसे बच्चों के हैं जिनके पास सुविकसित भाषा थी मगर सुविकसित बुद्धि नहीं थी। क्या कोई ऐसे उदाहरण हैं जिनमें बच्चे (या किसी की भी) बुद्धि तो सुविकसित थी मगर भाषा नहीं, और यदि है तो इसके क्या मायने हैं? यह तो था पहला। दूसरा है, हम अक्सर सुनते हैं कि एक तीन वर्षीय बच्चा भाषा के लिहाज़ से वयस्क होता है। इस कथन का मतलब क्या है, और आपका पर्चा तो इस बात का गवाह है कि ऐसा नहीं है।

जीन आइचिसन : सबसे मशहूर बच्ची, जिसके पास भाषा नहीं थी मगर बुद्धि थी, तो जेनी है जिसका अध्ययन कर्टिस ने किया था और मैंने जेनी का ज़िक्र इसलिए नहीं किया क्योंकि वह काफी समय से मौजूद रही है। मैं मानकर चल रही थी कि उसे सब लोग जानते हैं। शायद मैं गलत थी। अन्य मामले भी हैं, जैसे एक भिक्षु का किस्सा है जिसे किसी तरह के दौरे पड़ते थे और जब दौरे पड़ते थे तो वह बात नहीं कर पाता था मगर किसी होटल का रास्ता खोज लेता था। तो मैंने ऐसे बच्चों के बारे में बात की थी जो भाषा में तो धाराप्रवाह थे मगर जिन्हें कोई सामान्य समस्या नहीं थी क्योंकि मुझे लगा कि समय के अभाव में वही ज़्यादा रोचक होगा। और मुझे पता नहीं आपका दूसरा सवाल क्या है।

प्रश्न : दूसरा प्रश्न यह था कि हम कभी–कभी यह दावा सुनते हैं कि तीन वर्ष का बच्चा भाषा के लिहाज़ से वयस्क होता है, जिसका मतलब होता है कि बच्चा या बच्ची अपने घर की भाषा या देखभालकर्ता वगैरह की भाषा के बारे में सीखने योग्य सब कुछ जानता या जानती है और बाद में वह सिर्फ शेष चीज़ों को विस्तार देता है। मगर ऐसा लगता है कि आपका पर्चा कहता है कि बच्ची वास्तव में तीन साल के बाद भी लगातार परिपक्व होती है, विकसित होती है, भाषा सीखती है।

जीन आइचिसन : हम ऐसा सोचते थे कि बच्चे यह सब तीन साल की उम्र तक हासिल कर लेते हैं। और कई पाठ्य पुस्तकें भी ऐसा कहती हैं मगर पिछले पांच–दस सालों में इस पर काफी काम हुआ है। इससे पता चला है कि नहीं, उन्हें उतना पता नहीं होता जितना सब सोचते हैं। मेरा एक दोस्त था कोरी गमर जो लंदन में काम करता था, उसने यह पता किया था कि करीब आठ वर्ष के बच्चे यह नहीं समझ पा रहे थे– "the doll is easy to see." तो उसने एक गुड़िया की आंखों पर पट्टी बांध दी और फिर बच्ची से कहा, "What does it mean to say that doll is easy to see?" इस पर बच्ची ने कहा, "You silly doll, take the blindfold off then you can see." ज़ाहिर है कि उनसे यह नहीं पूछा जा रहा था। तो इस तरह की संरचनाएं भी हैं।

सबक–III
समाज का ताना बाना और भाषा

पाठ 1. बहुभाषिता, साक्षरता, भाषा–शिक्षण एवं बौद्धिक विकास : संविधान में भाषाएँ– बहुभाषायी मतलब क्या? – भाषा की राजनीति – बहुभाषिता अच्छी बात या बुरी? – साक्षरता कार्यक्रमों में अंधापन – एकभाषी मानदंडों का प्रकोप – दिमागी विकास और भाषा।

पाठ 2. भारतीय भाषाएँ : विकासशील समाज में पहचान का माध्यम अमरीका बनाम भारत में भाषाएँ – भारत में भाषाएँ कम हुई हैं या कि ज़्यादा – भाषा से अपनी पहचान करना – सामाजिक पहचान से भाईचारा या फिर झगड़ा? – भाषा और लिपि की भूमिका–भारत की भाषाएँ : मुसीबत या दौलत?

पाठ 3. भाषा और तौर तरीके : इंसान के कई रोल–अलग रोल की अलग भाषा – क्या ठीक है और क्या गलत? – देश–देश में अलग–अलग तौर तरीके, रीति–रिवाज़ों और समारोहों की भाषा।

पाठ 4. भाषा और पहचान : भाषा में छिपे संकेत – शारीरिक और मनोवैज्ञानिक पहचान – भाषा और बुद्धि का संबंध – स्टीरियोटाइप–भौगोलिक पहचान – आंचलिक बोलियाँ बनाम भाषाएँ – सामाजिक पहचान।

पाठ 5. कौन भाषा, कौन बोली? : बोली और व्याकरण किसके पास है? – भाषा और बोली के बेबुनियाद भेद – एक ही मापदंड क्यों हो? सत्ता से जुड़े भाषाई सवाल – लिपि और भाषा – व्यापक क्षेत्र का बखेड़ा – वैज्ञानिक समझ की ज़रूरत।

(1) जग जग सारा जग सारा निखर गया
हुण प्यार के वादे विच बिखर गया
हुण मौजाँ ही मौजाँ ....

(2) रमैय्या वत्ता वैय्या
रमैय्या वत्ता वैय्या
मैंने दिल तुझ को दिया ...

ये दो फिल्मी गीत हैं जिन्हें हिन्दुस्तान में करोड़ों लोगों ने सुना है, गाया है, जिन्होंने सबका दिल छुआ है। पहला आजकल का, दूसरा पचास साल पुराना। अब सवाल है : ये किस भाषा में हैं, या किस बोली में हैं, या किस अंचल के हैं?

इन सवालों का जवाब ढूंढते हुए हम घंटों सोच सकते हैं मगर साफ जवाब नहीं मिलेगा। क्यों? क्योंकि भाषा क्या है, बोली क्या है, ये सब मसले उलझे हुए हैं। भाषा शास्त्री कुछ कहते हैं, कानूनदाँ कुछ और कहता है, राजनीति वाले कुछ और ही कहते हैं– क्योंकि इन सब लोगों का मकसद अलग–अलग है। इन गीतों को डोगरी मातृभाषा वाले भी उतनी ही अच्छी तरह समझते है जितनी तमिल भाषी, या असमी, या गुजराती। लोग फिल्मों के मामले में बहुभाषी हैं, मगर राजनीति के मामलों में नहीं– और उधर साइंस या तकनीकी मामले हो तो अंग्रेजी भी अपनी और भारतीय भाषा बन जाती है।

पहले या दूसरे विश्व युद्धों में ऐसा होता था– और आज भी छोटे–मोटे हर युद्ध में हो रहा है– कि मुल्कों की सीमाओं पर युद्ध में उजड़े लोग एक मुल्क से दूसरे मुल्क पनाह लेने चलते हैं, और सीमा–चौकियों पर सेना–पुलिस के अफसर एक–एक की जाँच–पड़ताल करके ही उनको आने देते हैं। वजह? वजह यह कि असली उजड़े लोगों की भीड़ में दुश्मनों के भेदिये और जासूस मिले होते हैं। इस जाँच पड़ताल में भाषा–बोलियाँ समझने वाले भाषा वैज्ञानिक भी सेना–पुलिस के साथ बैठे होते हैं। क्यों? इसलिए कि वे आने वाले की बातचीत सुनकर पता लगा लेते हैं कि वे कौन से अंचल, या जिले, से आ रहे हैं, और क्या वे अपने निवास–स्थान के बारे में झूठ बोल रहे हैं। हर इंसान की बातचीत में उसके परिवार, जगह, अंचल, पेशा, शिक्षा, इन सब का निशान रह जाता है। भाषा इतनी गहरी चीज़ है। उलटा भी होता है। इंगलैंड में जन्मी एक नयी पुष्त व पंजाबियों की हो गयी है। उनकी पंजाबी सुनकर भाषा वैज्ञानिक चकरा जाते हैं कभी लगता है ब्रैडफोर्ड शहर की भाषा है, और कभी लगता है भटिंडा की।

भाषा जोड़ती भी है, और तोड़ती भी है– मजहब की तरह। आजादी के समय 'दो–देश' का महज़बी फार्मूला लगाकर देश को दो भागों में बाँट दिया गया, भारत और पाकिस्तान में। मगर चौबीस साल बाद उर्दू–बंगला को झगड़ा बनाकर पाकिस्तान भी दो टुकड़ों में बाँट दिया गया, पाकिस्तान और बांगलादेश में। मजहब की तरह, क्या भाषा इंसान की पहचान बनती है? हाँ, लेकिन पहचान के ज़रिये सैंकड़ों हो सकते हैं। इंसान खुद चुनता है कि वह अपनी पहचान किस–किस जरियों के करता है।

हिन्दी राजभाषा है? राष्ट्रभाषा है? लोकभाषा है? क्या ब्रज, अवधी, मैथिली हिन्दी की बोलियाँ हैं? भाषा और बोली में क्या फर्क है? ये सब पेचीदा सवाल हैं। इनका पूरा जवाब भाषा विज्ञान में नहीं मिलेगा – इनका धरातल सामाजिक, राजनीतिक, और व्यक्तिगत है।

आखिरी बात। क्या हमारे देश, या हमारी दुनिया में, भाषा–बोलियाँ बढ़ रही हैं या कि अंग्रेजी/हिन्दी के चलते लुप्त हो रही हैं? जवाब मज़ेदार है। पढ़ के देखो।

बहुभाषिता, साक्षरता, भाषा–शिक्षण एवं बौद्धिक विकास

रमाकांत अग्निहोत्री

बहुभाषी भारत

हमारा देश किस मायने में बहुभाषी है, यह समझना जरूरी है। खासकर उन लोगों के लिए जो साक्षरता, शिक्षा, बौद्धिक विकास एवं सामाजिक बदलाव के साथ जुड़े हैं। कुछ लोग तो केवल यही समझते हैं कि भारत बहुभाषी है क्योंकि उसके संविधान की आठवीं सूची में 18 भाषाएँ अनुसूचित हैं। हमारा देश केवल अपने संविधान की ही दृष्टि से बहुभाषी नहीं, यह अलग बात है कि उसका संविधान कई भाषाई आयामों की दृष्टि से अनूठा है। जब संविधान लागू हुआ तो केवल 14 भाषाएँ थीं, आठवीं सूची में। 1967 में सिंधी जोड़ दी गई व 1992 में कोंकणी, मणिपुरी व नेपाली। स्पष्ट है कि भारतीय गणतंत्र में इतनी जगह है कि जब भी कोई समुदाय चाहे तो उपयुक्त राजनीतिक एवं प्रशासनिक तरीकों से आठवीं सूची में अपनी भाषा का नाम जुड़वा सकता है। यह महत्त्वपूर्ण बात है कि इसके लिए कोई आवश्यक नहीं कि उस भाषा की अपनी विशेष लिपि हो या कोई प्राचीन लंबा–चौड़ा साहित्य हो। एक बात और महत्त्वपूर्ण है संविधान की दृष्टि से। भारतीय संविधान बनाने वालों ने राष्ट्रभाषा का सवाल नहीं उठाया। इस बात से देश को मुक्त रखा कि राष्ट्र, राष्ट्रीयता व राष्ट्रभाषा में कोई अनिवार्य समीकरण है– ऐसे समीकरण जो लगभग सभी अन्य देशों में अनिवार्य माने जाते हैं। बहुत अधिक हुआ तो राज्य की दो, राष्ट्रीय भाषाएँ मान लीं। भारत में हिंदी को राजभाषा का दर्जा दिया, हिंदी के प्रचार, विस्तार व मानकीकरण के लिए प्रावधान रखे व अंग्रेजी को सह–राजभाषा का दर्जा दिया और अहिंदीभाषी भारतीयों को यह आश्वासन कि जब तक वे नहीं चाहेंगे, अंग्रेजी को इस देश से हटाया नहीं जाएगा। इन सब बातों के बावजूद, संवैधानिक बहुभाषिता भारत के बहुभाषी होने का केवल एक आयाम है जो उसकी बहुभाषित की रक्षा तो करता है पर उसे परिभाषित नहीं करता, उसके मर्म को नहीं समझता। यह संविधान का काम भी नहीं है शायद।

कुछ अन्य लोग कहते हैं कि भारत में केवल 18–20 नहीं अपितु 1632 भाषाएँ हैं, क्योंकि ऐसी गिनती जनगणना दफ़्तर ने की है। इसलिए भारत बहुभाषी है। राजनीतिक या धार्मिक कारणों की वजह से गिनती करते वक्त कई छोटे–मोटे समुदायों की भाषाएँ, जो एक–दूसरे से काफी मेल खाती थीं, अलग–अलग गिना गया, और दूसरी तरफ भोजपुरी, अवधी, मैथली, बुंदेली आदि जैसी मुख्य भाषाओं को हिंदी भाषा के अंतर्गत गिन लिया गया। उत्तर भारत मुख्यतः हिंदीभाषी है, ऐसी मान्यता बनाने के लिए आखिर कोई आधार तो बनाना ही था। स्पष्ट है कि बहुभाषिता का एक आयाम यह भी है कि आप भाषा किसे कहते हैं। भाषा व बोली में अंतर करते हैं या नहीं। समाज भाषा किसे मानता है? भाषा–वैज्ञानिक भाषा किसे मानते हैं? क्या भाषा के बारे में समाज से हटकर कुछ भी सोचा जा सकता है? भाषावैज्ञानिक होने के नाते मैं समाज से कितना भी कहूं कि अवधी अपने आप में एक भाषा है व हिंदी की माँ जैसी है, समाज यही कहेगा कि अवधी हिंदी की एक बोली है। भाषाविदों ने तो कह दिया कि एक शब्दकोश व कुछ संरचनात्मक नियमों की नियमबद्ध व्यवस्था भाषा है। अब इस परिभाषा में न तो समुदाय के लिए कोई स्थान है, न जनगणना की राजनीति के लिए और न ही मानकीकरण के सामाजिक परिणामों के लिए।

कुछ लोग भारत को बहुभाषी इसलिए मानते हैं क्योंकि हमारे यहां अखबारें, फिल्में, किताबें, टी.वी., रेडियो, शिक्षा, दफ़्तर, कचहरी आदि का कामकाज कई भाषाओं में एक साथ होता है। कोठारी कमीशन से लेकर आज तक त्रिभाषा सूत्र भारतीय शिक्षा का आधार–सा बना हुआ है। यह बात अलग है कि कुछ अनुसूचित जातियों के लिए इसका अर्थ रहा है, चार या पाँच भाषाएँ सीखी जाएँ व कुछ समृद्ध उत्तर–भारतीयों के लिए केवल एक या दो।

असल में भारतीय बहुभाषिता के कई आयाम हैं और यह कोई हैरानी की बात नहीं कि पश्चिमी एकभाषी देशों को यह सब एक सिरदर्दी–सा लगता है, अधिकतर पिछड़ेपन से जुड़ा हुआ। अभी तक जितने पहलुओं की हमने चर्चा की है उन सभी में भारतीय बहुभाषिता का कोई न कोई अंश अवश्य निहित है लेकिन सबको मिलाकर भारत की बहुभाषिता परिभाषित नहीं की जा सकती और उसको समझे बिना, उसके प्रति संवेदनशील हुए बिना, किसी भी साक्षरता, शिक्षा या सामाजिक परिवर्तन के कार्यक्रम को कैसे सफल बनाया जा सकता है?

सबसे मुख्य बात तो यह है कि बहुभाषी होना व्यक्तिगत या सामाजिक स्तर पर भारत के लिए कोई सिरदर्दी का विषय नहीं रहा, कभी भी। कई भाषाओं को अपने–आप में समेट लेना व अन्य देश–विदेश की भाषाओं से स्वतंत्रतापूर्वक आदान–प्रदान करना, भारतीय व्यक्ति व समाज के लिए एक आम बात है। यहाँ यह कोई अचरज की बात नहीं कि बेटा माँ–बाप से तो भोजपुरी में बात करता है, पुराने दोस्तों से भोजपुरी व हिंदी में, कॉलेज के दोस्तों से हिंदी या अंग्रेजी में व अपने व्यवसाय का सारा काम केवल अंग्रेजी में करता है। यही नहीं, कई परिस्थितियों में तो ऐसा भी होता है कि दो या अधिक भाषाएँ मिल–जुल जाती हैं। ऐसी प्रक्रिया से भाषाएँ समृद्ध होती हैं न कि खिचड़ी बनती हैं। एकभाषी मापदंडों से बहुभाषी क्षमता को नापा नहीं जा सकता। भाषाएँ मरती नहीं, हमारे यहाँ अक्सर बदलती रहती हैं। कोई भी समुदाय अपनी भाषाई पहचान को आसानी से नहीं छोड़ता। आज भी लोग बहस करते हैं कि भारतीय स्वतंत्रता–संग्राम का माध्यम अंग्रेजी थी, हिंदी, हिंदुस्तानी, उर्दू या लोगों की स्थानीय भाषाएँ। किसी–न किसी स्तर पर मानना पड़ेगा कि सभी थीं। जब तक कोई विशेष राजनीतिक या धार्मिक प्रश्न सामने नहीं आता, हम एक भाषा, एक भौगोलिक परिधि, एक समुदाय, एक धर्म आदि के चक्रव्यूह से दूर ही रहते हैं।

भाषा, समाज, राजनीति

लेकिन ऐसा नहीं है कि भाषा, सामाजिक सत्ता व राजनीति में कोई संबंध नहीं। न जाने कितने वर्षों से संघ लोकसेवा आयोग के बाहर कई लोग इसलिए धरना दिए बैठे हैं क्योंकि उनके मतानुसार अंग्रेजी का ज्ञान भारतीय शासकीय तंत्र में कोई पद प्राप्त करने के लिए आवश्यक नहीं होना चाहिए। वे नहीं मानते कि हमारे लिए केवल अंग्रेजी ही ज्ञान की भाषा है या अंग्रेजी के बिना भारत का वैज्ञानिक व तकनीकी विकास संभव ही नहीं। या कि हम और अधिक पिछड़ जाएँगे, हमारे विचार फिर से दकियानूसी हो जाएँगे, वो जो विश्व के साथ जुड़े रहने का एक झरोखा है, हमारे पास वह बंद हो जाएगा। उनका कहना है कि यदि फ्रांस अपना काम फ्रेंच में व जर्मनी अपना काम जर्मन में कर सकता है तो भारत अपना काम भारतीय भाषाओं में क्यों नहीं कर सकता। ऐसा क्यों है कि अंग्रेजी ही सामाजिक सत्ता पाने का एकमात्र तरीका है? ऐसा क्यों है कि हर महत्त्वपूर्ण क्षेत्र में– वैज्ञानिक या तकनीकी, शैक्षिक या व्यापारी, शासकीय या न्यायिक, चिकित्साशास्त्रीय या औद्योगिक सभी जगह अंग्रेजीवालों का बोलबाला है? ऐसा क्यों है कि त्रिभाषीय कार्यक्रम हिंदीभाषी क्षेत्रों में अधिकतर द्विभाषी होकर रह गया? भाषा और राजनीति में गहरे संबंध से आप कहां तक भागेंगे?

हाल ही के कुछ ऐतिहासिक मुद्दों में भाषा का प्रयोग किस प्रकार हुआ है, इस पर एक नजर डालें। बाबरी मस्जिद के सिलसिले में संघ–परिवार से जुड़ा एक पूरा मिनी शब्दकोश आग की तरह सारे भारत में फैल गया और जब तक मस्जिद गिरी नहीं, उस शब्दकोशीय भाग को बराबर हवा दी जाती रही। अब नई आर्थिक–नीति को लेकर एक बहुत ही मोहक शब्दकोश लोगों तक इस खूबसूरती से पहुँचाया जा रहा है कि लोग उसे लगभग अपना ही मानने लग गए हैं। भाषा के राजनीतिक आयामों की वास्तविकता अब कुछ साफ होने लगी है। कुछ झारखंड में, कुछ सिंधी, कोंकणी, नेपाली व मणिपुरी के संविधान की आठवीं सूची में आने से, कुछ उन लोगों के प्रयासों की विफलता से जो साक्षरता से जुड़े हैं और कुछ उन लोगों की घोर निराशा से जो दूर–सुदूर गाँवों में जाकर एक तरफ तो गाँववालों की भाषाओं को बचाना ही नहीं बल्कि समृद्ध करना चाहते हैं और दूसरी तरफ उन्हें सामाजिक तरक्की के लिए मानकीकृत भाषाएं पढ़ाने को भी अपने आप को मजबूर पाते हैं। बहुभाषिता के इस तरह कई आयाम हैं।

एक अपार स्रोत है हमारी शक्ति का। लेकिन यदि हम बहुभाषिता के बारे में और अधिक संवेदनशील होकर कुछ गहराई से नहीं सोचेंगे तो हम उस प्राचीन सदियों से चली आ रही, हमारे घर–घर में बसी अपार संपत्ति का कुछ फलदायी इस्तेमाल नहीं कर पाएँगे। यह दुर्भाग्य का विषय है कि हमारे अधिकतर भाषावैज्ञानिक अपने शोध–कार्य को संरचनात्मक सीमाओं में ही रखते हैं। उसे ही विज्ञान समझते हैं। और अधिकतर जो बातें संरचना की दृष्टि से पश्चिमी भाषाओं में दिखाई जा चुकी हैं उन्हें अपनी भाषाओं में निरंतर ढूँढ़ने का प्रयास करते रहते हैं। शायद वह समय आ गया है कि यदि भाषाविज्ञान एक सामाजिक विज्ञान है तो भाषाविद् अपने आप से कुछ सामाजिक सवाल पूछें व अपने शोध–कार्य को उन सवालों से जोड़ें।

साक्षरता

साक्षरता कार्यक्रमों में शिक्षाकर्मी अक्सर ये मानकर चलते हैं कि जो पढ़ा–लिखा नहीं वह आज्ञानी है और अज्ञान का यही अँधेरा उसकी गरीबी व दुःखों का एकमात्र या मुख्य कारण है। वे लोग यह भी मानकर चलते हैं कि साक्षरता से, यानी लिखना–पढ़ना सीखने से या कुछ गिनती व पहाड़े याद करने से उसका अज्ञान दूर हो जाएगा और उसके साथ–साथ गरीबी भी। ऐसी अवधारणाएँ कितनी गलत, बेबुनियाद व खतरनाक हो सकती हैं, यह समझाने में एक भाषावैज्ञानिक काफी मदद कर सकता है। वह शायद यह भी समझा सकता है कि इस प्रकार की अवधारणाएँ मासूमियत की निशानी नहीं, पर उनके पीछे एक पूरा राजनीतिक एजेण्डा छुपा रहता है।

पहली बात तो यह कि जिसे पढ़ना–लिखना नहीं आता वह अज्ञानी नहीं है। वह पूरी तरह से अपनी भाषा या भाषाएं समझ व बोल सकता है। उनमें कहानी व कविता कह सकता है। विवरण व इतिहास सुना सकता है। अपनी भाषा के साथ नए–नए प्रयोग कर सकता है। अपनी भाषा का प्रयोग कर सकता है शोषण के लिए, अपनी पहचान के लिए या फिर अपने अस्तित्व के लिए लड़ने के लिए। साक्षरता में जुटे शिक्षाकर्मी के लिए यह समझना आवश्यक है कि उसके विद्यार्थी उसके सामने ज्ञान व भाषाओं की एक संपत्ति लिये बैठे हैं। ऐसी संपत्ति जिसका सदुपयोग करने से साक्षरता सार्थक हो सकती है।

उदाहरण के लिए, साक्षरता का कार्यक्रम हम सीखनेवालों की भाषाओं से ही क्यों न शुरू करें। यदि वे अपनी भाषा लिखना सीख जाएँगे तो मानकीकृत भाषा खुद ही सीख जाएँगे। अपनी भाषाएँ लिखने की प्रक्रिया में उनके सामने अपनी भाषाओं की समानताएँ व अंतर कुदरती रूप से सामने आएँगे। इन सब बातों को वे आसानी से अपने माहौल से जोड़ पाएँगे। भाषागत विश्लेषण से बौद्धिक क्षमता व सवाल उठाने की ताकत का सार्थक विकास संभव है।

भाषा–शिक्षण

बहुभाषिता केवल साक्षरता में ही नहीं अपितु भाषा–शिक्षण में भी बहुत मददगार हो सकती है। वास्तव में, हमारे लिए तो ज़रूरी है कि हम ऐसे तरीके निकालें जिनका आधार बहुभाषिता ही हो। दुर्भाग्यवश हम निरंतर एकभाषी देशों में बनाए गए तरीकों व सामग्री का उपयोग अपने देश में करते रहे हैं। जब व्याकरण व अनुवाद पर आधारित तरीकों की हवा चली तो हमने अंग्रेजी ही नहीं संस्कृत व उर्दू भी उसी तरीके से पढ़ाई। फिर व्यवहारवाद का जमाना आया और हम सब पावलोव के कुत्ते – जैसे हो गए–अधिक अभ्यास, अधिक ज्ञान। एक ही चीज को बार–बार याद करो तो वह आदत–सी बन जाएगी। व्याकरण व अनुवाद की छुट्टी। आजकल संप्रेषण–आधारित तरीकों (कम्यूनिकेटिव एप्रोचज) की बात होती है। फंक्शनलिज्म का जमाना है। काम होना चाहिए। परिस्थिति उपयुक्त भाषा बोलनी व लिखनी आनी चाहिए। मुझे कभी यह समझ नहीं आया कि एकभाषी समाज में स्थापित मानदंडों से आप बहुभाषी समाज की क्षमताओं को कैसे नाप सकते हैं?

अक्सर आपने सुना होगा कि भारत में अंग्रेजी के स्तर बहुत तेजी से गिर रहे हैं और कई भारतीय अंग्रेजी वाक्यों व अभिव्यक्तियों को लेकर भारतीयों का काफी मजाक भी उड़ाया जाता है। लेकिन क्या कोई

एकभाषी अंग्रेजी बोलनेवाला भोजपुरी, हिंदी या तमिल जैसी अन्य भाषाएँ भी बोलता है? जो बात साक्षरता के संदर्भ में कही है वही मुझे भाषा–शिक्षण के संदर्भ में भी कहनी है। एक कक्षा है आपके सामने, जो एकभाषी नहीं है। अलग–अलग भाषाएँ बोलनेवाले कई बच्चे है, उस कक्षा में। इस बात को नकारने की बजाय या इसे एक समस्या समझने की बजाय, इसका अत्यधिक क्रियात्मक उपयोग कक्षा में ही हो सकता है।

उदाहरण के लिए मान लीजिए आपकी कक्षा में तीन–चार अलग–अलग भाषाएँ बोलनेवाले बच्चे हैं। यह कोई अनूठी बात नहीं। दिल्ली के किसी भी स्कूल में हिंदी, भोजपुरी, बंगाली व तमिल बोलनेवाले बच्चे एक ही कक्षा में हो सकते हैं। गाँवों या छोटे–मोटे शहरों में भी ऐसी परिस्थिति हो सकती है। होशंगाबाद (मध्य प्रदेश) के किसी भी मिडिल या हाईस्कूल की कक्षा में अक्सर बुंदेली, मराठी, हिन्दी व गोंडी बोलनेवाले बच्चे साथ–साथ पढ़ते हैं। एक गतिविधि पर गौर कीजिए। आठवीं कक्षा मानकर चलिए। अध्यापक बच्चों से पूछकर हिंदी के कुछ शब्द बोर्ड पर लिख देता है। फिर उन्हीं से उनके बहुवचन पूछकर लिख देता है। अध्यापक का काम लगभग खत्म। अब तमिल बच्चा उठकर उन्हीं शब्दों के एकवचन या बहुवचन सभी बच्चों को सिखाता व लिखवाता है। देवनागरी लिपि में तमिल लिखी जा सकती है। कोई भी भाषा किसी भी लिपि में लिखी जा सकती है। अध्यापक भी इस प्रक्रिया में कुछ तमिल शब्द सीख रहा है, बच्चों के साथ बैठा। इसके बाद इसी तरह बंगाली बच्चे की बारी आती है। काफी मसाला हो गया दो दिन के लिए। बच्चों को तीनों भाषाओं के एकवचन–बहुवचन बनाने के लिए नियम निकालने हैं व सारी कक्षा को समझाने हैं। अध्यापक को भी।

आपका यह पूछना अनुचित न होगा कि इसमें पढ़ाई क्या हुई? सच पूछिए तो काफी पढ़ाई ही नहीं बल्कि और भी बहुत कुछ हुआ। बच्चों व अध्यापक के बीच का फासला कुछ कम हुआ। दूसरे, बच्चों को यह अहसास हुआ कि उनकी भाषा का भी स्कूली पाठ्यक्रम में कोई स्थान है। जब बच्चे और अध्यापक मिलकर यह समझते है कि बुंदेली भी उतनी ही नियमबद्ध व व्याकरणयुक्त है जितनी हिंदी तो बुंदेली बोली के लिए उनके दिल में जो एक अनादर की भावना बनी हुई थी, दूर होने लगती है। तीसरे, बच्चे एक–दूसरे की भाषा के प्रति अधिक संवेदनशील होने लगते हैं। चौथे, भाषाई संरचना के प्रति जागरूक होते हैं– भिन्न–भिन्न भाषाओं की समरूपता व अंतरों को पहचानने लगते हैं। वास्तव में, यही व्याकरण है। पाँचवाँ, जो कि शायद सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है, वे एक ऐसी प्रक्रिया से गुजरते हैं जिसे वैज्ञानिक माना गया है।

बौद्धिक विकास

विज्ञान व वैज्ञानिक तरीके की क्या परिभाषा हो? इस पर काफी वाद–विवाद है। लेकिन शायद इस बात पर कोई विशेष असहमति न हो कि सामग्री या आँकड़े एकत्रित करना, उनका समरूपता या किसी अंतर के आधार पर अलग–अलग वर्गीकरण करना व उस वर्गीकरण के आधार पर कुछ नियम बनाना और फिर उन नियमों को और भी ज़्यादा सामग्री पर जाँचना वैज्ञानिक प्रक्रिया का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। और जब बच्चे बार–बार ऐसी प्रक्रिया से गुजरते हैं तो उनका दिमागी विकास लाज़िमी है।

पहले ऐसा माना जाता था कि बहुभाषिता व बौद्धिक स्तर में एक उलटा रिश्ता है– जैसे–जैसे बहुभाषिता बढ़ती है, बौद्धिक स्तर घटता है। इसी तरह की मान्यताएँ व शोध–कार्यक्रम जरूरी भी थे एकभाषी उपनिवेशवादियों के लिए, जो बहुभाषी देशों पर राज करना चाहते थे। लेकिन आज पूरी तरह से साबित हो चुका है कि बहुभाषिता व बौद्धिक स्तर में सीधा रिश्ता है– जैसे–जैसे बहुभाषिता बढ़ेगी, बौद्धिक–स्तर भी ऊँचा होगा।

हमारे पास तो पहले ही भंडार है बहुभाषिता का। हम क्यों न कोशिश करें ऐसी पाठन–सामग्री बनाने का, पढ़ाने के ऐसे तरीके निकालने का व मूल्यांकन के ऐसे मापदंड बनाने का जिनका आधार बहुभाषिता हो। यह कोई कठिन कार्य नहीं है। केवल हमें अंधे होकर एकभाषीय संदर्भ से उपजे तौर–तरीकों की नकल को बंद करना होगा।

भारतीय भाषाएँ : विकासशील समाज में पहचान का माध्यम

अंजनी कुमार सिन्हा

अमरीका बनाम भारत

भाषावैज्ञानिकों और जनगणना विशेषज्ञों का कहना है कि हालांकि अल्पसंख्यक समुदाय अपनी पहचान बनाए रखने के लिए अपनी भाषा को सजीव रखने का भरसक प्रयास करता है लेकिन वह शायद ही इसमें सफल होता है। इस मत की पुष्टि का साक्षात् उदाहरण है– संयुक्त राज्य अमेरिका जो यूरोप, एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका से आए हुए विभिन्न समुदायों का देश है। यद्यपि इन समुदायों की अलग–अलग भाषाएँ और बोलियाँ थीं, किंतु संयुक्त राज्य अमेरिका मुख्य रूप से एकभाषी देश है। यह सही है कि 1983 की अमरीकी जनगणना में यह कहा गया है कि उस देश में 83 विभिन्न बोलियाँ बोली जाती हैं किंतु जहाँ तक ठोस आँकड़ों का प्रश्न है, सिर्फ निम्नलिखित भाषाओं का विवरण दिया गया है : स्पैनिश 1,46,00,000, चीनी 8,06,000, जापानी 7,01,000 कोरियन 3,54,000 और वियतनामी 2,61,000 (गार्जियन, 24 जून 1984)। हालांकि अमरीकी संविधान में किसी भाषा को राष्ट्रभाषा की संज्ञा नहीं दी गई है, लेकिन यह स्पष्ट रूप से लिख दिया गया है कि उसी व्यक्ति को अमरीकी नागरिकता दी जाएगी जो अंग्रेजी भाषा जानता है। हाल में कुछ चुनिन्दे नगरों के स्कूलों में कुछ गैर–अंग्रेजी भाषाओं को पढ़ाने की व्यवस्था की गई है, लेकिन अधिकांश स्कूलों में इस तरह की कोई व्यवस्था नहीं है। अधिकांश अप्रवासी अपने बच्चों को अपनी मातृभाषा सिखाने के लिए रविवारीय विद्यालयों का सहारा लेते हैं, जो उनके सामुदायिक संगठनों या चर्च द्वारा चलाए जाते हैं। स्पष्ट है कि इस तरह की व्यवस्था अधिक दिनों तक कारगर ढंग से नहीं चल पाती है और तीसरी पीढ़ी के आते–आते अप्रवासी अमरीकी अपने बाप–दादाओं की भाषाएँ भूलने लगते हैं। जातीय चेतना के जागरण के चलते गैर–अंग्रेजी भाषाओं को स्कूलों में पढ़ाने की जो व्यवस्था अमेरिका में की जा रही है, उससे राजनीतिज्ञों का एक बड़ा तबका नाराज़ है, जैसा कि सिनेटर वाल्टर इडलस्टन के इस बयान से साफ है : अगर हम हाल में अपनाए गए रास्ते पर चलते रहे तो मेरा विश्वास है कि हम अपनी उस एकता को, जिसे हमारी मानी हुई भाषा ने बना रखा है, अपूरणीय क्षति पहुँचाएँगे।

हालांकि संयुक्त राज्य अमेरिका और भारत दोनों जनतांत्रिक देश हैं, भाषा के संदर्भ में देखने पर भारत की स्थिति अमेरिका से बिल्कुल भिन्न है। देश के बँटवारे के और स्वतंत्रता के प्राप्ति के समय और उसके बाद सिंधी भाषाभाषी पाकिस्तान से भारत आए और देश के विभिन्न भागों में बस गए। इस बात के प्रायः पचास साल बीत गए हैं किंतु अभी भी भारत में, 1981 की जनगणना के अनुसार, 20,44,389 सिंधीभाषी हैं (जिसमें कच्छी भाषी भी शामिल है) ये देश के नौ राज्यों और एक संघीय क्षेत्र में बिखरे हुए हैं। सिंह और मनोहरन (1993 : पृ. 267) के अनुसार यह भाषा इकसठ समुदायों के द्वारा बोली जाती है (लैंग्वुएज एंड स्क्रिप्ट्स, पीपुल ऑफ इंडिया, खंड नौ, कुमार सुरेश सिंह और एस. मनोहरन)। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जो दूसरा अप्रवासी काफी संख्या में भारत में आया है, वह तिब्बतियों का है। 1981 की जनगणना के अनुसार, उनमें 63, 431 ऐसे तिब्बती हैं जो भारतीय नागरिक हैं और इस भाषा का मातृभाषा के रूप में प्रयोग करते हैं, वे मुख्यतः अरुणाचल प्रदेश, दिल्ली और सिक्किम के निवासी हैं। (इस आँकड़े में तिब्बती शरणार्थी सम्मिलित नहीं हैं)। अगर हम यह कहकर बात टाल दें कि ये तो तिब्बतियों की पहली या दूसरी पीढ़ी है और बाद की पीढ़ियाँ अपनी भाषा भूल जाएँगी तो यह गलत होगा क्योंकि हमारा इतिहास ऐसा नहीं बताता।

पिछले चालीस वर्षों में चीनियों का अप्रवास नहीं हुआ है, अर्थात् जो भी भारतीय चीनी नस्ल के हैं, वे कम–से–कम दूसरी या तीसरी पीढ़ी के हैं, फिर भी 1971 की जनगणना के अनुसार हमारे देश के 10,958 नागरिक चीनी भाषा को मातृभाषा के रूप में बोलते हैं। ये चीनी मुख्यतः पश्चिम बंगाल में रहते हैं। उसी प्रकार 10,504 भारतीय फारसी को अपनी भाषा मानते हैं। ये फारसी बोलनेवाले हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश के निवासी हैं। 1971 की जनगणना के अनुसार पंजाब, जम्मू–कश्मीर और चण्डीगढ़ में रहनेवाले 8,688 भारतीय नागरिक पश्तोभाषी हैं। 1981 की जनगणना के अनुसार 28,116 भारतीय नागरिक अरबी–भाषी हैं। ये मुख्यतः आंध्र प्रदेश के निवासी हैं, पांडिचेरी में रहनेवाले 2,593 भारतीय फ्रेंच बोलते हैं। असम में रहनेवाले 1,381 भारतीय नागरिकों ने यह दावा किया है कि उनकी मातृभाषा कई है। उसी प्रकार अण्डमान और निकोबार द्वीप समूह में रहने वाले 2,871 भारतीय नागरिक बर्मी को अपनी मातृभाषा मानते हैं। पश्चिम बंगाल के 62 भारतीय नागरिक अर्मेनियनभाषी हैं और दिल्ली नगर के 506 व्यक्ति हिब्रू को अपनी मातृभाषा मानते हैं। पांडिचेरी के 13 भारतीय नागरिकों ने लाओशियन को अपनी मातृभाषा बताया है। इन सभी नागरिकों के पूर्वज काफी पहले भारत में आए थे। इनकी भाषाएँ जीवित हैं जो इस बात को प्रमाणित करती है कि भारतीय समाज अल्पभाषियों की भाषाओं को जीवित रखने के लिए प्रोत्साहित करता है। यही कारण है कि भारत के 2,02,440 ऐंग्लो इडियनों ने बिना झिझक अंग्रेजी को अपनी मातृभाषा घोषित किया है। ऐसा नहीं कि ये तिब्बती, चीनी, फारसी, पश्तो, हिब्रू, अरबी या अर्मेनियन बोलनेवाले भारतीय मूल की कोई भाषा नहीं बोलते। इनमें से अधिकांश कम–से–कम द्विभाषी हैं। दूसरे भाषाभाषियों से घिरे रहकर भी इन्होंने अपनी भाषा को जीवित रखा है क्योंकि ये इसे अपनी पहचान के लिए आवश्यक मानते हैं।

भाषा और पहचान

जिस प्रकार पहचान बनाए रखने के लिए अपेक्षाकृत नए अप्रवासी भारतीय अपने पूर्वजों की भाषा को सँजोए हैं, उसी प्रकार अन्य समुदाय के लोगों ने भी अपनी मातृभाषा को बचा रखा है। उदाहरण के लिए, तिब्बती–बर्मन समूह की एक भाषा बोडो को लें, जो 1981 की जनगणना के अनुसार असम, मेघालय और पश्चिम बंगाल में 28,619 लोगों द्वारा बोली जाती है। इसी ग्रुप की दो अन्य भाषाएँ हैं दोआरी (9,103) और करबी (मिकिर) (12,600) ये सभी भाषाएँ बोडो समुदाय के व्यक्ति अपने समुदाय के अंतर्गत ही संपर्क के लिए प्रयोग में लाते हैं, दूसरे समुदायों से संपर्क सूत्र बनाए रखने के लिए ये अन्य भाषाओं का प्रयोग करते हैं।

नागा समुदाय के विभिन्न उपसमुदायों की पहचान अपनी–अपनी अलग भाषा से की जा सकती है। अंगामी, आओ, चक सांग, चांग, जेमा, कबुई, कुछ, खिमानगन, कोनयक, लोथा, माओ, मरम, मरिंग, फोम, पोचुरी, रेंगम, संगतम, सेमा, तांगखुल, यिमचुनगर और जेलियांग उपजातियों की भाषाएँ भी इन्हीं नामों की हैं (सिंह व मनोहरन, वही, पृ. 87–88)। पीपुल ऑफ इंडिया सर्वे में इक्कीस नागा उपजातियों और उसकी इक्कीस भाषाओं का उल्लेख है। भिन्न उपजातियाँ आपस में 'नागामीज' में बातें करती हैं जो असमिया भाषा को आधार बनाकर एक तरह की खिचड़ी भाषा है। प्रायः सोलह उपसमुदायों के लोग इसका प्रयोग करते हैं। तेरह उपसमुदाय हिन्दी का, चार असमिया या मैनी (मणिपुरी) का, चार अंगामी का, तीन कबुई का, दो कोनयन का और एक बांग्ला का प्रयोग अंतर–उपसमुदाय संचार के लिए करते हैं। इस सर्वे के अनुसार, सभी उपजातियाँ कम–से–कम द्विभाषी हैं। बारह उपजातियों के लोग तीन भाषाओं का प्रयोग करते हैं और पाँच उपजातियों में मातृभाषा के अतिरिक्त चार भाषाओं का प्रयोग किया जाता है। याद रहे कि नागालैंड में प्रशासन और शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है और हिन्दी जाननेवालों की संख्या भी कम नहीं है। मैंने नागा जनजाति और उसकी उपजातियों की चर्चा विस्तार से इसलिए की है कि हम परिस्थिति की संश्लिष्टता और गतिशीलता को समझ सकें। ये सभी उपजातियाँ अपने आप पर और अपनी भाषा पर गर्व करती हैं और ऐसा समझती है कि अपनी पहचान के लिए भाषा को जीवंत बनाए रखना आवश्यक है। जिन उपजातियों के

लोग–दूसरी उपजातियों से जितना अधिक मिलते–जुलते हैं, उनके बीच उतनी ही अधिक बहुभाषिकता है। इसके अतिरिक्त ये जनजातियाँ उस क्षेत्र के समतल क्षेत्र के रहनेवालों से बातचीत के लिए नागामीज का प्रयोग करती हैं और उत्तरी पूर्वी भारत के बाहर के भारतीयों से बातचीत के लिए अंग्रेजी या हिंदी का, संक्षिप्त में यों कहा जा सकता है कि नागा जनजाति की विभिन्न उपजातियों के लोग अपनी पहचान के लिए आपस में अपनी मातृभाषा का प्रयोग करते हैं। दूसरी उपजातियों से बातचीत के लिए उनकी भाषा का या नागामीज का प्रयोग करते हैं। अपने क्षेत्र से बाहर के लोगों से बातचीत के लिए हिन्दी या अंग्रेजी का प्रयोग करते हैं। एक औसत नागा व्यक्ति के लिए 'बाहरी व्यक्ति' का अर्थ है 'नागा जनजातियों के निवास–स्थान (नागालैंड और मणिपुर) से बाहर का व्यक्ति चाहे वह बिहार का हो या पंजाब का या इंग्लैड का।

अगर नागा जनजाति की भाषा संबंधी उदारता उन्हें बहुभाषी बना देती है तो गोआ निवासियों का भाषा विमोह उन्हें संकीर्ण विवादों और झगड़ों में उलझाए हुए है। गोआ के मूल निवासियों का एक बड़ा हिस्सा कोंकणीभाषी है। स्मरणीय है कि कोंकणी इंडो–आर्यन ग्रुप की दक्षिणी शाखा की भाषा है। मराठी भी इसी ग्रुप की भाषा है, फिर भी मराठी और कोंकणी बोलनेवालों के आपसी संबंध अच्छे नहीं हैं। इसका जितना संबंध इन भाषाओं की संरचनात्मक विभेद से हैं, उससे ज्यादा संबंध इस बात से है कि मराठी इस क्षेत्र के मराठों की भाषा है और कोंकणी सारस्वत ब्राह्मणों, दैव्यायन ब्राह्मणों और कैथलिकों की। देखने वाली बात है कि जो मराठे कोंकणीभाषी हैं वे अपने को गोमंतक मराठी कहते हैं, महाराष्ट्रीय (मराठी) नहीं। दूसरे शब्दों में, यों कहें कि झगड़े की जड़ मराठों और गोअनीज जन समुदाय का स्वार्थ है, भाषाएँ झगड़े की पहचान और प्रतीक बनकर रह गई हैं। विभिन्न समुदायों को लगता है कि अगर कोंकणी या मराठी उन पर थोपी गई तो उनकी खासियत खत्म हो जाएगा। यही बात कर्नाटक राज्य में स्थित बेलगाँव के संबंध में भी कही जा सकती है। वहां के कन्नड़भाषियों और मराठीभाषियों का झगड़ा तब से चल रहा है जब से भाषाधार राज्यों का गठन हुआ है। शायद यह तब तक चलता रहेगा जब तक निष्पक्ष जनमत के आधार पर बेलगाँव का विभाजन नहीं हो जाएगा। स्मरणीय है कि सिर्फ गोआ और बेलगांव में ही ऐसे झगड़े नहीं हैं। नेपालीभाषी और अन्य भाषाभाषी लोगों के बीच सिक्किम और दार्जिलिंग में जो झगड़े और विवाद होते रहते हैं, वे अपनी अलग पहचान को लेकर हैं। भाषाएँ उस पहचान के प्रश्न को सिर्फ तीव्र कर देती हैं, वे इनकी अभिव्यक्ति मात्र हैं, कारण नहीं। ये इस बात का संकेत हैं कि ये अन्य समुदाय विकासोन्मुख भारत में अपनी पहचान बनाए रखना चाहते हैं और अपना स्थान लाभप्रद बनाना चाहते हैं।

भाषा और समुदाय

1881 से लेकर 1991 तक की भारतीय जनगणना में लोगों से सिर्फ यह पूछा जाता रहा है कि उनकी मातृभाषा क्या है और वे दूसरी और कौन–सी भाषाएँ जानते हैं। इसके विपरीत, पीपुल ऑफ इंडिया प्रोजेक्ट में दो प्रश्नों पर जोर दिया गयाः

(क) आपके घर और परिवार में किस भाषा या बोली का प्रयोग किया जाता है? उसे किस लिपि में लिखा जाता है?

(ख) अपने समुदाय/उपजाति से बाहर के लोगों के संपर्क में रहने के लिए आप किस भाषा/बोली और लिपि का प्रयोग करते हैं?

इन प्रश्नों की अपनी अहमियत है जिसे हिन्दी–उर्दू के संदर्भ में समझा जा सकता है। सर्वे के अनुसार भारतीय मुसलमान आपस में सिर्फ उर्दू–बांग्ला या मलयालम में बातचीत करते हैं लेकिन अंतर–समुदाय बातचीत के लिए वे हिंदी या क्षेत्रीय भाषा का प्रयोग करते हैं। सिर्फ गढ़वाल क्षेत्र के मुसलमानों ने कहा है कि वे उर्दू की जगह आपसी बातचीत में भी हिंदी या गढ़वाली का प्रयोग करते हैं। हिन्दी क्षेत्र के बारह कच्छ

के मुसलमानों ने स्वीकार किया है कि वे कच्छी में बातचीत करते हैं। यहाँ यह कहना आवश्यक नहीं है कि भाषा की संरचना की दृष्टि से हिन्दी और उर्दू में शायद ही कोई अंतर है। अगर भिन्नता है तो वह शब्द–भंडार के स्तर पर है, व्याकरण की नहीं है। हाँ, लिपि का अंतर तो है ही। यह बात महत्त्व की है कि मुसलमान समुदाय आम तौर पर फारसी–अरबी लिपि का प्रयोग करता है और हिन्दू समुदाय देवनागरी लिपि का। इसी अंतर को भाषायी अंतर मान लिया गया है जिसे अधिकांश मुसलमान अपनी पहचान के लिए एक आवश्यक अंतर मानते हैं। इस मामले में संथाली की बात देखी जा सकती है जो ऑस्ट्रोएशियाटिक परिवार की मुण्डा शाखा की भाषा है। इसे संथाली जनजाति के लोग मातृभाषा के रूप में बिहार, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, असम और त्रिपुरा के कुछ क्षेत्र में बोलते हैं। बिहारी संथाली इसे देवनागरी लिपि में लिखते हैं, बंगाली संथाली बांग्ला लिपि में और उड़ीसा के संथाली ओड़िया लिपि में, कुछ इसाई संथाली इसे रोमन लिपि में लिखते हैं और कुछ कट्टरपंथी संथाली अपनी अलग लिपि में। इस लिप्यंतर का भाषा पर कोई असर नहीं है, संथाली भाषा एक समझी ही जाती है। इसकी वजह यह है कि संथालियों की अपनी अलग जनजातीय पहचान है जो लिपि पर निर्भर नहीं है। उनका रुझान विभिन्न राज्यों में फैले संथालियों को एक सूत्र में करने की ओर है जिसमें संथाली भाषा सहायक है चाहे वह किसी भी लिपि में रखी जाए।

पीपुल ऑफ इंडिया प्रोजेक्ट के अनुसार भारत में 4,635 नृजातीय (इथनोग्राफिक) समुदाय हैं जिनमें से 4,536 समुदायों के बारे में तथ्य इकट्ठे किए गए हैं। इनमें से 2,209 समुदायों को मुख्य समुदाय की संज्ञा दी गई है, 586 समुदायों को 'खंड' (सेग्मेंट) माना गया है और 1,840 को क्षेत्रीय इकाई के रूप में देखा गया है। सर्वे के अनुसार सिर्फ 325 भाषाएं ऐसी हैं जिन्हें मातृभाषा या पारिवारिक भाषा के रूप में बोला जाता है। उनमें 96 भाषाएँ ऐसी है जिनका प्रयोग द्विभाषी या बहुभाषी समाज द्वारा किया जाता है। इसके अलावा जो बोलियाँ हैं, उन्हें मातृभाषा के रूप में बोलनेवाले भी किसी भाषाविशेष की उपभाषा या बोली मानते हैं। अगर हम सर्वे के आँकड़ों की तुलना 1961 की जनगणना में एकत्र भाषा संबंधी आँकड़ों से करें तो पाएँगे कि भारत में शायद ही कोई भाषा लुप्त हुई है। 1981 की जनगणना भी इस बात की पुष्टि करती है। इस जनगणना के अनुसार हिन्दी बोलनेवालों की संख्या 38 प्रतिशत से बढ़कर 42.88 प्रतिशत हो गई है जो खासकर हिन्दी के दूसरी भाषा के रूप में बढ़ते प्रयोग के कारण हुआ है। हिन्दी द्विभाषियों की संख्या 1,76,20,783 से बढ़कर 4,44,02,182 हो गई है जिसमें 17.14 प्रतिशत लोग ऐसे हैं जिनकी मातृभाषा मलयालम है। 9.69 प्रतिशत तमिलभाषी, 6.81 प्रतिशत तेलुगुभाषी और 6 प्रतिशत कन्नड़भाषी हिन्दी को दूसरी या अन्य भाषा के रूप में प्रयोग में लाते हैं, अण्डमान के निवासियों ने तो अपनी अलग हिन्दी बना ली है जिसे 'अण्डमानी हिन्दी' कहते हैं।

ऊपर कही बातों से हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि कुछ समुदाय भाषा और बोलियों का प्रयोग अपने आपको एक सूत्र में पिरोने के लिए करते हैं और दूसरे समुदाय से अपने को अलग–अलग रखने एवं अपनी अलग पहचान बनाए रखने के लिए भी। ऐसा नहीं है कि भारत में भाषाई झगड़े नहीं होते लेकिन आमतौर पर भारतीयों में भाषा के प्रश्न पर असीम सहिष्णुता है जिस कारण सभी भाषाएँ जीवंत हैं और द्विभाषियों की संख्या बढ़ती जा रही है। नतीजन एक ओर भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में उल्लिखित भाषाओं को बोलनेवालों की संख्या बढ़ रही है तो दूसरी ओर उन क्षेत्रीय भाषाओं और बोलियों में भी सृजनात्मक कार्य हो रहा है जो अब तक मौखिक परंपरा पर निर्भर थीं। यही हमारे बहुभाषी समाज की सबसे बड़ी दौलत है। हमें इन विरोधाभासी लगनेवाली प्रवृत्तियों से घबराने के बजाय उन्हें समझने की कोशिश करनी चाहिए और उनके प्रति स्वस्थ रवैया अपनाना चाहिए।

भाषा और तौर तरीके

सामाजिक दर्जा (Status)

सामाजिक दर्जा किसी भी व्यक्ति (जैसे पादरी, एक अधिकारी, एक पत्नी या पति) के समाज में स्थान को दिखाता है। सामाजिक भूमिका (Roles) मान्य व्यवहार हैं, जिनकी उम्मीद समाज हर उस व्यक्ति से करता है, जो उस पद पर हो। राजकीय भूमिकाओं के साथ अक्सर विशेष औपचारिक चिह्न जुड़े रहते हैं जैसे की वर्दी। लेकिन सामाजिक दर्जे के प्रमुख चिह्नों में से एक, बेशक, भाषा है। हर व्यक्ति कई भूमिकाएँ अदा करता है, उसकी कई पहचान होती हैं। घर में एक (जैसे परिवार का मुखिया, सबसे बड़ा पुत्र/पुत्री आदि), और इसी तरह से कार्य स्थल में भी एक और भूमिका होती है (जैसे सुपरवाइजर, शागिर्द आदि)। इसी तरह चर्च में, स्थानीय खेलकूद केन्द्र में और ऐसे ही और भी कई मौकों पर। हर भूमिका के साथ पुकारे जाने की एक खास भाषाई शब्दावली जुड़ी है, एक औपचारिक ढंग है या एक खास शब्दावली। अपने जीवन में हर व्यक्ति बहुत से ऐसे व्यवहार सीखता है।

ऐसा कभी–कभी ही होता है कि एक खास सामाजिक भूमिका अपनाने के लिए एक बिल्कुल नई भाषा सीखने की ज़रूरत पड़े। जैसे कि कैथौलिक चर्च से जुड़ने के लिए लैटिन सीखने की ज़रूरत होती है, डॉक्टर को अपने नुस्खे लिखने के लिए भी लैटिन की सीमित शब्दावली की ज़रूरत होती थी, कुछ स्कूलों और महाविद्यालयों में खाने के समय लैटिन में प्रार्थना गाना अभी भी ज़रूरी है और दीक्षांत समारोहों में भी लैटिन सुनी जा सकती है। आम तौर पर एक व्यक्ति भाषा की नई प्रकार तभी सीखता है जब वह कोई सामाजिक भूमिका लेता है जैसे किसी संस्कृति में कोई भी खास किस्म की सांस्कृतिक क्रिया को संचालित करना (शादी की रस्म या फिर कुछ और); या फिर किसी खास कारोबार में (वकील, पुलिस और परेड करवानेवाले सर्जेंट) आदि। इन सभी तरह की कार्य भूमिकाओं में नये तरीके की लय में बात रखना, बोलते समय कहां जोर देना है, कहाँ नहीं देना आदि सीखना पड़ता है।

इस तरह की भूमिकाओं में निभानेवाले का लहजा, उच्चारण का ढंग, कुछ बात ज़ोर से कहना, लय और उतार–चढ़ाव आदि सभी खास प्रकार के होते हैं। इस तरह की किसी भी सामाजिक भूमिका के भाषाई गुण आम तौर पर काफी आराम से पहचाने जा सकते हैं। लेकिन कई बार इन्हें आसानी से नहीं भी पहचाना जा सकता। ऐसा तब होता है, जब उन भूमिकाओं को ही आसानी से अलग करके नहीं पहचाना जा सके। जिन संस्कृतियों से आपका कम परिचय होता है जैसे विदेशी लोगों की व उन भाषाओं को जिन्हें आप उनकी अपनी आबोहवा में नहीं सीखते, उसके संदर्भ में यह समझना खास मुश्किल हो जाता है कि समाज के अन्दर–अन्दर में क्या कुछ हो रहा है। जो हो रहा है उसके पीछे क्या है? यह समझना भी मुश्किल होता है कि किसी सामाजिक समारोह, बैठक अथवा जब भी लोग इकट्ठे होकर कुछ कर रहे हों तो उसमें भागीदार के रूप में कैसा व्यवहार करना है। किसी एक भाषाई समुदाय अथवा किसी दूसरे समुदाय में आने पर मेहमान को कैसे व्यवहार करना है, यह भी अलग–अलग होता है। कुछ देशों में यह सभ्य व शिष्ट समझा जाता है कि खाने के साथ–साथ खाने की तारीफ़ की जाए, किन्तु कई अन्य जगहों पर इसे अभद्र समझा जाता है। कुछ देशों में औपचारिक आमंत्रण पर आए मेहमान से अपेक्षा होती है कि वह खाने के बाद तत्काल एक छोटा भाषण दें, अन्य देशों में ऐसी कोई अपेक्षा नहीं होती। कई बार चुप्पी को भी महत्त्वपूर्ण मान लिया जाता है।

समारोहों की भाषा

रीति–रिवाजों को सम्पन्न करने के लिए सभी समुदायों ने अपनी–अपनी भाषा का विकास किया है। इन रीतियों के संचालन में जिन लोगों की मान्य भूमिका व दर्जा होता है वे खास तौर की भाषा का उपयोग करते हैं। जो इनमें भाग लेते हैं वे भी विशेष भाषा का उपयोग करते हैं। रीति–रिवाज की भाषा में यह फर्क नई भाषा के उपयोग में भी है (इसमें सुननेवाले को कुछ भी समझ आया या नहीं इसकी चिन्ता नहीं होती)। कभी यह फर्क रोजमर्रा की भाषा में थोड़े बहुत फर्क तक ही सीमित होता है। जैसाकि प्रार्थनाओं व धार्मिक भाषणों में यह फर्क खास सुर, तान, लय, गायकी, या फिर कभी–कभी खास व्याकरण व शब्दावली आदि। इसके कई उदाहरण हैं, जैसे कि जूनी लोगों में पवित्र शब्द (जैसे इव–उसु, पेना, वी) आदि को लयबद्ध टुकड़ों में बोला जाता है। यह कुछ–कुछ कविता को गाने की लय को उलटा करने के समान है। इसमें लय, ताल, भाव के उतार–चढ़ाव का आम तौर तरीकों से उलटा होता है। इसमें जिन ध्वनि इकाइयों (syllables) पर सबसे ज्यादा ज़ोर होना चाहिए, उस पर सबसे कम होता है। और जिन ध्वनियों का सामान्यतः सबसे हलके से बोलना होता है, उन पर ज़ोर सबसे अधिक होता है।

कोलम्बिया के खाम्सा आदिवासियों के रीति–रिवाजों में भी लय व ताल स्पष्ट पता चलती है जो कुछ–कुछ (chant) की तरह है पर इसके अलावा रीति–रिवाज की भाषा में व्याकरण में व शब्दों के अर्थ में भी कुछ अन्तर होता है। वे स्पेनिश भाषा के लिए हुए शब्दों का कहीं अधिक उपयोग करते हैं। सामान्य में हो रहे 20% उपयोग के स्थान पर 60% तक स्पेनिश शब्दों तक। इस तरह के कई उदाहरण अन्य अलग–अलग स्थानों व समाजों के भी उपलब्ध हैं।

भाषा और पहचान – डेविड क्रिस्टल

''आप कौन है? आप कहां से है? आप क्या करते हैं?'' आप अभी क्या कर रहे हैं? ऐसे कई सवालों के उत्तर हमारे बोलने के ढंग में छिपे होते हैं। जैसे ही हम बोलना शुरू करते हैं, सुनने वाले (The interlocutor) को बिना ज्यादा सोचे–विचारे और बिना चाहे, अपने बारे में, अपने निजी इतिहास और सामाजिक पहचान के बारे में कई बातों की झलक दे देते हैं। इस प्रकार हमारी भाषा, हमारी पहचान का निशान होती है। जो भाषायी संकेत हमारे संवाद में होते हैं वे इतने विशिष्ट होते हैं कि जानकार व्यक्ति उससे बहुत कुछ जान लेता है। सबसे ज्यादा बड़ी बात यह है कि भाषा यह दिखाती है कि हम कहां के हैं और भाषा ही हमारा व्यक्तिगत, सामाजिक व राष्ट्रीय पहचान का स्वाभाविक बिल्ला अथवा चिह्न है।

इस लेख के विभिन्न भागों का विषय भाषा और पहचान है। हमें यह अहसास होना आवश्यक है कि अपनी व अन्य लोगों की भाषाओं के बारे में हमारा दृष्टिकोण, खुशी, गौरव, तनाव, गुस्सा और यहां तक कि लड़ाई–झगड़े तक का स्रोत बन सकता है। पहले भाग में भाषा और शारीरिक व मनोवैज्ञानिक पहचान तथा अस्तित्व के रिश्ते की चर्चा की जाएगी – किस प्रकार बात करने के ढंग में हमारी उम्र, लिंग, व्यक्तित्व और समझ आदि जैसे पहलुओं के संकेत छिपे (are encoded) होते हैं। अगले भाग में हमारी भौगोलिक पृष्ठभूमि किस प्रकार 'भाषा' में दिखाई देती है तथा इसके और क्या भाषायी पहलू जैसे उच्चारण का ढंग (accent) होते हैं। तीसरे भाग में जातीय व सामाजिक पहचान (ethnic and social identity) की चर्चा की गई है – किस प्रकार ये हमारी भाषा पर प्रभाव डालते/करते हैं, और किस प्रकार हमारी भाषा सामाजिक ढांचे (Social Structure) की समझ को अपने अंदर छिपाए (encode) रखती है। यह समझने योग्य है कि हमारी सामाजिक (ethnic and social) पहचान व अस्मिता (identity) के बनने में नस्लवाद, राष्ट्रीयता, वर्गों व जातियों में बंटवारा (तथा इनसे जुड़ी मान्य भूमिकाएं, निकटता–दूरी, सामाजिक पूर्वाग्रह सभी हैं) वे इस बात को प्रभावित करते हैं कि भाषा का उपयोग कैसे होगा। वे इसको भी प्रभावित करते हैं कि सामाजिक ढांचे को हम किस प्रकार देखते हैं जो इस पर निर्भर नहीं है कि हमारी मातृभाषा क्या है।

भाषा के बदलने का एक बड़ा हिस्सा सांदर्भिक पहचान में रहता है। इसमें हम यह समझते हैं कि लोग कौन सी भाषा इस्तेमाल करेंगे? यह इस बात पर भी निर्भर है कि बातचीत का तात्कालिक संदर्भ क्या है? हम किस स्थिति और संदर्भ में अपने आपको पाते हैं, यह हमारे बात करने के ढंग को प्रभावित करता है। इस संदर्भ के तीन अलग–अलग पहलू पहचाने जा सकते हैं, ये हैं माहौल व स्थान, भागीदार, और वे उस समय किस कार्य में संलग्न हैं। यह सब हमें अन्य विषय जैसे अभिवादन का तरीका, खबरें पढ़ना अथवा सुनना, भाषण देना, रोजमर्रा की बातचीत, चालू भाषा, आदि से भी जोड़ते हैं। इसके साथ ही अन्य बातें भी हैं, जैसे कम विस्तृत भाषा उपयोग, मुहावरे जो कि इसके विपरीत हैं, संकेत व गोपनीय भाषा, भाषा के खेल, व्यंग्य व कला के अन्य रूप। व्यक्तिगत भाषायी पहचान व्यक्तिगत ढंग (Style) पर भी आधारित है। इसमें विविधता का एक पहलू साहित्यिक व गैर साहित्यिक भाषा के उपयोग का है और फिर गद्य, पद्य व नाटक की शैली है।

मनोवैज्ञानिक पहचान (Psychological Identity)

आम तौर पर हम लोगों को उनकी मनोवैज्ञानिक विशेषताओं (Psychological Attributes) जैसे दिमाग की तेजी, अच्छी एकाग्रता (good concentrations) स्मृति, आदि के आधार पर पहचानते हैं। आम तौर

पर हम यह नतीजे उनकी गैर भाषीय व्यवहारों के आधार पर करते हैं। जैसे कि कोई व्यक्ति एक यन्त्र ठीक कर सकता है या नहीं, ध्यान से समझ सकता है कि नहीं, रास्ता याद रख सकता है या नहीं, मित्रवत व्यवहार करता है या नहीं, इन सबको देखने के लिए हमें उसकी भाषा की ओर नज़र डालने की आवश्यकता नहीं पड़ती। लेकिन कई बार हम व्यक्ति की भाषा को ही ऐसे मत बनाने का बुनियादी आधार बना लेते हैं और यह उस व्यक्ति की पहचान, अस्मिता व अस्तित्व का हिस्सा है।

शैक्षिक मनोविज्ञान के किसी भी क्षेत्र से इस प्रकार की भाषायी खोज शुरू हो सकती है। हम यह खोजने का प्रयास कर सकते हैं कि एक तरफ भाषाई समताएं व कौशल, भाषाई ढांचा, और दूसरी तरफ स्मृति, ध्यान दे पाना, व्यक्तित्व आदि किसी भी मान्य मनोवैज्ञानिक – जैसे विचारों के बीच का सम्बन्ध क्या है? ऐसे अध्ययनों के सैद्धांतिक व व्यावहारिक दोनों तरह के परिणाम हो सकते है।

ये दिमाग के काम करने की प्रक्रिया के लिए संभव प्रतिमानों के प्रकार व निर्माण के ढंग की ओर संकेत करते हैं। ये भाषा विज्ञान विषय का एक प्रमुख हिस्सा है। ये भाषा सीखने के कई पहलुओं व प्रश्नों से भी जुड़े हैं।

भाषाई दृष्टिकोण से देखें तो लगता है कि वयस्क होने के बाद भाषा के वे पहलू जो मनोवैज्ञानिक गुणों से जुड़े हैं वे लगभग स्थाई हो जाते हैं और ज़्यादा, आकार, रंग, ढंग जैसे भौतिक गुणों के समान होते हैं। यह बात और है कि अस्थाई व चेतन रूप से नियंत्रित किए जा सकने वाले गुणों के समान होने के कई दशकों के गहन अनुसंधान के बावजूद, भाषा और बुद्धि (intelligence) का संबंध आज भी ठीक से नहीं समझा गया है और इसके बारे में, कुछ स्पष्ट कहना संभव नहीं है। लोगों की बुद्धि का आकलन मौटे तौर पर उनके व्यवहार एवं कुछ दिए गए कार्यों को कर पाने की क्षमता व कुशलता के आधार पर किया जाता है।

भाषा और बुद्धि (Language and Intelligance)

बुद्धि की परख की एक लम्बी परम्परा है जिसमें कुछ कार्यों (tasks) के छोटे–छोटे सैट (समूह) दिए जाते हैं ताकि कामयाबी के स्तर व व्यक्तिगत फर्क को उभारा जा सके। इस तरह के टेस्ट के आधार पर बुद्धि के माप को एक संख्या द्वारा दिया जाता है, और इस तथाकथित उपलब्धि का स्तर (level of achievement) एवं व्यक्तिगत भेद (individual differences) को प्रदर्शित करने वाले इन संख्याओं का शिक्षा जगत, मनोवैज्ञानिक प्रयोग शाला, व अन्य संदर्भों में भी व्यापक रूप से इस्तेमाल किया जाता है।

अधिकतर शोध बच्चों के बौद्धिक विकास के संदर्भ में किया गया है – किस तरह बच्चे अपने आसपास (वातावरण) के बारे में सीखते हैं, कुछ स्थिति में शामिल होते हैं, समस्या का हल करते हैं, अपनी परिस्थिति के साथ अंतःक्रिया करते हैं। इन प्रश्नों के संदर्भ में कई सैद्धान्तिक मत हैं जो अलग–अलग किस्म की समझ का ढांचा बनाते हैं। मानसिक रूप से कमज़ोर व पिछड़े बच्चों के साथ किए अध्ययन बताते है कि भाषा सीखने के लिए बुद्धि का एक न्यूनतम स्तर (minimum level of intelligence) सामान्य टेस्ट द्वारा किए परीक्षण में दिखना चाहिए। किन्तु यह न्यूनतम स्तर, बहुत ऊंचा नहीं होता। और यह बात साबित कर दी गई है कि बुद्धि एवं किसी भी भाषा के विशेष संरचनात्मक ढांचे का प्रयोग करने में कोई संबंध नहीं है। बुद्धि को छोटे शिशु के आवाज़ निकालने (babbling), शब्द भंडार, व्याकरणी जटिलता, मुहावरे, छंद व अलंकार का प्रयोग आदि जैसी बातों से जोड़ने का प्रयास किया गया है।

रूढ़ मान्यताएं (Stereotypes)

अक्सर लोग भाषा और व्यक्तित्व के अन्य लक्षणों जैसे बुद्धि, सुन्दरता आदि में संबंध समझते हैं।

ऐसी धारणाओं की स्टीरियोटाइप कहा जाता है। जैसे वे लोग जो किसी भाषा का शुद्ध प्रयोग करते हैं, बिना रुकावटों के बात करते हैं, और तेज़ी से बात करते हैं, उन्हें सक्षम, प्रभावी (dominant) एवं गतिशील (dynamic) माना जाता है। और वे लोग जो क्षेत्रीय, जातीय या निम्न वर्गों से जुड़ी भाषाओं का प्रयोग करते हैं, उनमें अखंडता (integrity) और आकर्षकता (attractiveness) जैसे गुण माने जाते हैं।

भौगोलिक पहचान (Geographical Identity)

भाषायी पहचान (Linguistic identity) की सबसे आसानी से दिखने वाली विशेषताएं वे होती हैं जो क्षेत्र के साथ बदलती हैं और बोलने वाला कहां से आया है, इस बारे में बताती हैं। इनसे कई तरह के सवाल कई स्तर तक पूछे जा सकते हैं जैसे कि व्यक्ति कहां से हैः अमेरिकन महाद्वीप से, यूएस से, न्यूयार्क से या फिर ब्रुकलीन से आदि। आंचलिक समुदायों से आने वाले लोगों की भाषाएँ अलग–अलग हैं। इन विशेषताओं से भिन्न क्षेत्रीय भाषाओं, बोलियों (dialects) को अलग–अलग किया जा सकता है और बोलने वाला कहां से है यह पहचाना जा सकता है। भाषा व बोली बोलने वाले के बारे में जो बताती है वह इस बात पर निर्भर है कि हम किस भाषा की बात कर रहे हैं। भौगोलिक स्थान से भाषा का संबंध है पर वह अलग–अलग भाषा के संदर्भ में अलग–अलग है। हालांकि आज के हालात में जब लोग एक जगह से दूसरी जगह जाते रहते हैं कोई व्यक्ति कहां से है पहचानना इतना आसान नहीं रहा है, क्योंकि हर व्यक्ति की भाषा में दो–चार जगहों का असर आ ही जाता है।

आंचलिक बोलियों की प्रचलित मान्यताएं (Popular notions of dialects)

क्षेत्रिय बोलियों से कई गलतफहमियां जुड़ी हैं। ऐसा कई बार सोचा जाता है कि बोलियां केवल कुछ लोग ही बोलते हैं। इन्हें अक्सर नीचा, देहाती और गंवार समझा जाता है। **लेकिन वे यह नहीं देख पाते कि शहरों में भी एक ही भाषा के अनेक रूप अथवा बोलियां इस्तेमाल होती है और यह बढ़ रही हैं।** ऐसी बोलियों को प्रायः किसी मानक भाषा का विकृत रूप सोचा जाता है। यह कई तरह से दिखता है। जैसे यह कहते हैं कि अमुक व्यक्ति शुद्ध अंग्रेज़ी भाषा बोलता है और इसमें बोली का कोई पुट नहीं है। यह बात ध्यान में नहीं रखी गई है कि मानक अंग्रेज़ी उसी तरह की एक बोली है जैसे कोई और अंग्रेज़ी की बोली। भाषा विज्ञान की दृष्टि से भाषा व बोली में कोई अंतर नहीं होता। सभी भाषाओं को बोलियों का एक इन्द्रधनुष माना जाता है। कई बार यह भी सोचा जाता है कि दूरस्थ भाषा जिसे लिखा नहीं जा सकता वह बोली है और उसमें भी कुछ आदिम अथवा पिछड़ी बोलियां हैं। यह समझने योग्य बात है कि असल में सभी लोग भाषाओं का नहीं, बोलियों का प्रयोग करते हैं – चाहे वह शहरी हो या ग्रामीण, मानक हो या अमानक उच्च वर्ग के हो या निम्न।

भाषाई संरचना की दृष्टि से कोई एक बोली किसी दूसरी से श्रेष्ठ नहीं होती, हालांकि अनेक बोलियों को सामाजिक दृष्टिकोण (point of view) से प्रतिष्ठित माना जाता है। **बोली और बोलने का ढंग (accent) अलग–अलग हैं, इसमें अक्सर भ्रम हो जाता है और बोलने वाले के उच्चारण के ढंग व लय को बोली के साथ जोड़ लिया जाता है।** एक ही बोली बोलने वालों का उच्चारण भी अलग–अलग हो सकता है जैसे अलग–अलग बोली वालों के उच्चारण में अंतर होता है। ठीक वैसे ही मानक अंग्रेज़ी अथवा हिन्दी बोलने वाले बहुत अलग–अलग ढंग से उच्चारण करते हैं और यह एक ही बोली हैं। बोली को अलग मानने के लिए व्याकरण व शब्दावली में भी अंतर होना चाहिए।

वैसे देखा जाए तो हर स्थिति की भाषा का उपयोग अलग–अलग होता है। कोई भी दो व्यक्ति भाषा को ठीक एक जैसे उपयोग नहीं करते। व्याकरण, उच्चारण, अर्थ की समझ में थोड़े बहुत अंतर तो होते ही हैं। यह कहा जा सकता है कि हर व्यक्ति की एक हद तक अपनी व्यक्तिगत बोली होती है। भाषा का

अध्ययन करते समय हम एक व्यक्ति की भाषा (idiolect) से शुरू करते हैं। बहुत ऐसी idiolect से एक बोली बनती है।

परस्पर सुबोधता (Mutual Intelligibility)

भाषा और बोली में स्पष्ट अन्तर करना एक कठिन काम है। यदि दो लोग जिनकी बोलियां अलग–अलग लगती है, एक दूसरे को समझ पाते हैं, तब यह कहा जा सकता है कि उनकी भाषा एक है पर बोलियां अलग। यदि वे एक दूसरे को समझ नहीं पाते तो यह कहा जा सकता है कि उनकी भाषाएं ही अलग करने का एक सरल उपाय देती है। लेकिन यह उपाय हमेशा कारगर नहीं है और इसमें समस्या हो सकती है। कई बार, दो बोलियां, जो एक ही भाषा से जुड़ी होती हैं, वे आपसी सुबोधता के मानदंड को पूरा नहीं कर पाती। इससे भी बड़ी समस्या उन उदाहरणों में होती है जहां बोलियां निरन्तर बदल रही हैं जैसे की एक भाषाई सिलसिला हो। यह बोलियों की एक चेन होती है जो किसी क्षेत्र में पाई जाती हैं। दो बोलियां, जो इस चेन में साथ–साथ पाई जाती है, वह परस्पर सुबोध (mutually intelligible) होती हैं। लेकिन दो बोलियां जो इस चेन पर एक–दूसरे से दूर होती हैं, यह परस्पर सुबोध नहीं होती। जैसे–जैसे बोलने वालों के बीच भौगोलिक दूरी बढ़ती है, वैसे–वैसे उनके एक–दूसरे का समझने की संभावना कम होती जाती है। इसलिए दो लोग जो उन दो बोलियों का प्रयोग करते हैं जो dialect continuum के दो विपरीत जगह होती हैं, वे एक–दूसरी की बोलियां समझ नहीं सकते, जबकि वे एक आपसी सुबोधता की चेन से जुड़े होते हैं। इसमें यह तय कर पाना मुश्किल होता है कि इस चेन पर हम कहां कहें कि यहां पर एक नयी भाषा शुरू हो गई।

सामाजिक पहचान (Social Identity)

यूरोप के संदर्भ में देखें तो डच भाषा से शुरू करके चलते–चलते शायद ही कोई ऐसा इलाका आए जहां के रहने वाले एक दूसरे की बात नहीं समझते, देश की सीमा के पार होते ही भाषाओं के नाम बदल जाते हैं। ऐसा भारत में भी होता है। बड़े भौगोलिक क्षेत्रों से जहां लोगों की बसाहट लगातार है यह स्वाभाविक है और हम नई भाषा के शुरू होने की जगह को नहीं पहचान सकते।

कौन भाषा, कौन बोली

रमाकांत अग्निहोत्री

''अध्यापक स्वयं को शुद्ध व मानकीकृत भाषा का रखवाला मान लेते हैं। प्रश्न समझ व दृष्टिकोण का है। पहली बात बच्चा जिस भाषा को लेकर स्कूल आता है वह पूर्णरूप से व्याकरण युक्त है। दूसरी बात उसकी भाषा उसकी शिक्षा का माध्यम नहीं बन पाई यह एक राजनैतिक, सत्तागत प्रश्न है।''

हर सामान्य व्यक्ति अपनी भाषा खूब अच्छी तरह से बोलता व समझता है। इसलिए यह स्वाभाविक है कि हर व्यक्ति यह समझे कि वह भाषा के बारे में काफी कुछ जानता है। असल में सच तो यही है कि हर व्यक्ति अपनी भाषा के बारे में बहुत कुछ जानता है। लेकिन इस भाषागत ज्ञान के बारे में आम आदमी अक्सर सचेत नहीं होता। वास्तव में उस ज्ञान के बारे में उसके लिए कुछ भी विशेष कहना संभव नहीं हो पाता। **अगर यह कहा जाए कि आपकी अपनी भाषा का पूर्ण व्याकरण आपके पास है– आपके दिमाग में– तो शायद कुछ अटपटा–सा लगे। लेकिन यह बिल्कुल सच है।** दूसरी तरफ भाषा के बारे में जो कई बातें लोग अक्सर कहते हैं वे एकदम निराधार अवधारणाओं से जुड़ी रहती हैं। इन निराधार अवधारणाओं के कारण काफी सामाजिक, मानसिक व शैक्षिक नुकसान होता है। यदि हम सब भाषा की प्रवृत्ति को समझने का प्रयास करें तो शायद इस नुकसान से बचने का कोई रास्ता निकले।

व्याकरण की समझ कितनी?

अपनी भाषा के बारे में आपका ज्ञान पूर्ण एवं त्रुटिरहित है। अपनी भाषा बोलने व समझने में आप कभी गलती नहीं करते। यदि करें तो तुरन्त उसमें सुधार कर लेते हैं। इस तरह यदि कोई दूसरा आपकी भाषा बोलने में गलती करता है तो आप उसे तुरन्त पकड़ लेते हैं।

आप नित नए–नए वाक्य बोल व समझ सकते हैं। यही नहीं आपको यह भी मालूम है कि किस सामाजिक संदर्भ में कैसी भाषा उचित रहेगी। लेकिन इस ज्ञान के बारे में मुक्त रूप से चर्चा करना केवल भाषाविदों तक ही सीमित रह गया। और भाषाविद् जिस भाषा में बात करते हैं वह आम आदमी की समझ में नहीं आती।

उदाहरण के लिए, यह तो हर हिन्दीभाषी जानता है कि–

गीता खाना खाता है।

ठीक वाक्य नहीं है। कुछ सोचकर शायद वह यह भी बता दें कि 'गीता' स्त्रीलिंग है इसलिए क्रिया पुल्लिंग नहीं हो सकती। (गो कि भारत में ही ऐसी अनेक भाषाएँ हैं जिनमें कर्ता के पुल्लिंग या स्त्रीलिंग होने से क्रिया पर कोई असर नहीं पड़ता– अंग्रेजी भी ऐसी ही भाषा है)। लेकिन निम्न दो वाक्यों में यह नियम लागू नहीं होता।

मोहन ने खाना खाया।

गीता ने खाना खाया

'मोहन' पुल्लिंग है व 'गीता' स्त्रीलिंग फिर भी दोनों ने 'खाया'। यह कहना कि–

गीता ने खाना खाई।

गलत है। इसी तरह यदि आप दुविधा में पड़े हिन्दीभाषी का ध्यान निम्न दो वाक्यों–

मोहन ने रोटी खाई।

गीता ने रोटी खाई।

की ओर ले जाएँ, तो शायद कुछ कठिनाई से वह यह बता पाए कि यदि कर्ता के सामने 'ने' आ जाए तो क्रिया कर्म से मेल खाती है। सो कर्ता कोई भी हो– पुल्लिंग या स्त्रीलिंग– पर 'ने– आने पर

.... *खाना खाया* (खाना पुल्लिंग है)

.... *रोटी खाई* (रोटी स्त्रीलिंग है आदि)

लेकिन निम्न दो वाक्यों के बारे में हिन्दीभाषी क्या कहेगा!

मोहन ने गीता को मारा।

गीता ने मोहन को मारा।

ऐसी ही समस्याओं को लेकर भाषावैज्ञानिक भाषा से जूझते रहते है। अब देखिए ना–

गीता मोहन को मारती है।

तो सही है लेकिन

गीता ने मोहन को मारी।

ठीक नहीं है।

वास्तव में जैसे ही एक हिन्दीभाषी ऐसा कोई वाक्य सुनता है उसे मालूम होता है कि कोई अहिन्दीभाषी हिन्दी बोलने का प्रयास कर रहा है। साफ है कि हर व्यक्ति अपनी भाषा का व्याकरण पूरी तरह से जानता है। लेकिन उस व्याकरण का अध्ययन करना व उसके बारे में बातचीत कर सकना बिल्कुल अलग बात है; कठिन बात है। इसलिए हमारे यहाँ कहते हैं– मोक्षार्थे व्याकरणमधितव्यम्।

खैर हमें तो उस ज्ञान के बारे में बातचीत करनी थी जिसका आधार अवैज्ञानिक व बेबुनियाद अवधारणाएँ हैं। हर सामान्य व्यक्ति इस तरह के ज्ञान पर आधारित अनेक विश्वास या मान्याताएँ पाल लेता है, निर्णय ले लेता है, लोगों को अलग श्रेणियों में बाँट लेता है और कुछ से घृणा व कुछ से प्यार करने लगता है।

इन निराधार मान्यताओं को समझना आवश्यक है। बिना समझे इनसे छुटकारा पाना संभव नहीं।

कौन भाषा, कौन बोली

एक मुख्य मसला है भाषा व बोली का। किसी भी सामान्य व्यक्ति से पूछकर देखिए, वह अत्यधिक विश्वास से आपको भाषा व बोली में अंतर बताने लगेगा। कहेगा, ''भाषा का व्याकरण होता है, बोली का नहीं। भाषा की लिपि होती है, बोली की नहीं। भाषा का क्षेत्र विस्तृत होता है जबकि बोली का स्थानीय। भाषा मानकीकृत व परिमार्जित होती है, बोली नहीं। जिसका प्रयोग साहित्य, पत्राचार, दतरों, अदालतों आदि में हो वह भाषा और जो बोलचाल के लिए इस्तेमाल हो वह बोली। भाषा में शुद्ध–अशुद्ध का प्रश्न उठता है, बोली में सब चलता है आदि, आदि।''

वास्तव में इस तरह के सभी तर्क गलत हैं, समाज के लिए अत्यधिक हानिकारक हैं। **भाषाई दृष्टि से भाषा व बोली में कोई अन्तर नहीं। दोनों का व्याकरण होता है। दोनों नियमबद्ध हैं। किसको भाषा कहा जाएगा और किसको बोली यह एक सामाजिक प्रश्न है; राजनैतिक प्रश्न है। सत्ताधारी व पैसेवाले लोग**

अक्सर जो बोली बोलते हैं, वह भाषा कहलाने लगती है। उसी के व्याकरण व शब्दकोश लिखे जाते हैं। उसी में साहित्य लिखा जाता है। स्कूलों में शिक्षा का माध्यम बनकर वही बोली मानकीकृत भाषा बन बैठती है। उसी से मिलते–जुलते, बात–चीत करने के अन्य तरीके उस 'भाषा की बोलियाँ' कहलाने लगते हैं। भाषा व समाज के इस रिश्ते को समझना आवश्यक है।

शायद यह ठीक ही कहा गया है कि भाषा केवल एक सशस्त्र बोली है। मुख्य प्रश्न वास्तव में दृष्टिकोण का है। एक गरीब बच्चे की भाषा को एक मानकीकृत भाषा के मापदंड से निरन्तर नापना कहाँ तक जायज है?

एक ही मापदण्ड क्यों

व्याकरण के प्रश्न को लीजिए। हिन्दी का अपना व्याकरण है। लेकिन ब्रज, अवधी व मैथिली का भी अपना व्याकरण है, जो हिन्दी से कदाचित् अलग है। हिन्दी व्याकरण को मापदण्ड मानकर ब्रज के व्याकरण को क्यों देखा जाए? सदियों से लोग संस्कृत, ग्रीक, लैटिन आदि को आधार मानकर संसार की सभी भाषाओं में शब्दों के आठ कारकगत रूप तलाश करते रहे हैं। हिन्दी के हर व्याकरण में आपको संस्कृत की ही तरह आठ कारक रूप दिखाने का प्रयत्न रहेगा। लेकिन वास्तव में हिन्दी में तीन ही कारकों के अनुसार शब्द परिवर्तन होता है यथाः

	'लड़का' आदि	
	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	लड़का	लड़के
कर्म/अन्य	लड़के	लड़कों
संबोधन	हे लड़के!	हे लड़को!
	'किताब' आदि	
कर्ता	किताब	किताबें
कर्म/अन्य	किताब	किताबों
	संबोधन हे किताब!	हे किताबो!

हिन्दी की कारक व वचन संरचना समझने के लिए इससे अधिक आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकार हिन्दी व्याकरण से अन्य भाषाओं को नापना उचित नहीं है। **हिन्दी का** नन्द का नन्दन कदम्ब के पेड़ के नीचे धीरे–धीरे मुरली बजाता है।

ब्रज भाषा में

नन्द को नन्दन कदम के तरु तर धीरे धीरे मुरली बजावै।

हो जाएगा।

और मैथिल– कोकिल विद्यापति ने इसे यूँ कहा;

नन्दक नन्दन कदमक तरुतर धीरे धीरे मुरली बजाव।

मैथिली का नियम है कि 'नन्द' व 'नन्दन' में जो संबंध है वह 'क' के प्रयोग से दिखाया जाएगा; ब्रज में वहीं 'को' के व हिन्दी में वह 'का' के प्रयोग से। तोः

हिन्दी : *नन्द का नन्दन*
ब्रज : *नन्द को नन्दन*
मैथिली : *नन्दक नन्दन*

यह कहना कि ब्रज या मैथिली भाषा को सदैव 'नन्द का नन्दन' ही कहना चाहिए उचित न होगा। ऊपर के उदाहरणों से यह भी स्पष्ट हो गया होगा कि कब हिन्दी– ब्रज–मैथिली एक दूसरे से घुल मिल जाएँगी और कब अपना–अपना स्वतंत्र रूप दिखाएँगी, यह कहना भी कोई आसान काम नहीं।

आप मैथिली, सिंधी, कोंकणी, नेपाली या मणिपुरी को कब 'भाषा' का दर्जा देना चाहते हैं, यह एक राजनैतिक प्रश्न है, भाषाई नहीं।

सत्ता से जुड़े सवाल

व्याकरण को लेकर शुद्ध–अशुद्ध का प्रश्न भी बार–बार सामने आता है। विशेषकर अध्यापक स्वयं को शुद्ध व मानकीकृत भाषा का रखवाला मान लेते हैं। मैंने पहले भी कहा कि प्रश्न समझने व दृष्टिकोण का है। पहली बात– बच्चा जिस भाषा को लेकर स्कूल आता है वह पूर्णरूप से व्याकरण युक्त है। दूसरी बात– उसकी भाषा उसकी शिक्षा का माध्यम नहीं बन पाई यह एक राजनैतिक, सत्तागत प्रश्न है। तीसरी बात– मानकीकृत भाषा के सीखने के प्रयास में जो अशुद्धियाँ बच्चा करता है वे निराधार या बेतरतीब नहीं होतीं, उनकी अपनी संरचना होती है। चौथी बात– किसी अध्यापक के शुद्ध करने से बच्चे अपनी गलती एकदम सुधार नहीं लेते। गलतियाँ समय आने पर ही सुधरती हैं। पाँचवीं बात– कोई भी बच्चा, कोई भी भाषा (पहली, दूसरी या दसवीं) बिना 'गलतियों' किए नहीं सीखता।

साहित्य के प्रश्न को ही लीजिए। अक्सर कहा जाता है कि जिसमें शिष्ट साहित्य लिखा जाए वह भाषा, शेष उस भाषा की बोलियाँ। आम आदमी आज यही समझता है कि खड़ी बोली हिन्दी की मानकीकृत भाषा है, साहित्य उसी में लिखा जाता है; अखबारों दतरों आदि में यही प्रयोग होती है। ब्रज, अवधी, मैथिली आदि हिन्दी की बोलियाँ हैं।

कैसी विडम्बना है– अवधी, जिसमें तुलसी.त रामचरितमानस लिखा गया; ब्रज, जिसमें सूरदास ही नहीं अपितु अनेक हिन्दू व मुसलमान लेखकों ने महान् साहित्य की रचना की व मैथिली, जिसमें विद्यापति ने लिखा– सब आज हिन्दी की माताएँ न होकर उसकी बोलियाँ हो गईं। जब राजनीति व सत्ता का केन्द्र कन्नौज था, तो साहित्य की शिष्ट भाषा थी 'अपभ्रंश'। खड़ी बोली, ब्रज, अवधी आदि का जो भी रूप रहा हो, उसकी बोलियाँ कहलाईं। इसी तरह जब राजनैतिक केन्द्र ब्रज–क्षेत्र बना तो शिष्ट साहित्य की भाषा 'ब्रज' हो गई और दिल्ली, मेरठ की खड़ी बोली उसकी बोली कहलाई। शासन व सत्ता का केन्द्र दिल्ली, मेरठ हुआ तो ब्रज, अवधी आदि हिन्दी की बोलियाँ कहलाने लगीं। वही बात कि सवाल दरअसल भाषा व राजनीति के संबंध को समझने का है। उसको समझकर एक ऐसा सजग दृष्टिकोण बनाने का है जो वैज्ञानिक व संरचनात्मक हो। इसलिए साहित्य के आधार पर भाषा व बोली में अन्तर संभव नहीं।

कोई भी लिपि, कोई भी भाषा

लिपि के प्रश्न को लीजिए। अक्सर लोग ऐसे बात करते हैं जैसे भाषा व लिपि का कोई जन्मजात संबंध हो। **वास्तव में संसार की सभी भाषाएँ एक ही लिपि में लिखी जा सकती हैं। और एक ही भाषा को लिखने के लिए आप संसार की सभी लिपियों का प्रयोग कर सकते हैं।** उदाहरण के लिए हिन्दी व अंग्रेजी भाषा व देवनागरी व रोमन लिपि को लीजिए:

हिन्दी (देवनागरी)
मोहन खेल रहा है।
हिन्दी (रोमन):
Mohan khel rahaa hai.
अंग्रेजी (देवनागरी):
मोहन इज़ प्लेइंग।

भारत की अनेक भाषाएँ देवनागरी में लिखी जाती हैं व एक संस्कृत को लिखने के लिए भारत में ही अनेक लिपियों का प्रयोग होता है। ऐसा भी नहीं है कि लिपि होने से ही किसी भाषा में साहित्य की संभावना होती है। **ऋग्वेद जैसे साहित्य के लिए सदियों से किसी लिपि की आवश्यकता नहीं पड़ी। सारे भारत में फिर भी ऋग्वेद का वाचन एक ही तरह से होता है। गाँव–गाँव में रामचरितमानस नित गाया, सुना जाता है– लिपि की कोई आवश्यकता नहीं।** भाषा प्राचीन है; लिपि अभी कल का आविष्कार। लिपि होने न होने से भाषा–बोली में अंतर करना संभव नहीं। आप कुछ दोस्त मिलकर अपनी भाषा के लिए बड़ी आसानी से अपनी एक अलग लिपि बना सकते हैं। उसे कितना राजनैतिक समर्थन मिलेगा वह एक अलग बात है। संथाली आज कई लिपियों में लिखी जाती है– देवनागरी, रोमन, बंगला, उड़िया व ओल चिक्की। इनमें से कौन–सी लिपि मानकीकृत हो जाएगी यह एक राजनैतिक प्रश्न है। अभी द्वन्द्व जारी है।

विस्तृत क्षेत्र व व्यापक प्रयोग की खूब ठहरी। बार बार कहो कि हिन्दी का क्षेत्र विस्तृत है, प्रयोग व्यापक। जगह–जगह पोस्टर लगाओ। अखबारों में नित इश्तहार दो, रेडियो व टी.वी. पर प्रयोग करो और न जाने क्या–क्या बातों–बातों में हिन्दी को 'संवैधानिक राजभाषा' से 'राष्ट्रभाषा' का दर्जा दे दो। शिक्षा का माध्यम हिन्दी कर दो। और फिर कहो– लो भाई हिन्दी हुई भाषा व ब्रज, अवधी मैथिली, बुन्देली, भोजपुरी आदि उसकी बोलियाँ। इन 'बोलियों' को बोलनेवालों की अपार संख्या को हिन्दी में जमा कर दो और फिर कहो कि देखो, करोड़ों लोग हिन्दी बोलते हैं, कन्याकुमारी से लेकर हिमालय तक। थोड़ा धीरज रखकर ध्यान से सोचिए– हिन्दी आखिर कहाँ बोली जाती है? मानकीकृत हिन्दी का प्रयोग कहाँ–कहाँ होता है?

क्या आप या आपके दोस्त घर पर या आपस में हिन्दी बोलते हैं या आप भोजपुरी, अवधी, मैथिली, मगही, बुन्देली, ब्रज आदि–आदि बोलते हैं। मानकीकृत हिन्दी शायद मेरठ, इलाहाबाद व बनारस के कुछ हिस्सों में बोली जाती है। क्या चम्बा व हमीरपुर (हिमाचल), रोहतक व भिवानी (हरियाणा), जैसलमेर व सवाई माधोपुर (राजस्थान), छपरा व बलिया (बिहार), छिंदवाड़ा (मध्यप्रदेश) व रायपुर में मानकीकृत हिन्दी बोली जाती है?

मेरी हिन्दी में निम्न प्रयोग देखकर मेरे कुछ साथी अक्सर हँसते हैं, लेकिन जब उनके अपने बच्चे वही प्रयोग करते हैं तो लाचार से हो जाते हैं:

मैने बाज़ार जाना है।

मेरे को काम है।

मुझे एक कौली दे दो।

ज़रा सब्जी को छेड़ा दे देना।

जो पंजाबी कहकर मेरा मज़ाक उड़ाते हैं वे यह भूल जाते हैं कि राजनीति व सत्ता का केन्द्र अब दिल्ली है। हिन्दी भी यहीं की चलेगी। या फिर लाखों पंजाबी जो अपनी मातृभाषा हिन्दी बताते हैं या लाखों ऐसे लोग जिनकी मातृभाषा हिन्दी गिन ली जाती है– हिन्दी बोलनेवालों की संख्या में से कम कर देने चाहिए।

साफ है कि लिपि, व्याकरण, साहित्य, विस्तृत क्षेत्र व व्यापक प्रयोग आदि के आधार पर भाषा व बोली में अंतर करना संभव नहीं। फिर भी यह अंतर क्यों किया जाता है? और इतनी गहराई से किया जाता है कि हम 'हिन्दी' को भाषा व 'ब्रज' या 'बुन्देली' को बोली कहने में कुछ भी झिझक महसूस नहीं करते। हिन्दी को एक मानकीकृत भाषा का दर्जा देने के लिए व ब्रज अवधी आदि को उसकी बोलियाँ बनाने के लिए आपके चारों ओर निरन्तर प्रयास हो रहे हैं; उन्हें ज़रा गौर से समझने का प्रयास करें।

सबक–IV

बातें, पढ़ना, निजी संसार गढ़ना

पाठ 1. बातें करना : क्लास में बातें करना – अच्छा या बुरा – बातचीत से क्या–क्या हासिल होता है? – बातचीत की आदत को कैसे इस्तेमाल किया जाए – टीचर की भूमिका और जिम्मेदारी – कहानी बनाना और सुनाना – नाटक करना – मज़ेदार गतिविधियाँ।

पाठ 2. पढ़ना यानि एक सृजनात्मक अनुभव : पढ़ना असल में है क्या? – पढ़ना और पाठक – पढ़ना और पाठक का निजी संसार – अपरिचित शब्द – पढ़ाने की तरीके – गतिविधि का महत्व।

पाठ 3. सही मायनों में आखिर 'पढ़ना' है क्या? : पढ़ने के नमूने – सही मायने में पढ़ना – पढ़ाने के बोझिल तरीके – पढ़ने में रूकावटें – पढ़ना सिखाना।

कहते हैं :
पोथी पढ़ पढ़ जग मुआ
पंडित हुआ न कोय,
ढाई आखर प्रेम का
पढ़े सो पंडित होय।
कहते हैं :
सारी रामायण पढ़ गया,
पूछता है सीता किसका बाप है?
कहते है :

जब खुदा ने पहली बार हजरत मुहम्मद से बात की, उन्होंने जिब्रील के हाथ संदेश भेजा। संदेश था : 'पढ़'। हजरत मुहम्मद ने कहा कि लेकिन वे तो 'उम्मी' (निरक्षर) थे, फिर कैसे पढ़ सकते हैं? खुदा गलत नहीं हो सकते। सो जिब्रील ने तीन बार जोर देकर कहा 'पढ़'। फिर हजरत मुहम्मद ने 'पढ़ा', और बात आगे बढ़ी।

इन सब में पढ़ने का मतलब क्या है? नल, जल, जग, कर, सर, या फिर सड़क, कमल, मबर, रहट, वगैरह? जब टीचर यह सब 'पढ़ा' रहा होता है बच्चे बारे होकर आपस में बातें करने लगते हैं। खामोश। आपस में बातें करना जुर्म है, टाइम ज़ाया होता है, बच्चा नालायक रहता है, माँ–बाप परेशान होते हैं, डिसिप्लिन खराब होता है। कोहराम मच जाता है। हेडमास्टर आकर देखता है, समझता है कि टीचर ढीला है। कमाल है।

रटना या पढ़ना? रटने की परम्परा पुरानी है, मगर अब साबित हो गया है कि रटना समझकर पढ़ने का दुश्मन है। क्लास में बच्चों की आपसी बातचीत से पढ़ाई बेहतर सीखी जाती है, बनिस्बत किताबी रटंत से। बच्चों की बातचीत सुनना, फिर बारीक सवाल करके बातचीत आगे बढ़ाना, फिर बातों से बच्चों को कहानी सुनाना, फिर उन्हीं को कहानी बनाने पर शाबासी देना – इन सब से बच्चे बढ़िया पढ़ाई करना सीखते हैं।

हर बच्चे का, इंसान का, अपना निजी संसार होता है जिसमें उसके जीवन भर के अनुभवों, भावनाओं, कल्पनाओं, आइडियाओं, जानकारियों, आदि का बना एक महाकंप्यूटर होता है। और पढ़ते वक्त पढ़ जा रहे शब्दों/वाक्यों का इस निजी महाकंप्यूटर के साथ आमना–सामना होता है। एक जटिल गुत्थम–गुत्था होती है जिससे 'समझ' पैदा होती है – निजी और बाहरी संसार मिलकर एक हो जाते हैं। पढ़ना अनोखी चीज़ है। तोता पंडित नहीं होता, सिर्फ नकल करता है।

इस अनोखी चीज़ को सिखाया कैसे जाए? टीचर कैसे बच्चे का महाकंप्यूटर बाहरी दुनिया से जोड़ सकता है? पढ़ना सिखाने में क्या–क्या रूकावटें आ सकती हैं? गतिविधियों का इस्तेमाल कैसे किया जाना चाहिए?

इन सवालों के जवाब अब हमें हासिल हैं। 'पढ़ के' देखो।

बातें करना

हमारे स्कूलों में 'बात करना' प्रायः गलत समझा जाता है। यह माना जाता है कि यदि कोई बात कर रहा है तो ठीक से पढ़ाई नहीं कर रहा होगा। इसलिए जैसे ही अध्यापक बच्चों को बात करता हुआ देखता है, वह तुरंत उन्हें रोकता है। बात करने की छूट बच्चों को सिर्फ आधी छुट्टी में रहती है जब अध्यापक कोई खास काम नहीं कर रहा होता है।

बातचीत के बारे में नीची नज़र की वजह से हम शिक्षा में बातचीत के उपयोगों की अवहेलना करते आ रहे हैं। यह स्थिति सभी स्तरों पर है, पर प्रारंभिक स्तर पर यह सबसे ज़्यादा है। नर्सरी व प्राइमरी स्कूल के बच्चों के लिए बातचीत करना सीखने और सीखी हुई चीज को सुदृढ़ बनाने का एक बुनियादी माध्यम है। सच तो यह है कि ऐसे अध्यापक, जो बच्चों को बात नहीं करने देते, वे किताबों व अन्य सामग्री के लिए पैसे की कमी की शिकायत करने के हकदार नहीं है। वे पहले ही एक ऐसा बेशकीमती साधन बेकार जाने दे रहे हैं जिसके लिए कोई पैसा नहीं खर्च करना पड़ता। इसलिए ऐसा स्कूल जहां छोटे बच्चे बात करने को स्वतंत्र नहीं, बड़ा फिजूलखर्च स्कूल कहलाएगा।

यह सही है कि बच्चे तरह तरह के उद्देश्य लेकर बातचीत करते हैं और ये सभी उद्देश्य अध्यापक के लिए उपयोगी नहीं कहे जा सकते। उदाहरण के लिए बोरियत के मारे बात करने और दूसरे की निगाह से चूकी हुई चीज उसे दिखाने के लिए बात करने में फर्क है। दूसरी किस्म की बात बच्चे की सीखने की प्रक्रिया को बल देती है, जैसा कि दो बच्चों के इस संवाद में हो रहा है। ये बच्चे अध्यापिका की मेज के पास इंतजार में खड़े फुसफुसा रहे हैं और अध्यापिका रजिस्टर भरने में लगी हैः

पहला बच्चा : देखा, आज बहन जी अंगूठी पहने हैं!

दूसरा बच्चा : तुमने पहले नहीं देखी?

पहला बच्चा : नहीं... हां, हां, मैंने पहले देखी है।

दूसरा बच्चा : अरे, लेकिन यह अंगूठी दूसरी है।

पहला बच्चा : बहन जी ने नई अंगूठी खरीदी है। यह पहले वाली से छोटी है।

दूसरा बच्चा : नहीं, पतली है।

यदि आप इस छोटे–से संवाद का विश्लेषण करें तो सीखने की उन संभावनाओं को पहचान सकेंगे जो बातचीत के जरिए ही इन दो बच्चों को उपलब्ध हुई। यदि पहले बच्चे ने अध्यापिका की अंगूठी देखकर बात नहीं छेड़ी होती तो उसे यह **याद करने** का मौका न मिलता कि बहन जी पहले भी अंगूठी पहनती थी। यदि यह बातचीत न हुई होती तो दूसरे बच्चे को पुरानी और नई अंगूठी में **फर्क देखने** का अवसर न मिलता, न ही यह समझने का अवसर मिलता कि 'छोटी' और 'पतली' में क्या भिन्नता है। बातचीत के इन उपयोगों के प्रति सचेत होने के लिए जरूरी है कि हम बच्चों की बात सुनने की आदत डालें। यह कहना आसान है, पर इसे करना इसलिए मुश्किल है क्योंकि बड़े यह मानकर चलते हैं कि उनका काम बच्चों को हुक्म देना है और बच्चों का काम हुक्म सुनना है। बच्चों की बातचीत के अच्छे श्रोता बनने के रास्ते में यह मान्यता अड़चन पैदा करती है। अच्छे श्रोता से मेरा आशय एक ऐसे व्यक्ति से है जो बात के सूक्ष्म उद्देश्य और बातचीत के कारण पैदा हुई सीखने की संभावनाओं को धैर्यपूर्वक पहचान सके।

किसी भी आम स्थिति में बातचीत में मस्त बच्चे ये दस क्रियाएं करते नजर आ सकते हैं:

1. जिस चीज पर अभी तक ध्यान नहीं दिया, उस पर ध्यान देना,
2. उसे मोटे तौर पर या बारीकी से देखना,
3. अपने अपने निरीक्षणों का आदान–प्रदान करना,
4. निरीक्षणों को तरतीब से लगाना,
5. दूसरे के निरीक्षण को चुनौती देना,
6. निरीक्षण के आधार पर तर्क करना,
7. भविष्यवाणी करना,
8. पिछले किसी अनुभव को याद करना,
9. दूसरे की भावनाओं या उसके अनुभवों की कल्पना करना,
10. किसी काल्पनिक स्थिति में अपनी भावनाओं की कल्पना करना।

अगर आप बच्चों की बातचीत को ध्यानपूर्वक सुनने की आदत डाल लें तो आप जल्दी ही इन दस और कई अन्य संभावनाओं में फर्क करने में समर्थ हो जाएंगे। आप यह भी समझने लगेंगे कि ये संभावनाएं किस तरह विश्लेषण और तर्क करने की क्षमताओं के विकास से जुड़ी है। इस अध्याय में आगे चलकर दी गई गतिविधियाँ आपको इन क्षमताओं का विकास करने वाली परिस्थितियाँ बनाने में मदद देंगी।

बच्चों की बातचीत को शिक्षण सामग्री के तौर पर इस्तेमाल करने के इच्छुक अध्यापक को पहले **बातचीत के लिए अनुकूल वातावरण पैदा करना** होगा। अपने कामकाज और टीका–टिप्पणियों के जरिए अध्यापक को बच्चों में यह विश्वास पैदा करना होगा कि वे बात करने के लिए स्वतंत्र है। इसका आशय अराजकता को न्यौता देना नहीं है। उलटे, जरूरत इस बात की है कि:

- हर बच्चा यह महसूस करे कि जब वह कुछ कहेगा तो उसे सुना जाएगा और
- सभी बच्चे यह महसूस करें कि अध्यापक को उनका बोलना अच्छा लगता है।

कक्षा में बच्चों को बातचीत के लिए प्रोत्साहित करने वाले मौकों को हम पांच किस्मों में रख सकते हैं:

1. अपने बारे में बात करने के अवसर देना

सब बच्चे अपनी जिंदगी के बारे में– उन घटनाओं के बारे में जो हो चुकी हैं और उनके बारे में भी जो अभी नहीं हुई हैं– बात करने को उत्सुक रहते हैं बशर्ते कि उन्हें इसके लिए प्रोत्साहन और मौका दिया जाए। कई अध्यापक बच्चों की व्यक्तिगत जिंदगी और स्कूल में उनकी पढ़ाई के बीच कोई संबंध नहीं देख पाते। वे इस बात पर जोर देते हैं कि कक्षा में सिर्फ पाठ्यपुस्तकों में दी गई सामग्री पर ही चर्चा हो। अध्यापक की इस मान्यता के कारण कई बच्चे कक्षा में किसी भी किस्म की हिस्सेदारी नहीं निभा पाते। अध्यापक जिन चीजों पर चर्चा करते हैं, वे बच्चों को आकर्षित नहीं कर पातीं, और बच्चों के व्यक्तिगत अनुभव (जैसे किसी रिश्तेदार का आना, आंधी और बारिश में घर की हालत, या बीमार पड़ना) अध्यापक को रास नहीं आते।

ऐसी स्थिति बच्चों को पाठ्यक्रम से एकदम काट देती है। अध्यापक चाहें तो उनके इस अलगाव को रोक सकते हैं। इसके लिए उन्हें बच्चों की घरेलू जिंदगी और उनके पिछले अनुभवों की चर्चा के अवसर पैदा करने होंगे। यदि बच्चों को इन चीजों पर बात करने के लिए प्रोत्साहित किया जाए तो धीरे–धीरे वे कई तरह के अनुभवों से जुड़े भावों और विचारों को प्रकट करने में समर्थ हो जाएंगे। साथ ही वे स्कूल के पाठ्यक्रम के विभिन्न विषयों (जैसे विज्ञान, भूगोल, नागरिक शास्त्र) में शामिल ज्ञान से एक गहरे, व्यक्तिगत स्तर पर संबंध बना सकेंगे।

2. स्कूली अनुभवों पर बात करने के अवसर देना

स्कूल का परिवेश खोजबीन और निरीक्षण का एक शानदार माध्यम है। स्कूल कहीं भी हो उसके इर्दगिर्द ऐसी कई छोटी–छोटी चीजें होती हैं जिनसे विस्तृत जांच और बहस की सामग्री मिलती है। दुकानें, पेड़, पत्थर, मकान, सड़क, बाड़, मिट्टी, फाटक, घोंसले, छत्ते, फूल, तितलियाँ, खुली नाली, नल और तमाम चीजें स्कूल के पड़ोस में ढूँढ़ी जा सकती हैं, और बारीक अवलोकन, अवलोकनों के आदान–प्रदान, सच के निर्धारण और दूसरी चीजों से उसके संबंध की खोज के लिए काम में लाई जा सकती हैं।

छोटे बच्चों के साथ यह सब करने के लिए बातचीत एक उम्दा माध्यम है। जैसा कि आगे दी गई गतिविधियों से स्पष्ट होगा, यह कतई जरूरी नहीं कि अध्यापक बहुत सारे बच्चों को औपचारिक रूप से भ्रमण के लिए ले जाए। दरअसल तीन–चार बच्चों को किसी चीज की रपट लिखने के लिए भेजना उपयोगी हो सकता है। यह जरूर है कि भ्रमण में खूब मजा आता है, अतः जो अध्यापक बच्चों को स्कूल से दूर किसी जगह पर ले जाने का खर्च उठा सकते हों, उन्हें ऐसा अवश्य करना चाहिए। **पर जो अध्यापक बच्चों को किसी संग्रहालय या डाकखाने तक नहीं ले जा सकते, उन्हें इस बात का बहाना नहीं बनाना चाहिए कि वे बच्चों को स्कूल के करीब एक टूटी पुलिया या स्कूल के पिछवाड़े गंदे पानी की निकासी तक भी नहीं ले जा सकते। महत्वपूर्ण चीज यह है कि सभी बच्चों को भ्रमण में देखी गई सब चीजों पर बात करने का पर्याप्त अवसर मिले।**

3. तस्वीरों पर चर्चा करना

ऐसी बातचीत जो सर्जना और विश्लेषण को प्रोत्साहित करती हो, तस्वीरों के जरिए अच्छी तरह की जा सकती है। तस्वीरें कैसी भी हो सकती हैं– अखबारों और पत्रिकाओं के विज्ञापनों या खबरों के साथ छपे चित्र, कैलेंडरों, टिकटों, लेबलों और पोस्टरों पर छपे चित्र। ये सभी काम में लाए जा सकते हैं। इस प्रकार तस्वीरों के स्रोत बहुत व्यापक हैं और किसी छोटे गांव में भी ढूँढे जा सकते हैं। अध्यापक साल दर साल अपने इस्तेमाल के लिए तस्वीरों का एक संग्रह बना सकता है।

इन स्रोतों के अलावा स्कूलों को थोड़ा अतिरिक्त पैसा खर्च करके तस्वीरों वाला बाल–साहित्य खरीदने की कोशिश करनी चाहिए। सुरुचिपूर्वक छापा गया बाल साहित्य भारत की सभी भाषाओं में उपलब्ध है लेकिन अक्सर देखा गया है कि अध्यापकों का इस साहित्य से कोई वास्ता नहीं होता। स्कूल में यदि कुछ बाल साहित्य है भी तो उसका दैनिक इस्तेमाल इस डर से नहीं किया जाता कि किताबें खराब हो जाएंगी। बाल साहित्य का अपने शिक्षण में प्रयोग करने के इच्छुक अध्यापकों को चाहिए कि किताबों की देखरेख के काम में बच्चों को शामिल करें और उन्हें इसकी ट्रेनिंग दें कि किताब को कैसे उठाना–रखना है, कोने मोड़े या थूक लगाए बिना पन्ना कैसे पलटना है। ऐसी छोटी बातें ध्यानपूर्वक ट्रेनिंग देकर सिखाई जा सकती है। ये छोटी–छोटी चीजें आगे जाकर बच्चों में किताबों के प्रति आदर पैदा करेंगी और उन्हें सीखने का साधन मानने की प्रवृत्ति विकसित करेंगी। ये चीजें बच्चे में चीजों को सहेज कर रखने की प्रवृत्ति का विकास करने में भी मदद देंगी।

बच्चों के बीच बैठकर बगैर किसी तैयारी के, बिलकुल अनौपचारिक ढंग से किसी तस्वीर के बारे में बातचीत करना भी उपयोगी सिद्ध हो सकता है। लेकिन यदि हम देखने के विभिन्न पहलुओं के बारे में सचेत हो जाएं तो बच्चों की भाषा के विकास की दृष्टि से हम ऐसी बातचीत को और भी अधिक उपयोगी बना सकते हैं। अध्यापक का हर प्रश्न बच्चों की प्रतिक्रिया को एक निश्चित ढंग से प्रभावित करता है। सवालों के जरिए बच्चों की निगाह और प्रतिक्रिया को विस्तार देने की क्षमता हम किस प्रकार हासिल कर सकते हैं? प्रतिक्रिया के स्तर, जिनकी तरफ बच्चों का ध्यान हम प्रश्नों की मदद से मोड़ सकते हैं, ये हैं :

(i) **ढूंढ़ना :** इस स्तर पर हम बच्चों से केवल इतना कहेंगे कि वे चित्र में दिखाई गई चीजों को ढूंढ़ें। हम इस तरह के प्रश्न पूछ सकते हैं: 'इस चित्र में क्या है?' 'क्या इस चित्र में एक चूहा है?' 'साइकिल पर कौन बैठा है?' 'लड़का कितना बड़ा है?'

(ii) **तर्क करना :** प्रतिक्रिया के इस स्तर का संबंध कारण बताने की क्षमता से है। चित्र में दिखाई गई किसी बात का जो भी कारण बच्चा बताए, अध्यापक को उसे स्वीकार करना चाहिए। अध्यापक स्वयं भी कारण बता सकता है– **पर केवल एक संभव उत्तर के तौर पर, अंतिम उत्तर के तौर पर नहीं।** प्रश्नों के उदाहरण : 'नन्ही लड़की क्यों रो रही है?' 'मोटर साइकिल का पिछला हिस्सा हमें दिखाई क्यों नहीं दे रहा?' 'चूहा क्यों छिपा है?'

(iii) **आरोपण :** इस स्तर पर हम बच्चे से खुद को चित्र में आरोपित करने को कहते हैं। अतः इस स्तर पर प्रश्न पूछने का उद्देश्य बच्चे को एक कल्पित स्थिति में स्वयं को डालने, कौन क्या कहेगा यह कल्पना करने, और उन्हें कैसा लगेगा यह सोचने को प्रोत्साहित करना है। प्रश्नों के उदाहरण : 'यदि तुम इस पेड़ पर बैठे होते तो तुम्हें कैसा–क्या दिखाई देता?' 'छोटी लड़की साइकिल पर बैठे आदमी से क्या कह रही है?' 'चूहा क्या सोच रहा है?'

(iv) **भविष्यवाणी :** इस स्तर का संबंध चित्र में दिखाई गई स्थिति के बाद की घटनाओं का अनुमान करने से है। बच्चों को यह सोचने के लिए प्रेरित करना है कि अब आगे क्या होगा। प्रश्नों के उदाहरणः 'यह आदमी अब कहां जाएगा?' 'नन्हीं लड़की घर पर क्या करेगी?' 'वह घर कैसे पहुंचेगी?'

(v) **संबंध बैठाना :** अब हम ऐसे प्रश्न पूछेंगे जो बच्चों को चित्र में दिखाई गई स्थिति से मिलती–जुलती कोई चीज अपनी जिंदगी में ढूंढ़ने को प्रेरित करें। प्रश्नों के उदाहरण : 'तुम कभी मोटर–साइकिल पर बैठे हो?' 'बैठकर कैसा लगता है?' 'क्या तुम कभी किसी अजनबी के साथ रहे हो?' 'उस दिन फिर क्या हुआ?'

4. कहानियाँ सुनना और उन पर चर्चा करना

कोई कहानी सुनते वक्त हमारा ध्यान उसमें चित्रित घटनाओं और चरित्रों की तरफ भागता है। कई कहानियों का संबंध हमारी देखी हुई घटनाओं से नहीं होता, पर हम उनकी कल्पना कर लेते हैं। इसी तरह भले ही हमने कहानी के चरित्रों जैसे लोग कभी न देखे हों, फिर भी हम उनकी तस्वीर मन में बना लेते हैं। इस प्रकार अपरिचित घटनाएं और लोग दुनिया के उस नक्शे में शामिल हो जाते हैं जो हमने अपने दिमाग में बना रखा है। बाद में इन घटनाओं की हम ठीक उसी तरह चर्चा कर सकते हैं जिस तरह अपनी जिंदगी में सचमुच घटी घटनाओं की चर्चा करते हैं। **फिल्मों, किताबों और अखबारों में छपी अधिकांश खबरों की चर्चा लोग इसी तरीके से करते हैं।** कहानी चाहे किसी असली घटना के बारे में हो या किसी के द्वारा कल्पित घटना के बारे में, वह एक नई सामग्री हमारे ध्यान में लाती है और हम इस सामग्री को बगैर ज्यादा कोशिश या परेशानी के अपने मन में जगह दे देते हैं।

कहानी सुनते समय हम घटनाक्रम और चरित्रों के व्यवहार की कल्पना करते चलते हैं। दूसरी तरफ जब हम स्वयं कोई कहानी सुनाते हैं तो उसमें शामिल अनुभवों को व्यवस्थित करते चलते हैं। ये अनुभव वास्तविक हो तो उन्हें ज्यों का त्यों रखने की कुछ चिंता अवश्य होती है। पर ऐसा कम ही होता हैं कि कोई अपने अनुभव को एकदम हू–ब–हू सुना सके। छोटी–मोटी फेरबदल हो ही जाती है क्योंकि कुछ बातें हमें दूसरी बातों से ज्यादा महत्वपूर्ण लगती है। यदि हमारी कहानी वास्तविक अनुभवों के बारे में न हो तो हम उसे कुछ ज्यादा आजादी से प्रस्तुत करते हैं। शायद तब हमारा मुख्य उद्देश्य अपने श्रोता की दिलचस्पी जगाना होता है। कहानी चाहे असली हो या काल्पनिक, उसमें दो चीजें अवश्य रहती है :

1. जीवन की घटनाओं, चरित्रों आदि का पुनर्योजन, और
2. सुनने वाले का ध्यानाकर्षण।

ये दोनों बातें भाषा के कुशल इस्तेमाल पर निर्भर हैं। दरअसल हरेक कहानी हमसे भाषा की चतुरता की मांग करती है और कहानियां सुनने का अनुभव हमें भाषा के चतुर कौशल के नमूने देता है। इसी कारण कहानी कहना नन्हें बच्चों के अध्यापक के लिए एक बढ़िया साधन है।

कुछ अध्यापक कहानी सुनाने को एक कला मानते हैं। वे सोचते हैं कि इनेगिने लोग ही अच्छी तरह कहानियां सुना सकते हैं। यह एक दुर्भाग्यपूर्ण मान्यता है क्योंकि इसकी वजह से बच्चे कहानियां सुनने के आनंद से वंचित रह जाते हैं। यदि कोई कहानी अच्छी है तो बच्चे उसे सुनकर जरूर खुश होंगे। कहने का कौशल तो समय और अभ्यास से ही आएगा। असली बात है अच्छी कहानियां चुनना और उन्हें बार–बार सुनाना। **कोई कहानी सिर्फ एक बार सुनाने के लिए नहीं होती और अच्छी कहानियां तो ढेरों बार सुनाने लायक होती हैं।**

कहानी सुनाकर उस पर चर्चा करना जरा टेढ़ा मामला है। अनेक अध्यापक जो कहानी से मिलने वाली सीख की चर्चा करने को उत्सुक रहते हैं। कहानी समाप्त होते ही वे पूछ उठते हैं : 'इस कहानी से तुम्हें क्या शिक्षा मिली?' एक सार्थक संवाद की शुरूआत के लिए यह प्रश्न बिलकुल बेकार है। कहानी के नैतिक मूल्य का (यदि कहानी में ऐसा कोई मूल्य है) बच्चों के लिए कोई विशेष आकर्षण नहीं होता। उनके लिए तो कहानी का ही महत्व होता है। **नैतिक मूल्य के बारे में पूछने वाला अध्यापक अपनी ही मेहनत को गुड़गोबर कर देता है। इतनी ही फिजूल उन अध्यापकों की मांग होती है जो कहानी ज्यों की त्यों याद करने पर जोर देते हैं।** वे चाहते हैं कि बच्चे पूरी कहानी हू–ब–हू सुना दें। वे यह मांग इतने नियमित रूप से करते हैं कि बच्चे कहानी का आनंद लेना छोड़ अपने ऊपर लादी जाने वाली मांग की चिंता में डूब जाते हैं।

कहानी सुनाते वक्त श्रोता के लिए महत्वपूर्ण चीज कहानी से अपना संबंध स्थापित करना है, और हमें यह समझना चाहिए कि हर बच्चा यह संबंध एक अलग ढंग से स्थापित करता है। उसका व्यक्तित्व और उसके पिछले अनुभव कहानी के प्रति बच्चे की प्रतिक्रिया को प्रभावित करते हैं। हो सकता है कि बच्चा किसी चरित्र की कल्पना कहानी में दिए विवरण से एकदम अलग रूप में करे। संभव है कि उसे कोई घटना भावनात्मक रूप से बाकी सब घटनाओं से ज्यादा सार्थक लगे। कहानी और उसके चरित्रों की ऐसी पुनर्रचना करना, जो खुद को सार्थक लगे, हर बच्चे का मौलिक अधिकार है। उदाहरण के लिए, हो सकता है कि बच्चा पृष्ठ छह पर दी गई कहानी में अध्यापक की कल्पना एक महिला के रूप में करे। ऐसा अध्यापक, जो चरित्रों की कल्पना किसी भी ढंग से करने के बच्चे के अधिकार को स्वीकार करता है, बच्चों को इस बात की पूरी आजादी और अवसर देगा कि वे कहानी के बारे में किसी भी तरह से बात करें– उसे तोड़े–मोरोड़े उसे बढ़ाएँ,

उसके चरित्रों की अदला–बदली करें या स्वयं कहानियां गढ़े। ऐसे अवसर कहानी कहने के फौरन बाद देना जरूरी नहीं है। प्रायः ठीक यही रहता है कि कहानी सुनाने के बाद कोई और एकदम अलग गतिविधि शुरू की जाए।

कहानी कोष

कई शिक्षक बच्चों को सुनाने लायक कहानियों की कमी महसूस करते हैं। कभी–कभी वे पत्रिकाओं या अखबारों में छपी छोटी–मोटी कहानीनुमा रचनाएं सुनाकर संतोष कर लेते हैं। पचास–साठ अच्छी यानी सुनाने लायक कहानियों का व्यक्तिगत कोष बनाने के लिए कहानियों का चयन इन स्रोतों से किया जा सकता हैः

- **पंचतंत्र, कथासरित्सागर, जातक, महाभारत, बेताल पच्चीसी, सिंहासन बत्तीसी और पौराणिक कहानियां;**
- **देश और दुनिया के विभिन्न हिस्सों की लोककथाओं के संग्रह;**
- **अपने इलाके की लोककथाएं–इन्हें इकट्ठा करने के लिए बड़े–बूढ़े लोगों की मदद ली जा सकती है;**
- **ऐतिहासिक कहानियां;**
- **कहानी बनाने लायक पुरानी स्थानीय घटनाएं।**

5. अभिनय करना

कहानी और नाटक में संबंध है, इसलिए अध्यापक आसानी से एक को दूसरे से जोड़ सकता है। कहानी को ध्यानपूर्वक सुन रहा बच्चा उसमें चित्रित भूमिकाओं को चुपचाप ग्रहण कर रहा होता है। यही चीज नाटक में होती है, पर अधिक मुखर रूप में। नाटक में बच्चों को विभिन्न भूमिकाओं को बातचीत, हाव–भाव और शरीर के जरिए प्रस्तुत करने का मौका मिलता है। कहानी के श्रोता की तरह नाटक में भाग लेते वक्त भी उन्हें स्वयं को किसी दूसरे पर आरोपित करना होता है और उसकी निगाह से चीजों को देखना होता है। फर्क यही है कि नाटक में यह ज्यादा सक्रियता पूर्वक करना होता है, कल्पित स्थिति और चरित्रों के अनुभव शब्द और हाव–भाव ढूंढ़ने पड़ते हैं। इस सबमें तुरतबुद्धि से अभिनय करने के लिए सुनहरा मौका रहता है जो नाटक को बातचीत के विस्तार के लिए इस्तेमाल करने का मुख्य आधार है।

दुर्भाग्यवश स्कूलों में होने वाली ज्यादातर गतिविधियों में तुरतबुद्धि के लिए जगह नहीं होती। बच्चों को निश्चित भूमिकाएँ दे दी जाती हैं और उन्हें संवाद याद करने को कह दिया जाता है। नाटक का उपयोग किसी त्यौहार या अतिथि के आगमन जैसे खास अवसरों के लिए किया जाता है। नाटक के इस उपयोग के भी कुछ न कुछ फायदे तो होंगे ही, पर इससे बच्चों की भाषा के विकास में कोई खास मदद नहीं मिलती। थोड़े से बच्चे ही नाटक में हिस्सा लेते हैं, बाकी सिर्फ देखते हैं। तैयारी और अंतिम प्रदर्शन के दौरान लगातार सबको यह डर बना रहता है कि कोई गलती न हो जाए। ऐसे नाटकों में आजादी और आनंद की गुंजाइश नहीं रह जाती। एक भाषायी गतिविधि के रूप में नाटक के इस्तेमाल के लिए ये दो चीजेंः आजादी और आनंद बहुत जरूरी हैं।

जो अध्यापक नाटक का भाषा शिक्षण में उपयोग करना चाहते हैं, उन्हें याद रखना चाहिए कि नाटक बच्चों के लिए कोई विशेष या निराली चीज नहीं है– वह तो उनकी जिंदगी का भाग है। नकल उतारना,

किसी चीज को बढ़ा–चढ़ाकर बताना, स्वांग करना जैसी नाटकीय युक्तियों का प्रयोग बच्चे करते ही रहते हैं। बच्चों के अपने पारंपरिक खेलों में भी नाटक का एक विशेष स्थान रहता है। ऐसा बच्चा मुश्किल से मिलेगा जिसमें नाटकीय कौशल न हो। पर अनेक बच्चे अपने नाटकीय कौशल का कक्षा में प्रयोग करने को उत्सुक नहीं होते। उन्हें लगता है कि कक्षा इसके लिए ठीक जगह नहीं है। ऐसा माहौल बनाने की कोई एक तकनीक नहीं है। आप इसके लिए धीरे–धीरे प्रयास कर सकते हैं। और इसके लिए जरूरी है कि आप बच्चों को स्वाभाविक रूप से यथार्थ जिंदगी के बारे में बात करने को प्रोत्साहित करें, बच्चों की बातचीत को ध्यान लगाकर सुनें और मधुर व्यवहार करें।

दूसरी खास बात यह है कि प्रदर्शन के लिए नाटक करने और नाटक के रोजमर्रा के इस्तेमाल में अंतर है। हमारा विषय रोजमर्रा का नाटक है और उसके लिए पहले से तैयार पटकथा, संवाद, पोशाकें, रिहर्सल और रोशनी की व्यवस्था बेमानी है। अभिनय के लिए किसी भी घटना की कहानी पर्याप्त है। **नाटकीय कहानियां के सबसे अच्छे उदाहरण आपको प्रायः बच्चों की बातों से मिल सकते हैं, बशर्तें कि बच्चे जो रोज देखते, महसूस करते हैं उसके बारे में बात करने की स्वतंत्रता वे अनुभव करते हों।**

बस कैसे रुकी, कुछ लोग उतरे, कुछ चढ़े, बस फिर से कैसे चली और इस समय उसके अंदर क्या हो रहा है– यह कक्षा के पूरे 40 बच्चों के अभिनय करने लायक बढ़िया कथानक है। दूसरी तरफ अध्यापक द्वारा या पढ़ी गई कहानियां भी नाटक के लिए जोरदार सामग्री दे सकती हैं। यदि कहानी में थोड़े से चरित्र हैं तो पांच पांच बच्चों की टोलियाँ उस पर अलग अलग काम कर सकती हैं या उन्हें अलग अलग कहानियां दे दी जाएं। **टोलियों में प्रतियोगिता करवाने की कोई तुक नहीं है।** इससे अनावश्यक बेचैनी और अध्यापक पर निर्भरता पैदा होगी।

यदि आप छोटी उम्र से ही स्वतः स्फूर्त नाटक का इस्तेमाल शुरू कर देते हैं तो वह पढ़ने के कौशल के विकास की नींव का काम करेगा। **नाटक करने तथा पढ़ने में सीधा रिश्ता न हो, पर रिश्ता है।** नाटक शब्दों और शरीर की भंगिमाओं (हावभाव, झुकना आदि) को सचेत होकर प्रतीकों की तरह उपयोग करने का एक विशिष्ट मौका देता है कहानी सुनने की तरह अभिनय करते समय भी बच्चे दुनिया की दिनचर्या में प्रतीक रूप से हिस्सा लेते हैं– यानी वे घटनाओं में सीधे उपस्थित हुए बगैर उनमें हिस्सा लेते हैं। यही क्षमता एक अच्छे पाठक में होती है। जो चीजें उसकी आंखों के आगे मौजूद नहीं हैं, उन्हें वह 'देखता' चलता है और उस पर इस तरह प्रतिक्रिया करता चलता है मानो वे उसके सामने मौजूद हों।

अध्यापक की प्रतिक्रिया

स्कूल में दाखिल होने तक बच्चे अपनी मातृभाषा की बुनियादी संरचनाओं पर अच्छा–खासा अधिकार पा चुके होते हैं। उन्हें न केवल तमाम तरह के कार्यों के लिए भाषा का प्रयोग करना होता है, बल्कि वे यह भी खूब समझ चुके होते हैं कि भिन्न भिन्न संदर्भों और श्रोताओं के हिसाब से भाषा को संभालना करना कितना जरूरी है। पांच वर्ष का बच्चा संदेशों को कार्य में बदलना (जैसे, कहने पर पानी का गिलास लाना और उसे वापस सही जगह रखना) जानता है। वह लोगों की बातचीत की सहायता से उनके चरित्र और आपसी रिश्तों का अनुमान भी कर लेता है। छोटे बच्चे को ये क्षमताएं किसी के सिखाने से नहीं, रोजाना के जीवन से प्राप्त होती हैं। बच्चे के आसपास जो कुछ हो रहा होता है, वह उसे अपनी सोच–विचार की छलनी से छानकर अपने भाषा–संयंत्र का हिस्सा बना लेता है।

हमें ये क्षमताएं स्वयं हासिल करने का श्रेय बच्चे को देना चाहिए। हम बच्चे को कोई बिल्कुल नई चीज नहीं दे सकते। केवल ऐसी परिस्थितियां बना सकते हैं जिनमें बच्चा अपनी मौजूदा क्षमताओं का और

विकास कर सके। बातचीत के संदर्भ में ऐसी परिस्थितियाँ रचने की मुख्य शर्त है बच्चे की बात पर अपनी प्रतिक्रिया के प्रति सचेत होना। हर बार बच्चे की बात सुनते समय हमें चाहिए किः

1. **उसे पूरी बात कहने दें,**
2. **वह जो कह रहा है उसमें रुचि लें,**
3. **मतभेद व्यक्त करने की इच्छा हो तो उस पर काबू करें,**
4. **बच्चे ने जो कहा है उस पर अपनी, प्रतिक्रिया विस्तार से यानी, अधिक शब्दों में और ज्यादा समृद्ध वाक्य रचना का प्रयोग करते हुए दें। इतना कहना काफी नहीं है कि 'अच्छा' या यह अच्छा है। उदाहरण के लिए यदि बच्चे ने कहा, गिलहरी पेड़ पर तो अध्यापक की प्रतिक्रिया हो सकती है– उसने गिलहरी को पेड़ पर चढ़ते देखा?**
5. **घटना और जानकारी मांगे या बच्चे का ध्यान विषय के किसी नए पहलू की तरफ खींचे।**

बच्चों से इस तरह बात करने के लिए काफी अभ्यास जरूरी है। सबसे जरूरी यह महसूस करना है कि बातचीत बच्चे के लिए सीखने का एक महत्वपूर्ण साधन है और उसका बच्चे के सामाजिक व्यवहार और व्यक्तित्व पर गहरा असर पड़ता है।

अक्सर चुप रहने वाले बच्चे अध्यापक के लिए दिक्कत पेश कर सकते हैं। संभव है कि आपकी कक्षा के कुछ बच्चे बात करने की अपेक्षा खेलने या चीजें बनाने में, ज्यादा दिलचस्पी दिखाएं। लेकिन यदि कोई बच्चा अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने, सवाल पूछने और दूसरों को यह बताने के लिए कि वह क्या कर रहा है, बिलकुल उत्सुक न हो तो ऐसे बच्चे की ओर कुछ विशेष ध्यान देना बुद्धिमानी का काम होगा। मुमकिन है कि उसे घर पर नाना प्रकार से हतोत्साहित किया गया हो या उस पर दबाव डाले गए हों। चुप्पी उसके व्यक्तित्व, विशेषतया दूसरों के संदर्भ में उसकी आत्मछवि को पहुंची चोट की एक अभिव्यक्ति हो सकती हैं। घर के दमघोंटू माहौल का असर काफी गहरा होता हैं पर उसे दूर करना असंभव नहीं है। एक संवेदनशील अध्यापक, जो समस्या की जड़ को समझता हो, दुनिया के साथ बच्चे के संबंधों में चमत्कारपूर्ण परिवर्तन ला सकता है।

कुछ गतिविधियाँ

यहाँ केवल थोड़ी सी गतिवधियां दी गई हैं जिन्हें कोई भी अध्यापक एक साधारण कक्षा में आयोजित कर सकता है। हर बार किसी गतिविधि में थोड़ी सी फेरबदल करने से बच्चे पिछली बार के मुकाबले और ज्यादा उत्साह महसूस करेंगे। इसलिए इन गतिविधियों को बार–बार कीजिए और हर बार इनमें कुछ नया जोड़िए। आप जो चीजें जोड़े उनका ब्यौरा रखिए ताकि आप किसी नए सहयोगी को अपने प्रयोगों की जानकारी दे सकें। यहां दी गई लगभग हरेक गतिविधि दर्जनों नई संभावनाओं की शुरुआत बन सकती है।

एक

क्या देखा?

पहला चरण : एक बच्चे से कहिए कि वह बाहर जाए, देखे कि बाहर क्या–क्या हो रहा है, और लौटकर दूसरों को बताए। उदाहरण के लिए वह बताएगा कि उसने एक ठेला, दो दुकानें और एक साइकिल देखी।

दुसरा चरण : अब बाकी बच्चे उससे सवाल पूछेंगे। बच्चे गोल घेरे में बैठें और एक बच्चा एक ही सवाल पूछे। उदाहरण के लिए एक बच्चा पूछ सकता है, साइकिल के हैंडिल से क्या लटका था?' जवाब है, एक टोकरी लटकी थी। अगला सवाल टोकरी का रंग कैसा था?

तीसरा चरण : जब सारे बच्चे एक एक सवाल पूछ लें तो अध्यापक उस बच्चे से पूछे जो बाहर गया था कि उसे कौन सा प्रश्न सबसे अच्छा लगा। मान लीजिए कि उसका जवाब हो– 'शशि का सवाल सबसे अच्छा था'– तो अगला सवाल पूछिएः वह सवाल क्या था?

चौथा सवाल : अब खेल के अगले दौर की शुरूआत शशि से होगी। उससे कोई ऐसी चीज देखने को कहिए जो पहले बच्चे ने नहीं देखी थीं शशि के वापस आने पर बच्चों से कहें कि वे नए सवाल पूछे ऐसे सवाल जो पहले किसी ने नहीं पूछे।

दो

खोजियों की खबर

पांच या छह बच्चों की टोली को स्कूल की इमारत के आसपास या भीतर किसी निश्चित चीज या जगह का अध्ययन करने के लिए भेजिए जैसे वे पेड़ों के एक झुंड, चाय की गुमटी, टूटे हुए पुल या घोंसले का मुआयना करने जा सकते हैं। उनसे कहिए कि वे सावधानी से उस चीज की खोजबीन करें और अपने निरीक्षणों की आपस में चर्चा करें।

जिस समय खोजी दल बाहर गया हो, बाकी बच्चों को उस चीज के बारे में विस्तार से बताएं। जैसे यदि खोजी–दल चाय की गुमटी का अध्ययन करने गया है तो बच्चों को बताएं कि वहां क्या क्या चीजें उपलब्ध हैं (बच्चों से पूछे भी), उसे कौन चलाता है, वहां उपलब्ध चीजें, कहां कहां से आती हैं, आदि।

वापस आने पर खोजी दल कक्षा के सवालों का सामना करे। प्रश्न पूछने में अध्यापक की बारी भी आनी चाहिए।

अगली बार किन्हीं और बच्चों का खोजी–दल बनाइए।

तीन

बूझो, मैंने क्या देखा?

एक बच्चा बाहर जाए, दरवाजे पर या कक्षा से कुछ दूर खड़े होकर आसपास दिखाई दे रही सैकड़ों चीजों में से कोई एक चुन ले। वह चीज कुछ भी हो सकती है– पेड़, पत्ता, गिलहरी, चिड़िया, तार, खंभा, पत्थर। लौटकर वह उस चीज के बारे में सिर्फ एक वाक्य बोले, जैसे, मैंने एक भूरी चीज देखी।

अब इस बच्चे से एक प्रश्न पूछकर उस चीज का अनुमान लगाने का मौका कक्षा के हर बच्चे को मिलेगा। उदाहरण के लिए –

पहला बच्चा	:	'क्या वह पतली है?'
उत्तर	:	'नहीं'।
दूसरा बच्चा	:	'वह कितनी बड़ी है?'
उत्तर	:	'वह काफी बड़ी है।'
तीसरा बच्चा	:	'क्या वह कुर्सी जितनी बड़ी है?'
उत्तर	:	'नहीं, कुर्सी से छोटी है।'
चौथा बच्चा	:	'क्या वह मुड़ सकती है?'

अंत में सही अनुमान लग चुकने के बाद कुछ बच्चों को अपने प्रश्नों के उत्तरों से आपत्ति हो सकती है। उदाहरण के लिए किसी को यह आपत्ति हो सकती है कि रंग भूरा नहीं, मिट्टी जैसा था। ऐसी स्थिति में बारीक अंतर देख पाने में अध्यापक को बच्चों की मदद करनी होगी।

चार

जो कहा सो करना

बच्चों से कहिए कि वे ध्यान से सुने और जो बताया जाए उसे करें। पहले एकदम सरल निर्देश दीजिए और पूरी कक्षा से निर्देश का एक साथ पालन करने को कहिए।

उदाहरण : 'अपना सिर छुओ।'

'अपनी दाहिनी आंख बंद करो।'

'सिर पर ताली बजाओ।'

कक्षा को दो समूहों में बांट दीजिए। आप पहले समूह को निर्देश देंगे और इस समूह के बच्चे दूसरे समूह को वही या मिलते–जुलते निर्देश देंगे।

धीरे धीरे निर्देश को जटिल बनाइए। उदाहरणः

'दोनों हाथों से अपना सिर छुओ, फिर दाहिने हाथ से दाहिना कान छुओ।'

'दोनों आंखे मीचो, अपने पड़ोसी को छुओ, उससे कहो कि अपना बायां हाथ तुम्हें दे।' जब एक समूह के बच्चे दूसरे समूह को निर्देश दे रहे हों तो यह जरूरी नहीं कि वे अध्यापक के निर्देशों को ज्यों का त्यों दुहराएं। उन्हें ताजे निर्देश रचने के लिए प्रोत्साहित कीजिए।

पांच

तुलना

एक जैसी दिखने वाली चीजों के जोड़े बनाइए, जैसे दो पेड़ों की पत्तियां, अलग अलग पौधों के फूल, पत्थर, अलग अलग आकार में काटे गए कागज के टुकड़े।

बच्चों को बताइए कि आप जोड़े की एक चीज का वर्णन करेंगे और वर्णन ध्यान से सुनकर उन्हें यह अनुमान लगाना है कि आप किस चीज की चर्चा कर रहे थे। उदाहरण : 'मैं जिस पत्ती के बारे में सोच रहा हूं वह लंबी और चिकनी है और उसकी किनार सीधी है।'

यह गतिविधि आठ–दस बार करने के बाद वर्णन करने का काम बच्चों को सौंप दीजिए। हर बार यह गतिविधि करते वक्त चीजें, बदल दीजिए। हर बार वर्णन के लिए और बारीक बातें चुनिए।

छह

यह कैसे बनाया?

बच्चों को कागज, कपड़े, या अन्य उपलब्ध सामग्री से चीजें बनाना सिखाइए। कागज की नाव, हाथ की कठपुतली, और धागे की आकृतियाँ बढ़िया रहेंगी। इन्हें बनाने का प्रदर्शन करते समय खूब विस्तार से विवरण देते जाइए और बच्चों को कहिए कि वे साथ साथ खुद भी वहीं चीज बनाते जाएं। जैसे यदि आप कागज की नाव बना रहे हैं तो एक एक कदम स्पष्ट करते जाइए– कागज को आधा मोड़ो। अब कोनों को अंदर की तरफ मोड़ दो। बची हुई कागज की पट्टी को उठा दो आदि।'

सात

करके दिखाना

पहला चरण : ऐसे दस–पंद्रह क्रियाकलाप चुन लीजिए जिन्हें बच्चे रोज देखते हों। उदाहरण झाड़ू लगाना, केला छीलना, बर्तन मांजना, सब्जी काटना, दो भरी बाल्टियां उठाकर चलना। हर बच्चे के कान में फुसफुसा दीजिए कि आपने उसके लिए कौन सा काम चुना है। हर बच्चा बारी से सामने आए और चुपचाप अपना काम करके दिखाए। बाकी बच्चों को यह अनुमान लगाना है कि उसने क्या करके दिखाया।

दूसरा चरण : इस गतिविधि को थोड़ा जटिल बनाइए। ऐसे क्रियाकलाप चुनिए जिनमें पांच–सात बच्चों की जरूरत हो। बच्चों की टोलियां बना दीजिए और प्रत्येक टोली को एक सामूहिक अभिनय करने को दीजिए। बड़े बच्चों के साथ यह गतिविधि करते वक्त कागज के टुकड़ों पर लिख दीजिए कि उन्हें क्या करना है।

आठ

तस्वीर की छानबीन

पांच पांच बच्चों की टोलियां बनाइए और हर टोली को एक चित्र दे दीजिए। यह गतिविधि शुरू करने से पहले आपको सारे चित्रों का ध्यान से अध्ययन कर लेना चाहिए और पृष्ठ 75 पर सुझाए गए सभी स्तरों के प्रश्न तैयार कर लेने चाहिए। इस तरह हरेक टोली के लिए पांच प्रश्न आपके पास होंगे।

तस्वीर का विश्लेषण करने और आपस में चर्चा करने के लिए कम से कम पांच मिनट बच्चों को दीजिए। टोली के सदस्यों को एक से पांच की क्रमसंख्या में रख दीजिए और इस क्रम से पांचों प्रश्न पूछिए।

ये प्रश्न बच्चों से अलग अलग, अनौपचारिक बातचीत के लिए भी उपयोगी हैं। इस गतिविधि को दो–चार बार आयोजित करने के बाद आप नए नए प्रश्न आसानी से बना सकेंगे, लेकिन शुरू में पहले से पूरी तैयारी करके रखना ही ठीक रहेगा।

नौ

सही तस्वीर कौन सी है?

यह गतिविधि तभी की जा सकती है जब आपके पास बाल साहित्य की कई किताबें खास तौर से चित्रों वाली किताबें हों।

बच्चों के जोड़े बना दीजिए। वे आमने–सामने दो पंक्तियों में बैठें। एक पंक्ति के बच्चे किताबों को उलट–पुलट कर कोई एक तस्वरी चुन लें। अब इस पंक्ति का हर बच्चा अपने सामने बैठे बच्चे को तस्वीर दिखाए बिना तस्वीर का विवरण देगा। विवरण देकर किताब बंद करके वह सामने वाले बच्चे को दे देगा और अब इस बच्चे को सुने हुए विवरण के आधार पर तस्वीर ढूंढ़नी होगी।

दोनों पंक्तियां किताबों की अदला–बदली करती रहें। यह गतिविधि दीवार पर टंगे चित्रों की मदद से भी की जा सकती है।

दस

कहानी बनाना

बोतलों और डिब्बों के ढक्कन, कपड़े के टुकड़े, चूड़ी के टुकड़े, छोटे छोटे पत्थर, पत्तियां, निबें, और इस तरह की तमाम चीजें इकट्ठी कर लीजिए। पांच पांच या छह चीजों की ढेरियां बनाकर पांच पांच की हरेक टोली को एक ढेरी दे दीजिए। हर टोली को एक जगह बैठकर चीजों पर चर्चा करनी है और लगभग पंद्रह–बीस मिनट में एक कहानी गढ़नी है। सारी टोलियों के लौटने पर हर टोली में से एक बच्चा कहानी सुनाएगा। यदि टोली के अन्य सदस्य कोई फेरबदल करना चाहें, तो उन्हें खुशी से ऐसा करने दीजिए।

इस गतिविधि की सफलता इस बात पर निर्भर है कि आपके बच्चों को कहानियां सुनाने का कितना अनुभव है? साथ ही यह इस बात पर भी निर्भर है कि क्या वे किसी भी घटना को कहानी की तरह सुना सकते हैं? कोई भी घटना या वस्तु एक दिलचस्प कहानी की बुनियाद बन सकती है। यदि आप कल्पना और सूझबूझ के काम लेंगे तो यह आदत शीघ्र ही आपके बच्चों में भी पड़ जाएगी।

ग्यारह

तुम कहां रहते हो?

बच्चे दो पंक्तियों में आमने – सामने बैठते हैं। एक पंक्ति 'बताने वालों' की है, दूसरी 'सुनने वालों' की। पहली पंक्ति में बैठे हर बच्चे को अपने सामने बैठे बच्चे को समझाना है कि वह अपने घर कैसे जाता है। रास्ते को अच्छी तरह समझने के लिए सुनने वाला कितने ही सवाल पूछ सकता है। उदाहरणः

बताने वाला : सीधे जाकर मुड़ जाओ।

सुनने वाला : कितनी दूर तक सीधे जाना है?

बताने वाला : कूड़े के ढेर तक। वहां से मुड़ना है।

सुनने वाला : दाहिने मुड़ना है कि बाएं।

बताने वाला : दाहिने ... नहीं, नहीं, बाएं।

जब सभी बताने वालों की बारी आ चुके तब सुनने वाले बताने वाले बन जाएं और खेल फिर शुरू।

इस सबसे क्या होगा?

यहां दी गई सभी गतिविधियों का लक्ष्य यह है कि अपने आसपास की दुनिया से संबंध स्थापित करने की बच्चे की क्षमता का विकास हो। यद्यपि इन गतिविधियों का केंद्र बातचीत है, दरअसल बच्चों के विकास की दृष्टि से उनका संदर्भ बहुत व्यापक है। इस व्यापक संदर्भ में ये चीजें शामिल हैः

- सीमित जानकारी के आधार पर होशियारी से अनुमान लगाना
- चीजों से एक से अधिक स्तर पर संबंध स्थापित करना
- मौलिक व्याख्या करना
- नई जानकारी पाने के लिए प्रश्न पूछना

कुछ गतिविधियां ऐसी हैं जो एक से अधिक माध्यम में काम करने का मौका देती हैं– एक माध्यम शब्दों का और दूसरा चित्रों का। यह संभावना अमूर्त और मूर्त प्रतीकों को जोड़ने की सामर्थ्य का विकास करने में सहायक हो सकती है। एक पाठक के रूप में बच्चे के विकास में यह महत्वपूर्ण योगदान होगा।

बातचीत हमेशा दुनिया से रिश्ता जोड़ने का बुनियादी माध्यम रहेगी। इसलिए बच्चे जब पढ़ना–लिखना सीख लें, तब भी बातचीत पर आधारित गतिविधियां जारी रहनी चाहिए।

पढ़ना यानि एक सृजनात्मक अनुभव

– मीनाक्षी खार

हम सब यह अच्छी तरह जानते हैं कि पढ़ना आने का महत्त्व क्या होता है। स्कूल की गतिविधियों में सबसे महत्त्वपूर्ण है– पढ़ना सिखाना और सीखना। हमारे लिए यह जान लेना भी जरूरी है कि बच्चे पढ़ने की शुरूआत स्कूल आने से पहले ही कर लेते है। हो सकता है यह उपस्थिति प्रिंट पढ़ने की समझ बनाने में महत्त्वपूर्ण रही हो। समझकर पढ़ना हमारे व्यक्तित्व को सुदृढ़ बनाता है और हमें आत्मविश्वास देता है। पढ़ने की प्रक्रिया में हम न केवल इस सजीव संसार बल्कि उस लोक में भी पहुँच जाते हैं जो हमसे परे है, हमसे कोसों दूर है। साहित्य इसका मुख्य उदाहरण है।

फ्रेंक स्मिथ ने पढ़ने को लेकर किए गए अनुसंधान/सर्वेक्षण इत्यादि द्वारा एक महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उनके विचारों ने पढ़ने के संसार में खलबली ही नहीं मचायी बल्कि शिक्षकों को चौंकाया और उत्साहित भी किया। वे मानते हैं कि पढ़ने की प्रक्रिया उच्चस्तरीय सोचने और सीखने की प्रक्रिया से एक जंज़ीर की तरह जुड़ी हुई है। स्मिथ मानते हैं कि पढ़ना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है जो पाठक को छपी सामग्री से कहीं आगे ले जाती है।

पढ़ना और पाठक

पढ़ने की प्रक्रिया में पाठक मुख्य भूमिका निभाते हैं या ऐसा कहा जा सकता है कि पढ़ने का सारा दारोमदार पढ़नेवाले पर ही होता है। दूसरी ओर, वर्ण पहचानना ही पढ़ने का महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं है और वर्ण की पहचान एक आसान प्रक्रिया भी नहीं है। ध्वनियों और वर्णों में कई बार पूरा तालमेल नहीं होता है। ऐसे में पढ़ने की प्रक्रिया का पहला कदम काफ़ी जटिल माना जाता है। अंग्रेजी पढ़ने में यह समस्या काफ़ी उभरकर आती है। स्मिथ शिक्षकों और विशेषज्ञों का ध्यान इस समस्या की ओर खींचते हैं जो काफी हद तक सही भी है। पढ़ना केवल वर्ण या शब्दों को पढ़ लेना ही नहीं है, पढ़ना है समझकर पढ़ना, शब्दों में एक ऐसा अर्थ ढूँढ़ना जिसका पाठक के साथ एक आत्मीय रिश्ता हो। वास्तव में पढ़ना बेहद ही सृजनात्मक और संरचनात्मक काम है। पढ़ना एक ऐसी क्षमता है जिसमें पाठक के अपने पूर्व अनुभव भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जो पाठक दी गई पढ़ने की सामग्री को समझ नहीं पाता उसके लिए केवल वर्णों और शब्दों की पहचान एक अर्थहीन क्रिया है।

पढ़ना और निजी संसार

पढ़ने का सीधा संबंध पाठक के साथ होता है। यह कुछ आश्चर्यजनक लग सकता है परन्तु स्मिथ इस तथ्य को बहुत खूबसूरती से प्रस्तुत करते हैं। हम सब अपने अनुभव से जानते हैं कि हम, यहाँ तक कि एक छोटा बच्चा भी, अपनी समझ के अनुसार अपने संसार का ताना–बाना बुनता रहता है। अपने अनुभव, यादें जो नितांत हमारी अपनी हैं, शायद किसी के साथ बाँटी भी नहीं गई हों वे हमारे दिमाग में कहीं–न–कहीं अपनी जगह बनाते हैं। और यही अनुभवों का खट्टा–मीठा भंडार पढ़ते समय पढ़ने की प्रक्रिया में मदद करता है और उसे सुंदर व सजीव भी बनाता है। स्मिथ बताते हैं जो कुछ भी हम जानते हैं तथा जिन तथ्यों और अनुभवों पर हम विश्वास करते हैं, हमारी आशाएँ, और संभावनाएँ, सभी एक सिद्धान्त के रूप में हमारे मस्तिष्क में समाहित हो जाता है और पढ़ने की प्रक्रिया में लिखित सामग्री को समझने में हमारी सहायता करता है। इसीलिए स्मिथ का कहना है कि पढ़ना केवल लिखित सामग्री को पढ़ लेना मात्र नहीं होता बल्कि उसे समझना होता है और मुख्य बात यह है कि पाठक अपने पूर्व अनुभवों की भरपूर मदद लेता है।

फ्रेंक स्मिथ नए और रोचक तथ्यों को उजागर करते हैं जैसे कि पढ़ने का सम्बन्ध न्यूरो–बायोलॉजिकल पक्ष से भी होता है। हमारी आँखें पठन सामग्री को देखती हैं और हमारा मस्तिष्क उस सामग्री का अवलोकन

करता है। यदि पठन सामग्री की संरचना इस तरह की गई हो कि पाठक के पास उसको समझने के लिए पिछले अनुभव ही नहीं हैं, तो ऐसा मानना उचित होगा कि उस विषय में पाठक की रुचि जगाने के लिए हमें कुछ और तरीकों की जरूरत है। ऐसी बहुत सी पठन सामग्री यदि एकत्रित हो जाती है और पाठक उसे समझने में असमर्थ रहता है तो एक किस्म की tunnel vision की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। यह एक ऐसी स्थिति है जिसमें पाठक पढ़कर समझने में असमर्थ रहता है और अँधेरे में ही हाथ–पाँव मार रहा है।

अपरिचित शब्द

हमारे अपने पढ़ने के अनुभव यह बताते हैं कि पढ़ना एक व्यक्तिगत अनुभव है। पाठकों की अपनी रुचियाँ होती हैं। पठन सामग्री को लेकर, पुस्तकों का चुनाव हमारी अपनी पसंद पर निर्भर करता है। फ्रेंक स्मिथ इस चर्चा को आगे बढ़ाते हुए कहते है कि हमारे पास पढ़ने के मुख्यतः दो उद्देश्य होते हैं– हम या तो जानकारी के लिए पढ़ते हैं या फिर अपने ज्ञान के विस्तार के लिए। वर्णों को पहचानना ज्ञान पर आधारित प्रक्रिया है और यह अपने आपमें एक पूर्ण क्रिया है, जबकि पढ़ना होता है समझ के साथ, अपने पूर्व अनुभवों और अनुमान की मदद से पढ़ना और समझना। वे अपनी पुस्तक में पढ़ने की प्रक्रिया में वर्तनी, अर्थ, शब्द पहचान के महत्त्व को भी विस्तार से बताते हैं। इसके साथ स्मिथ इस बात पर भी ज़ोर देते हैं कि एक कुशल पाठक पढ़ते समय अपरिचित शब्दों पर ज़्यादा ध्यान नहीं देते और पढ़ने की धारा को टूटने नहीं देते और अपनी एकाग्रता, रुचि को कोई भी बाधा नहीं पहुँचाते। अपरिचित शब्द की समझ या तो संदर्भ से निकाल लेते हैं या अपनी सुविधा से शब्दकोश से उसका सही अर्थ देख लेते हैं। इस सारी प्रक्रिया में यह ध्यान में रखना जरूरी है कि कुशल पाठक पढ़कर समझने में अपना सारा ध्यान लगाते हैं।

पढ़ाने के तरीकें

उनका यह कहना बिलकुल वाज़िब है कि कोई भी कृत्रिम तरीके से बनाया गया कार्यक्रम समझकर पढ़ने के कौशल को बढ़ावा नहीं देता। यदि हम अपने आस–पास के स्कूलों की पहली और दूसरी की कक्षाओं को ध्यान से देखें तो पाएँगे कि इस स्तर पर अध्यापक पढ़ना सिखाने के कुछ तरीके इस्तेमाल करते हैं। सही गलत की पहचान किए बिना, आँख मूँदकर उन पर विश्वास कर लिया जाता है, उदाहरण के लिए वर्णमाला का रटना, ध्वनि, अक्षर की पहचान, शुद्ध उच्चारण इत्यादि। ये सब क्रियाएँ यांत्रिक कौशलों के वर्ग में आती हैं। समझना यह है कि यह पढ़ना सीखने की क्रिया का आधार नहीं है। समझ के साथ पढ़ना एक कला है, पाठक के व्यक्तित्व का एक अंग है जिसे संवेदनशील शिक्षक ही समझ सकते हैं। इस तथ्य के सबूत मौजूद हैं कि एक नन्हा बच्चा जब स्कूल में प्रवेश करता है तो वह अपने अनुभवों के भंडार के साथ ही कक्षा में पढ़ना आरम्भ करता है। शिक्षक एवं हमारी शिक्षा प्रणाली को चाहिए कि इस अनुभव के भंडार को व्यर्थ न जाने दें बल्कि समझकर पढ़ने की प्रक्रिया में इसका उपयोग करें। क्योंकि ऐसा करने से पढ़ने की प्रक्रिया सरल हो जाती है और नन्हा पाठक एक नए आत्मविश्वास का अनुभव करता है।

गतिविधियाँ

स्मिथ यह सुझाव भी देते हैं कि पढ़ने की संस्कृति बनाने के लिए, बच्चों का पढ़ने को लेकर उत्साह बनाए रखने के लिए कुछ गतिविधियों का होना ज़रूरी है। हमें पढ़ने का एक ऐसा माहौल बनाना होगा जहाँ बच्चे सहज तरीके से पढ़ना सीख पाएँ। ऐसे में बच्चों को एक छपे शब्दों से सम्पन्न वातावरण देना बहुत जरूरी है। कक्षा में पुस्तकों की मौजूदगी, दीवारों पर सोच–समझकर करीने से लगाई छपी/लिखी सामग्री, बैठने की व्यवस्था में बदलाव और अध्यापक का पाठ्यपुस्तक की सीमाएँ लाँघना भी अति आवश्यक है। हमारे लिए यह मानना जरूरी है कि पढ़ने की प्रक्रिया स्कूल आने से पहले और स्कूल के बाद भी चलती रहती है। इससे कक्षा में पढ़ने का माहौल ठोस बनता है। पढ़ने का माहौल स्कूलों या कक्षाओं में पठन क्लब गठित कर बनाया जा सकता है। बच्चों को पढ़ने के लिए उत्साहित करने के लिए शिक्षकों को हर संभव चेष्टा करनी चाहिए।

सही मायनों में आखिर 'पढ़ना' है क्या?

पढ़ने के नमूने

निशि कक्षा 3 की विद्यार्थी है। उसकी अध्यापिका के अनुसार वह **पढ़ना** अच्छी तरह से सीख रही है। नीचे किसी गद्य खंड की दो पंक्तियाँ दी गई हैं। निशि इन पंक्तियों को किस तरह पढ़ती हैं, प्रस्तुत है उसकी एक झलक–

''बरसात आने वाली थी। शांति अभी घर नहीं आई थी।''

निशि इन पंक्तियों को कुछ इस तरह से पढ़ती है– ''बस का **ब** रस्सी का **र** सरौते का **स** उसमें **आ** का डंडा फिर तकली का त बना ब... र... सा... त। आम का आ नल का न एड़ी वाली मात्रा। बना आने, वा का व उसमें आ का डंडा फिर लट्टू का **ल** और उसमें बड़ी ई की मात्रा। मतलब के **वाली** फिर थन का **थ** और बड़ी ई की मात्रा हो गया **थी**। शरीफ़े का **श** उसमें पड़े दो डंडे फिर नल का **न** तकली का का **त**...।

क्या आप निशि की पठन शैली को पहचान पाए हैं? किसी भी शब्द को पढ़ने के लिए वह रटी हुई वर्णमाला के अक्षरों को सामने लाती है, फिर अक्षर को जिस शब्द से जोड़कर रटवाया गया था, उसी अक्षर और शब्द को बोलकर कोई नया शब्द पढ़ पाती है। जैसे– **बरसात** में **ब** की पहचान के लिए बस का **ब** रस्सी का **र** सरौते का **स** फिर आ का डंडा और तकली का त। तभी कहीं जाकर **बरसात** शब्द से पहचान बन सकी है। अभी केवल शब्द से ही पहचान बन पाई है। इस शब्द के अर्थ से जुड़ने का भी यहाँ कोई भाव है, इसमें संदेह है। क्या हम कह सकते हैं कि निशि पढ़ना सीख गई है या सीख रही है?

मनोज कक्षा चार का विद्यार्थी है। वह कुछ इस तरह से पढ़ता है–

'ब र स आ त बरसात **आ । न`** आने **वा – ली** ई वाली **हे ऐ** है। यानी कि शब्द के हर अक्षर पर अलग–अलग ज़ोर देकर बोलना फिर शब्द को एक साथ बोलना। क्या इसे भी पढ़ पाने की श्रेणी में रखा जा सकता है?

इमरान पाँचवीं कक्षा का विद्यार्थी है। उसका पठन–कौशल कुछ अलग है। पाठ्यपुस्तक के किसी भी पाठ का नाम लीजिए, तुरत–फुरत उस पाठ को खेलकर फर्राटेदार अंदाज़ में पाठ पढ़ जाएगा, परंतु पाठ्यपुस्तक से बाहर कोई भी पाठ्य सामग्री पढ़ने के लिए दे दी जाए, तो पढ़ना तो दूर की बात अक्षरों की पहचान भी नहीं हो पाती। यह किस तरह का पठन कौशल है?

फिर तीसरी कक्षा में आते हैं। भानु को पढ़ने के लिए एक वाक्य दिया गया है, ''वह दौड़कर बस में चढ़ गया।'' इस वाक्य के साथ एक चित्र दिया गया था, जिसमें एक छोटा–सा बच्चा भागती हुई मुद्रा में बस पर चढ़ने की कोशिश में था। भानु ने इस वाक्य को पढ़ा, **''व ह ब स म च ढ़ ग या''**

यही वाक्य सुनीरा को भी पढ़ने के लिए दिया गया। सुनीरा का ध्यान लिखे हुए पर था या चित्र पर, यह आप तय करें। उसने वाक्य को इस तरह से पढ़ा, ''बच्चा भागकर बस में चढ़ गया''।

पीयूष चौथी कक्षा में है। वह भी तस्वीर को देखकर और शायद कुछ अक्षरों/शब्दों को पहचान कर अपना ही 'टेक्स्ट बना लेता है। जामुनी पढ़ तो लेती है, उसे पढ़े जा रहे अक्षरों, शब्दों और मात्राओं की भी

पहचान है, पर पढ़े गए से भाव/अर्थ क्या निकला, यह अभी उसे पता नहीं। इसीलिए कहानी पढ़ने की उत्सुकता होने पर भी वह यही कहेगी, ''आप पढ़कर सुनाओ, पहले आप पढ़कर सुनाओ।'' जबकि विद्यालयी शिक्षा के इस स्तर (पाँचवीं कक्षा) तक आते–आते उसे स्वयं ही पढ़कर कहानियों का आनंद लेना चाहिए।

आपके सामने बच्चों की पठन–शैलियों की कुछ बानगियाँ यहाँ प्रस्तुत कीं। किस बच्चे के विषय में आप कहेंगे कि वह सही मायनों में पढ़ पा रही/रहा है? या फिर सभी के लिए कहा जा सकता है कि 'पढ़ तो आखिर सभी रहे हैं।'

सही मायने में पढ़ना

कौन सही मायनों में पढ़ पा रहे हैं या नहीं, यह तय करने से पहले यह समझने का प्रयास करते हैं कि 'पढ़ने' का मतलब आखिर है क्या? विचारकों और भाषाविदों ने पढ़ने के संदर्भ में कुछ इस तरह से अपने मत प्रस्तुत किए हैं–

- लिखे हुए से अर्थ गढ़ना ही पढ़ना है।
- पढ़ने का अर्थ है लिखे हुए से धारणाओं को गढ़ना और साथ ही विचारों को आपस में जोड़ पाना और उन्हें अपनी स्मृति में रखना।
- पढ़ना सिर्फ वर्णमाला की पहचान, शब्द तथा वाक्य को बोल भर पाना नहीं है, बल्कि इसके आगे बहुत कुछ और भी है। यानी कि लिखे हुए के अर्थ को समझकर अपना नज़रिया बनाना या फिर अपनी निजी समझ विकसित करना है।
- शब्द के हिज्जे करके बोलना 'पढ़ना' नहीं है। पढ़ने का अर्थ है, लिखे हुए के साथ संवाद करना, अपने अनुभवों एवं समझ के साँचे में लिखे हुए को ढालना।
- पढ़ना एक एकाकी प्रक्रिया नहीं है, इसमें शामिल है अक्षरों की आकृतियाँ और उनसे जुड़ी ध्वनियाँ, वाक्य–विन्यास, शब्दों और वाक्यों के अर्थ और साथ ही अनुमान लगाने का कौशल।
- पढ़ने में महत्वपूर्ण है लिखी हुई जानकारियों या संकेतों की बानगी ग्रहण करना।

यदि हम पढ़ने से संबंधित उल्लिखित परिभाषाओं के ज़रा भी निकट जा पाते हैं तो खुद ही निर्णय ले पाएँगे कि निशि, मनोज, इमरान, भानु और जामुनी इनमें से कोई भी अभी पढ़ना नहीं जानते। दरअसल, जब हम शब्दों के अलग–अलग हिज्जे करते हैं यानी कि टुकड़े–टुकड़े में किसी शब्द फिर वाक्य को पढ़ते हैं तो हमारा मस्तिष्क लिखी हुई सामग्री की संपूर्ण मात्रा या वज़न पर ध्यान न देकर अलग–अलग शब्द, उसके टुकड़े पर ध्यान देता है। इससे मस्तिष्क की क्षमता पर अत्यधिक बोझ पड़ता है और अर्थ ग्रहण करने की क्षमता तो कहीं खो ही जाती है। एक वाक्य के सारे शब्दों पर फिर शब्दों के अलग–अलग अक्षरों पर ध्यान देना अर्थ से कहीं दूर, बहूत दूर ले जाने की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में पढ़ने से आनंद पाना तो बहुत दूर की बात है, 'पढ़ना' भी ठीक से नहीं आ पाता है।

बोझिल तरीके

बच्चों को सही तरीके से पढ़ना सिखाने या 'पढ़ने' की क्षमता विकसित करने के लिए ज़रूरी है कि बच्चों को 'डीकोडिंग' से दूर रखा जाए। 'डीकोडिंग' से मतलब है शब्द को टुकड़ों में बाँटकर पहचानना फिर उसे बोल पाना या पढ़ पाना। विद्यालयी शिक्षा में भाषा के संदर्भ में 'डीकोडिंग' और उस पर आधारित विधियाँ जैसे– वर्णमाला, उच्चारण या शब्द बोलना जैसी विधियाँ (?) बहुत ही लोकप्रिय है।

इनके लोकप्रिय होने के दो मुख्य कारण हो सकते हैं, पहला तो यही कि शायद शिक्षक 'पढ़ने' के सही मतलब को नहीं समझ पाए हैं और तदनुसार पढ़ना सिखाने की सही विधियों की जानकारी हासिल नहीं कर पाए हैं। दूसरा महत्वपूर्ण कारण शायद यही हो कि इस तरह से पढ़ाना उन्हें अधिक सुविधाजनक लगता हो। (जबकि असल मायने में इस तरह से पढ़ना सिखाने में शिक्षक ओर विद्यार्थी दोनों पर ही समय और मेहनत का अतिरिक्त बोझ पड़ता है।) पारंपरिक विधियों से पढ़ना सीखने वाले बच्चे हर शब्द को अक्षरों की छोटी इकाइयों में तोड़ते हैं और इस तरह से शब्दों का अर्थ ग्रहण करने की मस्तिष्क की क्षमता पर बहुत ज़्यादा बोझ डाल देते हैं। सही तरीके से पढ़ने वाले बच्चों की आँखें ऐसा बोझ नहीं डालने देतीं क्योंकि वे पन्ने पर अंकित ग्राफ़िक सूचनाओं के एक सीमित, चुने हुए अंश से जूझती हैं। वे किसी अक्षर के पूरे आकार पर ध्यान नहीं देते और न ही वे एक शब्द के सारे अक्षरों या एक वाक्य के सारे शब्दों पर ध्यान देते हैं पढ़ते समय उनकी आँखें लिखी हुई सामग्री के छोटे से अंश पर गौर करती है, शेष भाग अनुमान के जरिए ग्रहण किया जाता है। अनुमान का आधार होता है अक्षरों की आकृतियाँ, शब्द, उनके अर्थ और उनके संयोजन तथा दुनिया से उन बच्चों का परिचय।

आपको शायद लगे कि इस तरह से पढ़ना सिखाना तो एक बहुत ही मुश्किल प्रक्रिया होगी। बिल्कुल नहीं, इस सत्य के साथ कि 'पढ़ना' सिखाने की कोई एक अचूक विधि नहीं हो सकती और न ही पढ़ना सिखाने के लिए एक अकेली विधि पर ही निर्भर रहा जा सकता है। हर विधि की अपनी सीमाएँ होती है, जिन्हें शिक्षक बखूबी पहचान सकते हैं। इससे पहले कि पठन कौशल विकसित करने की विधियों पर चर्चा की जाए, एक अहम सवाल पर बात करना ज़रूरी होगा कि बच्चे पढ़ना क्यों नहीं सीख पा रहे हैं? इस सवाल के उत्तर के रूप में मैं अपने कुछ अनुभव बयान करना ज़रूरी समझती हूँ–

अच्छा पढ़ने में रूकावटे

- अन्य विषयों की तरह भाषा की घंटी भी 'रटने' की ही घंटी है, और किसी लिखे हुए को रटकर पढ़ना नहीं सीखा जा सकता।
- कक्षाओं में विद्यार्थियों द्वारा बोलने और सवाल करने को एक 'नकारात्मक मूल्य' के रूप में देखा जाता है। कक्षाओं के वातावरण में विद्यार्थियों की 'मुक्त अभिव्यक्ति' के लिए बहुत ही कम गुंजाइश रखी गई है जो सापेक्ष रूप से उनकी पठन प्रक्रिया के आड़े आती है।
- भाषा के बुनियादी कौशल– बोलना और सुनना दोनों को ही दरकिनार करके अक्षरों/वर्णमाला को रटवाए जाने की अंतहीन कवायदें बच्चों में मौजूद 'पढ़ना' सीखने की ललक का शुरू में ही कत्ल कर देती है।
- पाठ्यपुस्तकों में पठन कौशल को लेकर कोई सुसंगत नीति नहीं होती।
- पाठ्यपुस्तकों की भाषा, बच्चे की अपनी भाषा और अनुभवों में गहरा अंतर होता है।
- अध्यापक बच्चों की उच्चारण संबंधी गलतियों पर इतना अधिक ध्यान देते हैं कि बच्चे का पढ़ने के प्रति किसी तरह का उत्साह बन ही नहीं पाता।
- सुविधावंचित समूह के बच्चे विशेषकर प्रथम पीढ़ी के शिक्षार्थी अपने आप को विद्यालय की किसी भी घटना/प्रक्रिया से नहीं जोड़ पाते, चाहे वह पाठ्यपुस्तक में छपी सामग्री हो या फिर शिक्षण विधियाँ, अथवा अध्यापकों का व्यवहार। कहीं भी वे स्वयं को ढूँढ़ नहीं पाते। पाठक शायद सवाल करें कि इन सबसे 'पढ़ना सीखने' का क्या लेना–देना, थोड़ा नहीं, बहुत लेना–देना है। दरअसल अपनी

सांस्कृतिक–सामाजिक पहचान खोकर किसी भी प्रक्रिया से जुड़ पाना बहुत ही कठिन है और फिर पढ़ा क्या जाए? क्या वह जिसमें न तो 'हम' हैं और न ही 'हमारे अनुभव'? इस सवाल का उत्तर ढूँढ़ने की प्रक्रिया के दौरान ही आप समझ लेंगे कि उक्त बिन्दु का 'पढ़ने' से कोई सरोकार है या नहीं।

- हमारे विद्यार्थी पढ़ना इसलिए भी नहीं सीख पाते, क्योंकि विद्यालय और घर दोनों ही जगहों पर पढ़ने योग्य रोचक सामग्री उन्हें मिल ही नहीं पाती। जिन बच्चों को मनचाही पठन सामग्री मिल भी जाती है, उन्हें पढ़ने की आज़ादी नहीं है क्योंकि पाठ्यपुस्तक इतर सामग्री पढ़ने से परीक्षा में अच्छे अंक न ला पाने का भय अभिभावकों को हमेशा घेरे रहता है। मेरे स्मृत कोष में ऐसे बहुत से दृश्य टँके हुए हैं, सिर्फ इस वज़ह से कि ''इन्हें पढ़कर क्या खाक नंबर ला पाओगे?''

सही पढ़ना सिखाना

बच्चों को सही मायनों में पढ़ना सिखाने के लिए सबसे पहले तो ज़रूरी है कि मेरे इन अनुभवों पर गौर किया जाए। शायद फिर नए से नए तरीके खुद–ब–खुद सामने आ जाएँ।

दूसरी ज़रूरी बात कि अध्यापक इस बात की अहमियत समझें कि पढ़ने का अर्थ मात्र शब्दों तथा अक्षरों की पहचान से नहीं है बल्कि उनमें से अर्थ ढूँढ़ने से है और अर्थ हिज्जे करके शब्द पढ़ने से नहीं आते बल्कि लिखे हुए में अपने अनुभव और अनुमान जोड़ने से आते हैं।

तीसरी महत्वपूर्ण बात 'पढ़ने' का मतलब सिर्फ पाठ्यपुस्तकों के पाठों को पढ़ पाना नहीं बल्कि अपने चारों ओर बिखरी अथाह लिखित और मुद्रित सामग्री को पढ़ पाना और उसमें से अपने लिए कुछ निकाल पाना असल मायनों में 'पढ़ना' है। भाषा के उच्चस्तरीय कौशल तो 'पढ़ने' की परिभाषा को कहीं और दूर ले जाते हैं। उनके अनुसार पढ़ने के प्रति सदैव एक ललक लिए रहना, साहित्य का रसास्वादन करना, अपने सामाजिक परिवेश को समझकर उसके प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण विकसित करना ही 'पढ़ना' है।

क्या हम निशि, मनोज, भानु, जामुनी आदि को इन उच्चस्तरीय कौशलों तक ले जा पाएँगे? बेशक, बशर्ते 'सही मायनों में पढ़ना क्या है?' को हम समझ पाएं और तद्नुसार भाषा के सत्र में कक्षा की विविधता के अनुसार वैज्ञानिक विधियों के प्रयोग को स्थान दे पाएँ।

सबक–V
पढ़वाना किस चिड़िया का नाम?

पाठ 1. बच्चे पढ़ क्यों नहीं पाते? : पढ़ना मुश्किल बनाइये – स्कूली कवायद – अक्षरवार पढ़ना? – शब्दों से अर्थों का रास्ता – सक्षम पाठक कैसे पढ़ते हैं? – अपनी गलतियों से सीख – नतीजे।

पाठ 2. पढ़ना कैसे सिखाया जाए : मौजूदा स्कूलों की हालत – किताब से शुरुआत – पढ़ने की पहेली – कविताओं और गानों से सिखाना – किताबें बनाना – गतिविधियाँ।

पाठ 3. पढ़ने का आकलन कैसे करें? : ठीक से पढ़ना क्या होता है? – पढ़ने का मकसद – पढ़ने का आकलन – पढ़ने के आकलन की गतिविधियाँ – पढ़ने की उत्सुकता।

पाठ 4. पढ़ाई पहली कक्षा की : पहली कक्षा का महत्व इस पाठ में एक टीचर के अनुभव – सफल तरीके – कक्षा में आनन्द।

पाठ 5. पढ़ना सिखाना : पढ़ना सिखाने के तरीकों का इतिहास – शुरूआती तरीके – खास खास शोध के नतीजे – शब्द पहचान के ज़रिये – वर्ण – आधारित तरीके – पढ़ने से समझने का रास्ता – आगे की दिशा।

कुछ बड़े–बूड़े टीचर मिल बैठकर गुज़रे जमाने को बड़ी हसरत से याद करते हैं। भई, क्या ज़माना था। क्लास में मास्टर राजा होता था। एक बार ब्लैक बोर्ड में लिखकर रटने को कह दिया, बस, फिर बेंत लेकर बैठ जाना होता था। स्सालों ने चूँ चाँ की तो, फटाक। दम साध के बैठे रहते थे। परीक्षा में सुलेख लिखकर पास हो जाते थे– मैट्रिक तक। बाद में भी वो ही रोब रहता था– रास्ते में गुज़रते हुए स्साले मिलते थे तो झुककर बोलते थे नमस्ते, मास्साब। सब हवा हो गया है आजकल। अब तो शिक्षाविद छा गये हैं। बच्चे नाजुक हैं, कोमल हैं, संवेदनशील हैं। उनको कहानी सुनाओ, गाना सुनाओ, नाटक करवाओ, सैर करवाओ। टीचर ना हुए, नौटंकी के जमूरे हो गये। कलियुग है, भाईसाहब, कलियुग।

एक और किस्सा है : एकलव्य की कहानी। रजवाड़ों का टीचर था, द्रोणचार्य नाम का। राजमहलों में राजकुमारों को पढ़ाता था। पढ़ाई में धनुर्विद्या शामिल थी, जंगलों में सिखायी जाती थी। राजकुमारों की पार्टी के पीछे–पीछे एक कबीलाई लड़का घूमता रहता था, देखता रहता था धनुर्विद्या। वो द्रोणाचार्य के पास आकर बोला मुझे भी सिखाइये। द्रोणाचार्य ने देखा, समझा। कहाँ राजकुमार, कहाँ ये जंगली लड़का। टालने के लिए कह दिया कि अलग से अकेले अकेले सीखो। एकलव्य गुरुमंत्र मानकर चला गया। एक द्रोणाचार्य की मूर्ति बनायी, और मूर्ति के सामने जंगल में अकेला धनुर्विद्या के अभ्यास करता गया। साल बीते। राजकुमारों के खेल में एक गेंद कुएँ में गिर गई। कोई निकाल नहीं सका। एकलव्य ने तीर पर तीर मारकर निकाल दी। कुछ दिन बाद तीर मारकर एक कुत्ते का मुँह बाँध दिया। द्रोणाचार्य आसमान से टपका। लगा मेरी तो नौकरी गयी, साख गयी – इस लड़के को किसने शिक्षा दी? चालाकी से गुरुदक्षिणा माँगी – एकलव्य का अंगूठा। सब जानते हैं यह कहानी।

ये दो किस्से पढ़ना सिखाने के तरीकों के दो विपरीत छोर हैं। पहले में बच्चों को मार–डाँट कर पढ़ने की काबिलियत को ही कुचल दिया जाता है। दूसरे में बच्चे को अपनी लगन के बूते पर ही पढ़ना सीखने के लिए छोड़ दिया जाता है। दोनों ही बच्चों के लिए नाकाफी हैं। सब एकलव्य नहीं हो सकते। एकलव्य एक ही था।

जबसे आम जनता के बच्चों की शिक्षा का चलन शुरू हुआ है– यानि लगभग पिछले डेढ़–दो सौ सालों से – तब से पढ़ाना बेहतर ढंग से सिखाने के लिए वैज्ञानिक नज़रियों की खोज चल रही है। इधर–उधर गलतियों के बावजूद पढ़ाने के तरीकों में बेशक बेहतरी आयी है। पढ़ाने के तरीकों में पढ़ाई की परीक्षाओं का आतंक घटाने की कोशिश शामिल है– ताकि बच्चों का हौसला हमेशा के लिए न टूट जाए। फिर आगे मंजिले और भी चलकर तय करनी हैं। पढ़ के सीखो।

बच्चे पढ़ क्यों नहीं पाते?

सुशील जोशी
(स्रोतः शिक्षण शास्त्र)

आजकल बहुत सारे शिक्षक और पालक यह शिकायत करते मिलते हैं कि बच्चे पढ़ना तक नहीं जानते। पांचवी पास करके आ गए पर पढ़ तक नहीं सकते। यह बात बहुत सुनने को मिलती है। और फिर आदतन, पुराना जमाना या हमारा जमाना याद आ जाता है। उस समय कैसे पहली क्लास के बच्चे पता नहीं क्या–क्या कर लेते थे। आखिर पढ़ना अचानक इतना दुर्गम हुनर कैसे हो गया?

चूंकि बात पढ़ने की चली है तो पहले पाठकों की जांच हो जाए, कागज कलम लेकर तैयार हो जाइए नीचे कुछ अक्षर लिखे हैं, इन्हें ध्यान से देख लीजिए। अब इन्हें एक तरफ करके याददाश्त के आधार पर लिख डालिए कि कौन–कौन से अक्षर देखे थेः

ल ए फू जो क की म

च ल क है ड़ में ता खि है ल

अब जांच कीजिए कि आप कितने अक्षर लिख पाए? एक बार फिर करके देखें, नीचे कुछ अक्षर लिखे हैं इनके साथ ऊपर वाली क्रिया दोहराइएः

क म ल ए क फू ल

है जो की च ड़ में खि ल ता है

कौन सा वाला ज्यादा आसान रहा? परंतु यदि आप ध्यान से देखें तो दोनों बार अक्षर वही थे फिर क्या अंतर पड़ा?

इसी तरह के कई प्रयोगों के माध्यम से भाषा वैज्ञानिक यह समझने का प्रयास करते हैं कि आखिर पढ़ने की क्रिया होती कैसे है। क्या इसी समझ के आधार पर पढ़ना सिखाने के और तरीके बनाए जा सकते हैं?

बहरहाल, जरा देखें कि आज हमारे स्कूलों में जिस तरीके से पढ़ना सिखाया जाता है उसके मूल सिद्धांत क्या हैं?

एक दर्जन आसान तरीके अपनाइए और पढ़ना मुश्किल बनाइए

1. पढ़ने के नियम यथा शीघ्र सिखाएं– ताकि पढ़ने का मूल उद्देश्य गुम हो जाए।
2. उच्चारण सीखने पर जोर दें– ताकि बच्चे अर्थ न समझ सकें।
3. एक बार में एक अक्षर या शब्द सिखाएं और इसे पूरी तरह सिखाकर ही आगे बढ़े– ताकि संदर्भ स्पष्ट न हो और मजा न आए।
4. शब्द को सही पढ़ने का प्रमुख उद्देश्य बनाए– ताकि अर्थ पर ध्यान न जाए।
5. अनुमान को निरूत्साहित करें– ताकि बच्चे हमेशा हिज्जे करके पढ़ते रहें।
6. सटीकता पर जोर दें– ताकि पढ़ना उबाऊ हो जाए।

7. तुरंत टीका–टिप्पणी करें– ताकि बच्चा अपनी गलतियों को खुद न सुधारे।

8. आंखों की गति यदि गलत हो तो पकड़ें और ठीक करें– ताकि पढ़ना मात्र अक्षरों को पहचानना बन जाए।

9. पिछड़े विद्यार्थियों को यथाशीघ्र पहचानकर उन पर खास ध्यान दें– ताकि वे अपनी गलतियों से न सीख सकें और कक्षा में उनका मखौल हो।

10. बच्चों को पढ़ने का महत्त्व अवश्य समझाएं– जैसे कि पढ़कर पढ़ने का महत्त्व मालूम नहीं होगा।

11. पढ़ते समय हिज्जे और सुलेख जरूर सुधरवाएं– ताकि बच्चे तकनीक में उलझे रहें।

12. और यदि आपकी विधि असंतोषजनक हो, तो कोई दूसरी तकनीक लागू करने में देर न करें– ताकि आप खुद भी तकनीक में उलझे रहें।

स्कूली कवायद

सबसे पहला काम यह किया जाता है बच्चे वर्णमाला के सारे अक्षर पहचान सकें। उसके बाद इन अक्षरों को जोड़कर आसान शब्द बनाए जाते हैं। आसान शब्दों से मतलब है वे शब्द जिनमें मात्रा का उपयोग न हुआ हो, मात्राविहीन शब्दों के चक्कर में कई बेमतलब शब्द भी बन जाते हैं। इन शब्दों को मिलाकर अमर घर चल, जल घर पर रख, आदि जैसे वाक्य सिखाए जाते हैं। इसके बाद मुश्किल शब्द, संयुक्ताक्षर, मुश्किल शब्दों में वाक्य, व्याकरण सहित, आदि इसी क्रम में आते हैं। इस पूरी कवायद ने कई वैज्ञानिकों को अपने संस्थान में स्थायी पद का निमंत्रण दिया। कवायद में काफी समय तक विद्यार्थियों को उद्देश्य या प्रयोजन मालूम नहीं होता। वे तो बस कोर्स पूरा करने में जोत दिए जाते हैं। इनमें से किसी भी मुकाम पर अक्षर पहचान की गलती को दंडित किया जाता है। परीक्षा में अंक भी काटे जाते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि पढ़ने की पूरी क्रिया में अक्षर पहचान को महत्त्वपूर्ण माना गया है। इसके पीछे मान्यता यह है कि लिखित भाषा अक्षरों का समूह है जिसमें प्रत्येक अक्षर एक ध्वनि का प्रतिनिधित्व करता हैं अक्षर को देखकर उससे जुड़ी ध्वनि का उच्चारण कर देना पढ़ना माना जाता हैं यह बुनियादी गलतफहमी है।

भाषा वैज्ञानिकों ने ऐसे कई प्रयोग किए हैं जिनसे पता चलता है कि सक्षम पाठक, दरअसल, अक्षर–दर–अक्षर नहीं चलते, इनमें से एक प्रयोग का हवाला लेख के शुरूआत में दिया गया है।

अक्षरवार पढ़ना?

ऐसे कई प्रयोगों के आधार पर कई भाषा वैज्ञानिकों का विचार है कि अक्षर पहचान और पढ़ने में जमीन आसमान का अंतर है। **दरअसल, पढ़ने का मतलब अक्षरों से जुड़ी ध्वनियां पैदा करना न होकर लिखी हुई चीज का अर्थ निकालना है।** पढ़ने को हम जब इस व्यापक अर्थ में लेते हैं तो स्पष्ट है कि कई विद्यार्थी जो उच्चारण शायद कर भी लेते हों, सही अर्थों में पढ़ नहीं पाते। अक्सर हम कहते हैं कि अमुक बच्चा पढ़कर समझ नहीं पाता। इससे ऐसा लगता है कि पढ़ना और समझना दो अलग–अलग चीजें हैं जबकि पढ़ने की व्यापक परिभाषा में समझना तो पढ़ने का उद्देश्य ही है। इसलिए बिना समझे पढ़ना वास्तव में निरुद्देश्य ही कहा जाएगा।

दरअसल यदि आम पाठक अक्षर–दर–अक्षर पढ़ें तो पढ़ने की गति बहुत कम होगी जबकि हम आमतौर पर काफी तेज गति से पढ़ते हैं। अंग्रेजी भाषा के लिए भाषा वैज्ञानिक पॉल कोलर्स द्वारा की गई एक गणना के मुताबिक अक्षरवार पढ़ने पर अधिकतम 35 शब्द प्रति मिनट पढ़े जा सकते हैं जबकि आम अंग्रेजी पाठक 300 शब्द प्रति मिनट पढ़ता है। इससे स्पष्ट है कि पढ़ने का तरीका यह नहीं हो सकता।

हिन्दी भाषियों के मामले में, शायद इस तरह के प्रयोग नहीं हुए हैं। पढ़ने के अक्षरवार सिद्धांत के हिमायती यह कहते हैं कि सक्षम पाठक अक्सर दो–तीन शब्द एक साथ देख लेते हैं और इस प्रकार से उनकी पढ़ने की गति काफी तेज हो जाती है। इस संबंध में एक दिलचस्प प्रयोग किया गया था। कॉलेज के कुछ विद्यार्थियों को दो शब्दों के अक्षर क्रमवार सिखाए गए। एक बार में दोनों शब्दों का एक–एक अक्षर दिखाया गया, मान लीजिए शब्द ून्फशण और `शुफशग्र है तो पहले ू` फिर न, श, फु, न, फ, श, श, और ण, ग्र दिखाए गए, अब अंत में उनसे इनमें एक ही शब्द बताने को कहा गया तो 57 प्रतिशत सही उत्तर आए, परंतु जब दोनों शब्द बताने की बात आई तो सही उत्तर मात्र 0.2 प्रतिशत रहा (420 में से 1 बार) इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि दो शब्द एक साथ देखकर समझ पाना असंभव है।

इस संदर्भ में एक और तथ्य महत्त्वपूर्ण है। पढ़ते समय हमारे दिमाग की लघु अवधि याददाश्त का उपयोग होता है। इसमें एक समय में अधिक–से–अधिक 4–5 असंबंधित चीजें संग्रह की जा सकती हैं। जब यदि हम अक्षरों को याद रखें तो जब तक शब्द पूरा होगा, तब तक शुरू का अक्षर भूल जाएंगे। इसी प्रकार से जब तक वाक्य पूरा होगा तब तक पहला शब्द भूल जाएंगे। और वास्तव में होता भी यही है जो लोग हिज्जे कर, अक्षर जोड़–जोड़कर पढ़ते हैं वे अंत में कई बार मतलब नहीं समझ पाते। दूसरी बात यह है कि ये लोग अपने दिमाग पर अनावश्यक अतिरिक्त दबाव डालते हैं। हर लिखित अक्षर हमारी आंखों को एक प्रकाश संकेत भेजता है। आंखों के जरिए यह संकेत दिमाग में पहुंचता है। दिमाग में इसे प्रोसेस करके समझा जाता है। यह तो कोई भी मानेगा कि अ का संकेत मिलने से अनार नहीं समझा जा सकता। मतलब अक्षर से मिलने वाले संकेत में कोई अर्थ नहीं होता। यही बात शब्द के बारे में भी कही जा सकती है। यदि देवनागरी से अपरिचित किसी व्यक्ति को अनार शब्द दिखाया जाए या अनार से नावाकिफ व्यक्ति को यह शब्द दिखाया जाए, तो क्या इससे कोई मतलब निकलेगा? पहला व्यक्ति अनार तो जानता है पर यह वही लिखा है उसे क्या मालूम। दूसरा व्यक्ति अ–ना–र पढ़ तो लेगा पर इन सबसे उसे कोई अर्थ नहीं मिलेगा। फिर अर्थ आता कहां से है?

शब्दों से अर्थ तक का रास्ता

यह अर्थ हमारे अंदर होता है। जब कोई व्यक्ति कुछ लिखता है तो उसके दिमाग में कोई अर्थ होता है, जिसे लिखित संकेतों में कागज पर उतारा जाता है। जब हम इन संकेतों को देखते हैं तो अपने पूर्व अनुभवों, भाषा के ज्ञान व सामूहिक समझ के आधार पर अर्थ का पुननिर्माण करते हैं। यदि कोई शब्द हमारे अनुभव के बाहर का होता है तो पहले तो संदर्भ के आधार पर समझने की कोशिश करते हैं। जब संदर्भ से अर्थ स्पष्ट होता, तो कहीं और से मदद लेते हैं– किसी से पूछकर या शब्द कोष के जरिए।

परंतु यदि संकेतों की प्रोसेसिंग अक्षरवार नहीं होती तो फिर कैसी होती है? पिछले कुछ वर्षों में इस संबंध में हमारी समझ में काफी इजाफा हुआ है।

पहली बात तो यह स्पष्ट हुई कि पढ़ते वक्त हम सारी चित्रित जानकारी का उपयोग नहीं करते। हम बहुत चुनावपसंदगी का परिचय देते हुए मात्र कुछ चुनिंदा संकेतों पर ध्यान देते हैं। जैसा कि हमने देखा कि अक्षरों के एक विशेष क्रम (शब्द) को पहचानना ज्यादा आसान होता है बजाय बेतरतीब अक्षरों के, उसी प्रकार से यह भी प्रदर्शित किया जा सकता है कि शब्दों के विशेष क्रम (वाक्य) को पहचानना ज्यादा आसान होगा बजाय बेतरतीब शब्दों के, यह कैसे संभव होता है? कुछ भाषा वैज्ञानिकों का मत है कि जब यह लिपिबद्ध भाषा सार्थक होती है तो इसे ग्रहण करना बहुत आसान होता है। परंतु दिक्कत यह है कि जो व्यक्ति हिज्जे कर कर के पढ़ेगा उस तक यह अर्थ कभी नहीं पहुंच पाएगा और पढ़ना एक दुष्कर कार्य बना रहेगा। आखिर इस दुष्चक्र को कैसे तोड़ा जाए?

फ्रैंक स्मिथ ने अपनी पुस्तक में इस सवाल का जवाब दो तरह से दिया है एक तो वे बताते हैं कि वे कौन से अचूक व आसान तरीके हैं जिनके उपयोग से पढ़ना सीखना लगभग असंभव हो जाएगा (देखें बॉक्स) दूसरा वे बताते हैं कि वह कौन सा मुश्किल तरीका है जिससे पढ़ना सीखना आसान हो सकता है। उनका एवं अन्य कई भाषा वैज्ञानिकों का मानना है कि पढ़ना सीखने का सर्वोत्तम तरीका पढ़ना ही है– पढ़कर ही पढ़ना सीखा जा सकता है। सायकल और उसे चलाने के बारे में बारीक जानकारी हासिल करने का यह अर्थ नहीं कि उक्त व्यक्ति सायकल चला भी लेगा। सायकल चलाना तो उस पर चढ़कर ही सीखा जा सकता हैं। प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री .ष्ण कुमार ने इस संबंध में बहुत महत्त्वपूर्ण बात उठाई है– यदि एक बच्चे को पढ़ना शुरू करने से पहले या कोई रोचक कहानी पढ़ने से पहले, इतना सारा अर्थहीन, निरूदृदेश्य परिश्रम करना पड़े, तो कोई अचरज नहीं की अधिकांश धीरज खो बैठेंगे। उनका कहना है कि स्कूल छोड़ने के अन्य कारणों के अलावा उबाऊ व निरर्थक कवायद भी एक कारण है।

सक्षम पाठक

अब इस प्रश्न पर आते हैं कि आखिर सक्षम पाठक इतनी तेजी से कैसे पढ़ते हैं? दरअसल समस्या यह है कि पढ़ने का काम इतनी तेज गति से और अचेतन रूप से होता है कि यह पक्की तौर पर बताना मुश्किल है कि इस दौरान क्या कुछ घट जाता है। इसे जान पाने का एक ही तरीका बच जाता है– कि पाठकों को देखें व पता लगाएं कि वे किस तरह की गलतियां करते हैं और इन गलतियों की व्याख्या से कुछ समझने की कोशिश करें। वैसे एक और भी तरीका अपनाया गया है कि लिखित भाषा में कुछ इस तरह से बदलाव कर दिया जाए कि सक्षम पाठक को भी धीमा होना पड़े और इस स्थिति में उनका अध्ययन किया जाए। बच्चों द्वारा पढ़ते समय की गई गलतियों का भी काफी अध्ययन किया गया है।

मसलन पॉल कोलर्स ने अपने अध्ययन में अंग्रेजी भाषा में ही शब्दों को उल्टा लिखकर या हरेक अक्षर को सिर के बल लिखकर या वाक्य को उल्टा लिखकर प्रयोग किए, उन्होंने पाया कि जब कोई व्यक्ति किसी शब्द को गलत पढ़ता है तो उसकी जगह वह किसी अन्य शब्द का इस्तेमाल इस तरह करता है कि प्रायः संज्ञा की जगह संज्ञा, क्रिया की जगह क्रिया, ही रखता है। इससे उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि पढ़ते समय हम सिर्फ अक्षर नहीं देखते। क्योंकि यदि अक्षरों को देख–देखकर पढ़ने की बात होती तो ये व्यक्ति मूल शब्द के जैसा दिखने वाला दूसरा शब्द रख देते। **कोलर्स का कहना है कि पढ़ते समय हम आने वाले शब्दों का अनुमान लगाते चलते हैं।** व्याकरण के अपने कामकाजी ज्ञान के आधार पर हम जानते हैं कि कहां संज्ञा की अपेक्षा करनी चाहिए और कहां क्रिया की। यदि हम संज्ञा को गलत पढ़ते हैं तो यह जानते हुए कि वाक्य में उस जगह संज्ञा आनी चाहिए। हम उसके स्थान पर किसी दूसरी संज्ञा का उपयोग कर देते हैं और आगे बढ़ जाते हैं। इस तरह से अनुमान लगाते हुए चलने में हमें पूरी लिपि को ध्यान से नहीं देखना होता। फिर हमें पढ़ते हुए पूरी बात का संदर्भ मालूम होता है। हमें अंदाज होता है कि क्या–क्या हो सकता है। इस प्रकार से व्याकरण की दृष्टि से और संदर्भ की दृष्टि से अगले शब्द या वाक्यांश को लेकर हमारी कुछ अपेक्षाएं होती हैं। इन अपेक्षाओं के आधार पर हम अटकल लगाते हैं। हिंदी भाषा में 2 लाख शब्द हो सकते हैं पर वहां उस स्थान पर इनमें से कोई भी शब्द अचानक नहीं टपक सकता। इस तरह से हमारी अपेक्षा में जो दो–चार संभावनाएं होती है उनमें से हमें चुनाव करना होता है कि कौन सी सही है। इस चुनाव के लिए अक्षरवार देखने की जरूरत नहीं। आंशिक जानकारी मिलते ही हम तय कर सकते हैं कि हमारा अनुमान सही था या गलत! यदि सही था, तो आगे का अनुमान को ठीक करके, अर्थ में यथोचित परिवर्तन करके आगे बढ़ते हैं। अतः मात्र कुछ संकेतों के आधार पर अपने पूर्व अनुभव, भाषा ज्ञान व संदर्भ के तहत हम अर्थ समझते चलते हैं।

अपनी गलतियों की सीख

यदि कोई शब्द गलत पढ़ लिया गया और इससे अर्थ नहीं बनता तो? या गलत शब्द के कारण अर्थ का अनर्थ हो जाए तो?

पहली स्थिति में पाठक वाक्य या उस हिस्से का पुनरावलोकन करता है ताकि अर्थ ग्रहण कर सके। दूसरी स्थिति में पाठक आगे बढ़ जाता हैं पर जब यह अनर्थ आगे की बातों से मेल नहीं खाता, तो उसे अपने आप समझ में आ जाता है कि कुछ गलती हुई है। उदाहरण के लिए यह वाक्य देखें, 'वह तेज धूप में भागता हुआ घर गया।' यदि कोई व्यक्ति गलती से इसे यों पढ़ दे वह तेज धूम में भागता हुआ मर गया तो उसके पास फिलहाल यह समझने का कोई तरीका नहीं है कि उसने गलती की है। पर अगला वाक्य, 'थोड़ी देर सुस्ताकर उसने एक गिलास ठंडा पानी पिया,' उसे बता देगा कि कहीं कुछ गलती हुई है। बशर्ते कि उसने पिछले वाक्य का अर्थ ग्रहण किया हो।

अर्थ समझने के उद्देश्य से पढ़ने का यह एक महत्त्वपूर्ण पहलू है कि इसमें खुद की गलतियां पकड़ने का तरीका यह फीडबैक निहित है।

बच्चे भी इस तरीके का उपयोग करते हैं, बशर्ते कि उनको रोका न जाए, दरअसल जब अक्षर–दर–अक्षर पढ़ने को कहा जाता है, तो अर्थ पर से जोर हट जाता है। बच्चे को अनुमान लगाने व अपने अनुमानों की सत्यता जांच करने, उसे सुधारने की महत्त्वपूर्ण क्रियाओं से वंचित कर दिया जाता है। बच्चे का सारा ध्यान अक्षरों के उच्चारण पर लगा रहता है और पढ़ने की वास्तविक क्रिया टलती रहती है और कई मामलों में हमेशा के लिए टल जाता है।

नतीजे

इससे हम क्या सबक लें? पहला सबक तो यह है कि पहले दिन से ही पढ़ने की सामग्री सार्थक होना जरूरी है और यह सार्थकता उस विद्यार्थी के संदर्भ में आंकी जानी चाहिए जो उक्त सामग्री का पाठक है। इस संदर्भ में यह तथ्य महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि जो सामग्री पढ़ने के लिए दी जा रही है वह किस भाषा में है क्या बच्चे उस भाषा से परिचित हैं? या कहीं यह भाषा एकदम अपरिचित तो नहीं? तीसरी बात यह है कि भाषा को एक समग्र रूप में देखने पर ही वह सार्थकता पाती है। उसे अक्षर, उच्चारण, व्याकरण आदि में बांट देने से यह सार्थकता नष्ट होती है। वास्तव में इन अलग–अलग चीजों का कोई क्रम भी नहीं है, जिसके अनुसार इनका अध्ययन किया जाए। दरअसल भाषा का समग्र रूप तो उसके इस्तेमाल में उभरता हैं चाहे वह लिखने में हो, बोलने में हो या पढ़ने में, भाषा अधिकाधिक उपयोग का अवसर बनाना ही एकमात्र रणनीति होगी।

पढ़ना कैसे सिखाया जाय?

छोटे बच्चों के अध्यापक को जो तमाम चुनौतियां झेलनी पड़ती हैं, पढ़ना सिखाना शायद उनमें सबसे बड़ी और कठिन चुनौती है। वह सबसे कठिन इसलिए है क्योंकि पढ़ना एक सादा कौशल नहीं है। उसमें कई कौशल और बोध–क्षमताएं शामिल हैं। पढ़ना सिखाने की कोई एक अचूक विधि नहीं है। हर विधि की अपनी सीमाएं हैं और अध्यापक को यह कोई नहीं सुझा सकता कि उसकी परिस्थिति में सही उपाय क्या है। फिर भी, पढ़ने का शिक्षण एक स्फूर्तिवान काम है क्योंकि बच्चे के जीवन का बहुत कुछ उस पर निर्भर है। यदि एक बार आप बच्चे को पढ़ने और पुस्तकों से सफलतापूर्वक जोड़ सकें तो फिर उसके लिए संभावित उपलब्धियों का कोई अंत नहीं है।

तो असली बात यह है कि पढ़ने का शिक्षण 'सफलतापूर्वक' कैसे किया जाए? यहां हमें दो क्षण रुक कर अपने इर्द–गिर्द फैली भीषण विफलता पर विचार करना चाहिए। लाखों बच्चे हर साल पढ़ना सीखते हैं, लेकिन, इनमें से बहुतेरे पढ़ने का टिकाऊ कौशल प्राप्त नहीं कर पाते। बहुत से स्कूल की परीक्षा पास कर लेते हैं, लेकिन पढ़ने में रुचि का विकास नहीं कर पाते। कई बच्चे आराम–से पढ़ते दिखते हैं, पर वास्तव में पढ़े हुए को ज्यादा समझ नहीं पाते। काफी हद तक विफलताओं का दोष हम पढ़ने के कमज़ोर शिक्षण को दे सकते हैं।

पढ़ने का स्वस्थ कौशल बच्चे के समग्र विकास में क्या भूमिका निभाता है, यह किसी अध्यापक को याद दिलाने की जरूरत नहीं। लेकिन ऐसा लगता है कि बहुत कम अध्यापक यह जानते हैं कि 'पढ़ने का स्वस्थ कौशल' किसे कहेंगे और उसका विकास कैसे किया जा सकता है? इस अध्याय में पढ़ने का स्वस्थ कौशल हम उन कौशलों के समूह को मानेंगे जो लिखी या छपी भाषा को अर्थ से जोड़ने में बच्चे की मदद करते हैं। जब तक एक बच्चा पढ़ी हुई सामग्री को समझने या पहले से ज्ञात किसी चीज से जोड़ने में असमर्थ रहता है तब तक हम उसकी पढ़ने की क्षमता को स्वस्थ नहीं कह सकते। **इस पुस्तक के संदर्भ में, पढ़ने की परिभाषा हम 'लिखे हुए शब्दों में अर्थ ढूँढ़ने की प्रक्रिया' के रूप में कहेंगे।**

स्थिति फिलहाल यह है

यदि हम यह परिभाषा मंजूर कर लें तो जल्दी ही यह देख सकेंगे कि आंगनवाड़ियों (या किंडरगार्टनों) और प्राइमरी स्कूलों में हो रही अनेक चीजें उचित नहीं हैं। उदाहरण के लिए वर्णमाला को रटना या कहानी को शब्दशः जोर से दुहराना, हमारी परिभाषा के हिसाब से सही गतिविधियां नहीं हैं। ऐसा करते समय बच्चे लिखित भाषा को किसी अर्थ से नहीं जोड़ पाते। वर्णमाला के अक्षरों का अलग से कोई अर्थ नहीं होता। कई स्कूलों में अक्षरों को 'कमल' और 'खरगोश' जैसे रूढ़ शब्दों से इस तरह बांध दिया जाता है कि फिर बच्चे इन अक्षरों को किसी भी शब्द में पाकर 'कमल' का 'क' कहकर पहचान पाते हैं। यदि कहानी हरेक शब्द को तोड़कर पढ़ी जाए तो उसका कोई खास अर्थ नहीं निकलेगा– इस तरह कहानी से संबंध बनाना भी संभव नहीं है। कुछ लोग यह दलील दे सकते हैं कि ये गतिविधियां भले तत्काल सार्थक न हों पर आगे चलकर अर्थग्रहण के साथ पढ़ने की बुनियाद बन सकती है। शायद इस दलील में थोड़ी–बहुत सच्चाई हो, पर यह सच्चाई तभी लागू हो सकती है जब सारे बच्चे स्कूल में इतने वर्ष टिकें कि वे सार्थक रूप से पढ़ना सीख लेने का अवसर पा सकें। उन बच्चों के बारे में भी सोचना ज़रूरी है जो एक ध्वनि को दर्जनों बार दुहराने, अक्षर की नकल उतारने, शब्दों को अलग करके जोर जोर से बोलने की कवायद से बुरी तरह निराश और

कुंठित हो जाते हैं। हम सब जानते हैं कि बच्चों को ऐसी गतिविधियां भाती हैं, जिनका फल तुरंत मिलता हो। बहुत आगे चलकर लाभ मिलने की उम्मीद थोड़े ही बच्चों को प्रेरित कर सकती है। और कई बच्चों के लिए तो भविष्य स्कूल में रहने की भी गारंटी नहीं देता। तमाम अन्य कारणों के साथ साथ शुरू से मिली विफलता और निराशा स्कूल से इन बच्चों को विदा कर देती है।

अतः हमें इन बुनियादी सवाल का सामना करना ही पड़ेगा कि पढ़ने की आरंभिक शिक्षा को सार्थक कैसे बनाएं? आगे के पृष्ठों में अध्यापकों के करने लायक कुछ चीजें सुझाई गई हैं। जो लोग पुरानी विधियों के आदी हैं, उन्हें ये चीजें एकदम चकरा देने वाली या असंभव लग सकती हैं। पर यदि पुरानी विधियाँ ठीक–ठाक होतीं तो हमें नई विधियों की जरूरत ही न पड़ती। हमें न केवल नई विधियों की बल्कि संपूर्णतया नए परिप्रेक्ष्य की जरूरत इसलिए है क्योंकि पुरानी विधियां ठीक से काम नहीं दे रही हैं।

शुरुआत किताबों से

'लैश कार्ड', चार्ट या लकड़ी के अक्षरों जैसी प्रचलित सामग्री की तुलना में पढ़ने की शुरुआत किताबों से करना कहीं अच्छा और जरूरी है। हमारा उद्देश्य तो आखिर यही है न कि बच्चे आगे चलकर किताबें पढ़ सकें! चार्टों और कार्डों जैसी चीजें कभी–कभी काम आ सकती हैं पर वे पढ़ना सीखने की वैसी तेज और स्थायी इच्छा पैदा नहीं कर सकतीं जैसी किताबें कर सकती हैं। न की उन्हें पढ़कर बच्चे को अपनी उपलब्धि का वैसा आभास मिल सकता है जैसा कोई किताब दे सकती है। लेकिन पहले हमें यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि हम किस तरह की किताबों की चर्चा कर रहे हैं और उन्हें किस तरह इस्तेमाल करना है?

पढ़ना सिखाने के लिए उपयोगी पुस्तकें वही हैं जिनकी चर्चा पिछले अध्याय में 'बात' के अंतर्गत हो चुकी है। किताबें आप खुद भी बना सकते हैं। साफ अक्षरों में हाथ से लिखी और रेखाचित्रों या तस्वीरों (जिन्हें बच्चे बना सकते हैं) से सजाई गई कोई भी कहानी आपके संग्रह में स्थायी रूप से शामिल हो सकती है। इसी तरह आप कविताओं, गीतों और बच्चों के अपने खेलगीतों के संग्रह बना सकते हैं।

किताब पढ़कर सुनाना

इस बात का हमेशा ध्यान रखिए कि बच्चे दस से ज्यादा न हों और फर्श पर आपके गिर्द बैठे हों। बाकी बच्चों को इस वक्त कोई अन्य काम देना जरूरी है। आपके गिर्द बैठे बच्चों में से हरेक को किताब के पन्ने आसानी से नज़र आने चाहिए। किताब में जो लिखा है उसे पढ़ते वक्त आप उसमें अपना पुट अवश्य देते जाइए। कुछ किताबों में कहानी या कोई सामग्री खूब विस्तार से प्रस्तुत की गई होती है। एक लंबी कहानी को ज्यों का त्यों पढ़ देने से काम नहीं चलेगा। कहानी आपको इतनी अच्छी तरह आनी चाहिए कि आप उसे छोटा करके अपने शब्दों में सुना सकें। इसके विपरीत यदि हर पृष्ठ पर एक या दो पंक्तियां ही लिखी हैं तो आप कुछ विवरण जोड़ सकते हैं। यह भी आवश्यक है कि आप चित्र में दिए गए विवरण बच्चों को दिखाइए और उन पर इत्मीनान से बात कीजिए।

'पढ़ना' क्या है?

जो लोग पढ़ नहीं सकते उनके लिए पढ़ना एक पहेली है। तीस साल पहले विशेषज्ञों को भी यह नहीं मालूम था कि जब बच्चा पढ़ना सीखता है तो वह दरअसल करता क्या है? अपने अनुभव और परंपरा के आधार पर अध्यापकों ने कुछ 'विधियां' खोज रखी थीं, जैसे 'वर्णमाला' विधि, 'उच्चारण' विधि, 'शब्द' विधि आदि। इनमें से कोई 'विधि' पढ़ने की प्रक्रिया की जानकारी पर आधारित नहीं थी। ये 'विधियां' आज तक लोकप्रिय बनी हुई हैं।

अब यह माना जाता है कि पढ़ने की प्रक्रिया में अंकित सूचना की बानगी ग्रहण करना महत्वपूर्ण है। हमारी आंखे जब अक्षरों, विराम चिह्नों, शब्दों और शब्दों के बीच छोड़ी गई जगहों का मुआयना करती हैं तो

हमारा मस्तिष्क इस ग्राफिक (हाथ से लिखी गई या छपी हुई)सामग्री की संपूर्ण मात्रा पर नहीं देता यदि ऐसा होता तो छोटी छोटी सूचना पर गौर करने की मस्तिष्क की क्षमता पर अत्यधिक बोझ पड़ता और अधिकांश लोग जिस रतार से पढ़ते हैं वह असंभव हो जाती। पारंपरिक विधियों से पढ़ना सीखने वाले कई बच्चों के साथ यही होता है। वे हर शब्द को अक्षरों की छोटी इकाइयों में तोड़ते हैं और इस तरह शब्दों का अर्थ ग्रहण करने की मस्तिष्क की क्षमता पर बहुत ज्यादा बोझ डाल देते हैं। एक प्रवीण पाठक की आंखें ऐसा बोझ नहीं पड़ने देतीं क्योंकि वे पन्ने पर अंकित ग्राफिक सूचनाओं के एक सीमित, चुने हुए अंश से जूझती हैं। प्रवीण पाठक किसी अक्षर के पूरे आकार पर ध्यान नहीं देता है, न ही वह एक शब्द के सारे अक्षरों या एक वाक्य के सारे शब्दों पर ध्यान देता है। **पढ़ते समय उसकी आंखें अंकित सामग्री के एक छोटे–से अंश पर गौर करती हैं। शेष भाग वह समझदार अनुमान के जरिए ग्रहण करता हैं। अनुमान का आधार होता है अक्षरों की आ.तियां, शब्द, उनके अर्थ उनके संयोजन और आम दुनिया से पाठक का पहले से मौजूद परिचय।**

पढ़ना एक एकाकी प्रक्रिया नहीं है, उसमें कई प्रक्रियाएं शामिल हैं। पढ़ते वक्त भाषा के उपयोग से जुड़े तीन तरह के संकेत हमारे ध्यान में आते हैं।

1. अक्षरों की आकृतियां और उनसे जुड़ी ध्वनियां;
2. वाक्य विन्यास (जैसे विशेषण का संज्ञा से पहले आना);
3. शब्दों के अर्थ।

भाषा का इस्तेमाल करते करते हम इन तीनों तरह के संकेतों से जुड़ी कुछ अपेक्षाओं के आदी हो जाते हैं। ये अपेक्षाएं ही अनुमान या भविष्यवाणी के आधार पर छपी हुई सामग्री का वह अंश पूरा करने में हमारी मदद करती हैं जिसे हमारी तेज रतार आंखों ने छोड़ दिया था।

इस तरह किताब पढ़ते वक्त प्रश्न पूछना या किसी दूसरी तरह से परीक्षा लेना ठीक नहीं है। कहानी पूरी हुई तो हुई, अब कोई और गतिविधि शुरू कीजिए। बच्चे स्वयं कुछ कहना या पूछना चाहें तो दूसरी बात है, लेकिन एक अध्यापक के तौर पर आप किताब पढ़कर सुनाने के अवसरों को प्रश्नों से दूर रखें।

यदि हर बच्चे को हर हते तीन बार इस तरह किताब सुनने को मिले तो आप पाएंगे कि बच्चे जल्दी ही आपकी पढ़ी किताबों पर बात करना शुरू कर देंगे। कुछ ही समय में वे चित्रों और कहानी से इतने परिचित हो जाएंगे कि वे आपके पढ़ने का अनुमान लगा सकेंगे। इसी अनुमान के सहारे वे एक दिन किताब को स्वयं पढ़ सकेंगें तब तक उन्हें किताब की सारी बातें ज्ञात हो चुकी होगी और वे इस चीजों से तरह तरह के संबंध बना चुके होंगे। जब वे किताब को पढ़ेंगे– एक पृष्ठ पर दिए गए सारे शब्द या शब्दों के सारे अक्षर जाने बगैर–तो वे उससे अर्थ के कई स्तरों पर जुड़ सकेंगे।

कविता सुनाना और गाना

यदि आपने पिछले पृष्ठ पर दिया गया छोटा सा लेख 'पढ़ना क्या है?' पढ़ा है तो आपने यह समझ लिया होगा कि पढ़ने की कुंजी अनुमान लगाने का कौशल है। इस कौशल के विकास में कविता आश्चर्यजनक योगदान कर सकती है। नियमित रूप से कविताएं सुनकर छोटे बच्चे भाषा की बुनियादी संरचनाएं ग्रहण कर लेते हैं। कविता इसके लिए विशेष रूप से उपयोगी इसलिए है क्योंकि उसे याद रखना आसान होता है। कविता याद रखने के लिए छोटे बच्चों को कोई विशेष प्रयास नहीं करना पड़ता। बार बार सुनने, मजा लेने और दुहराने से कविता अपने आप याद हो जाती है।

अध्यापक के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि अच्छी कविताओं का चुनाव कैसे करें और उन्हें कहां तलाश करें। अधिकांश पाठ्यपुस्तकों में दी गई कविताएं प्रायः बहुत घटिया स्तर की होती हैं और भाषा के

विकास की दृष्टि से उनकी उपयोगिता बहुत कम होती हैं। इसी तरह हिंदी की मासिक पत्रिकाओं में छपने वाली अधिकांश कविताएं नि.ष्ट होती है। **पाठ्यपुस्तकों और पत्रिकाओं की ज्यादातर कविताएं उबाऊ और एक सतही अर्थ में आदर्शवादी होती हैं। उनकी वाक्य रचना और शब्दावली .त्रिम होती है। उनमें रोजमर्रा की भाषा का पुट नहीं होता। यही कारण है कि वे भाषा सीखने के साधन के रूप में विशेष उपयोगी नहीं होतीं।**

बच्चों में पढ़ने के कौशल की नींव डालने के लिए एकदम अलग किस्म की कविताएं चाहिए। ऐसी कुछ कविताएं अगले पृष्ठों पर दी गई हैं। निश्चय ही अध्यापक स्वयं ऐसी अन्य कविताएं तलाश सकते हैं पर इसके लिए उन्हें काफी मेहनत करनी होगी। भाषा के स्वाभाविक और खेल जैसे प्रयोग के लिए अपनी दृष्टि दौड़ानी होगी। महज नैतिक सीख देने वाली कविताओं से दूर रहना होगा।

एक काम कोई भी अध्यापक आसानी से कर सकता है– यह है बच्चों के उन गीतों को लिखकर रखना जिन्हें वे कूदते, फांदते, रस्सी कूदते और गेंद से खेलते समय गाते हैं ये खेलगीत पारंपरिक हैं और इन्हें शहर में ढूंढ़ना कुछ कठिन होगा, पर थोड़ा प्रयास करके हम ऐसे गीतों का संग्रह तैयार कर सकते हैं। संग्रह एक या कई छोटी किताबों की शक्ल ले सकता है जिनमें हर पृष्ठ पर एक गीत सुंदर अक्षरों में लिखा हो और साथ में हाथ से बनाई या पत्रिका से काटी गई कोई तस्वीर हो। यह जरूरी नहीं कि तस्वीर गीत में कही गई बात को हू–ब–हू पेश करती हो। इतना काफी है कि तस्वीर में गीत का भाव या उससे किसी प्रकार जुड़ा दृश्य प्रकट होता हो। आप इस तरह की कई पुस्तकें तैयार कर सकते हैं। लगभग 16 पेज की ये पुस्तकें सादे कागज से बन सकती हैं। यदि आप खर्चा उठा सकें तो ड्रॉइंग के कागज से बनी किताब ज्यादा चलेगी और आपको हर साल वही किताब फिर से नहीं बनानी पड़ेगी।

कविता की किताब पढ़ने का ढ़ंग वही है जो अन्य किताबे पढ़ने का है– यानी बच्चों को अपने चारों ओर बैठाएं और किताब को बीच में रखें। दो–तीन बार पढ़ने के बाद आप किताब के बगैर कविता गाकर सुनाएं और बच्चे आपके साथ गाएं। यदि कविता अच्छे स्तर की हुई तो वे जल्दी ही उसे याद करके गा सकेंगे। बाद में जब वे उसे किताब से पढ़ेंगे तो शब्दों का आसानी से अनुमान लगा सकेंगे। छह वर्ष के बच्चे एक पूरी कविता कागज या स्लेट पर मजे से उतार सकते हैं, ओर अगर तब तक वह उन्हें याद हो चुकी हो तो कुछ ही दिनों में कविता के शब्द पहचानने में कोई खास कठिनाई नहीं होगी।

1. ईलम डील खेलो
आओ खेलो ईलम डील।
गेंद जो उछाली ले के
भाग गई चील।
रस्ते में पड़ी एक
बहुत बड़ी झील।

जिसके बीचों बीच में थी
ऊंची सी कील।
चील ज्यों ही बैठी उस पर
टूट गई कील।
औंधे मुंह पानी में

जाके गिरी चील।
गेंद रही तैरती और
डूब गई चील।

ईलम डील खेलो आओ
खेलो ईलम डील।

—निरंकार देव सेवक

2. बहुत जुकाम हुआ नन्दू को
एक रोज वह इतना छींका
इतना छींका इतना छींका
इतना छींका इतना छींका
सब पत्ते गिर गए पेड़ के
धोखा हुआ उन्हें आंधी का

— राम नरेश त्रिपाठी

3. नारंगी रंग की नारंगी
बेच रहा फलवाला गाकर
और बजाता है सारंगी

चमक रहा है छिलका पीला
सुंदर फल है बड़ा रसीला
प्यास बुझे मन खुश हो जाता
ढीली तबियत होती चंगी

— सुधा चौहान

4. कितनी लंबी है सड़क
कितना ऊंचा है पहाड़
कितनी छोटी है चिड़िया
पेड़ है कितना बड़ा

तेज कितनी है नदी
पत्थर कितना गोल है
घास है कितनी हरी
फूल कितना लाल है

—कृष्ण कुमार

5. लड़कों इस झाड़ी के भीतर
छिपा हुआ है जोड़ा तीतर
फिरते थे यह अभी यहीं पर
चारा चुगते हुए जमीं पर

एक तीतरी है इक तीतर
हमें देख कर भागे भीतर
आओ इनको जरा डरा कर
ढेला मार निकालें बाहर

यह देखो वह दोनों भागे
खड़े रहो चुप बढ़ो न आगे

अब सुन लो इनकी गिटकारी
एक अनोखे ढंग की प्यारी
तीइत्तड़ तीइत्तड़ तीइत्तड़ तीइत्तड
नाम इसी से इनका तीतर

—श्रीधर पाठक

6. लाल टमाटर लाल टमाटर, मैं तो तुमको खाऊंगा।
अभी न खाओ मैं कुछ दिन में और अधिक पक जाऊंगा

लाल टमाटर लाल टमाटर, मुझको भूख लगी
भूख लगी है तो तुम खा लो यह गाजर मूली सारी।।
लाल टमाटर लाल टमाटर, मुझको तो तुम भाते हो।
तुमको जो अच्छा लगता है उसको तुम क्यों खाते हो।।

लाल टमाटर लाल टमाटर, अच्छा तुम्हें न खाऊंगा।
मगर तोड़ कर डाली पर से अपने घर ले जाऊंगा।।

—निरंकार देव सेवक

7. एक, दो तीन चार।
आओ चलें कुतुब मीनार।
पांच, छः, सात, आठ
देखें चल के राजघाट
नौ, दस, ग्यारा, बारा
चलें चांदनी चौक फव्वारा।
तेरा चौदा, पन्द्रा, सोला
कनाट प्लेस में मुर्गा बोला।

—सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

8. आओ एक बनाएं चक्कर
फिर उस चक्कर में इक चक्कर
फिर उस चक्कर में इक चक्कर
फिर उस चक्कर में इक चक्कर
और बनाते जाएं जब तक
ऊब न जाएं थक कर

फिर सबसे छोटे चक्कर में
म्याऊं एक बिठाएं
और बाहरी हर चक्कर में
चूहों को दौड़ाएं।
दौड़–दौड़ कर सभी थकें
हम बैंठे मारे मक्कर,
नींद लगे हम सो जाएं
वे दखें उझक–उझक कर।

आओ एक बनाएं चक्कर

–सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

9. कितनी बड़ी दीखती होंगी मक्खी को चीजें छोटी
सागर–सा प्याला भर जल, पर्वत–सी एक कौर रोटी।

खिला फूल गुलदस्ते जैसा कांटा भारी भाला–सा
तालों का सूराख उसे होगा बैरगिया नाला–सा

हरे भरे मैदान की तरह होगा एक पीपल का पात
पेड़ों के समूह–सा होगा बचा खुचा थाली का भात।
ओस बूंद दरपन–सी होगी सरसों होगी बेल समान
सांस मनुज की आंधी–सी करती होगी उसको हैरान

–ठाकुर श्रीनाथ सिंह

10. गोलू के मामा, आए
सब देख रहे मुंह बाए

मुंह उनका है गुब्बारा
था किसने उन्हें पुकारा,
नारंगी उनको भाए
गोलू के मामा आए।

वे पूरब से हैं आते
गोलू से गप्प लड़ाते

हौले से उसे सुला कर
फिर पच्छिम को उड़ जाते।
सच बात अगर मैं बोलूं
तो पोल पुरानी खोलूं
सूरज का फटा पजामा
सिलते गोलू के मामा।

पर जाने क्या जादू है
रहते हैं सब पर छाए,
सब देख रहे मुंह बाए
गोलू के मामा आए

ये बड़े दिनों में आए
झोले में हैं कुछ लाए
हमको तो पता चले तब
जब गोलू हमें खिलाए।

लो दिखा–दिखा नारंगी
बन जाते एक बताशा,
यूं सबको देते झांसा
करते ये खूब तमाशा।

हर पंद्रह दिन में कैसे
आ जाते बिना बुलाए
मैं देख रहा मुंह बाए
गोलू के मामा आए।

–रमेश चन्द्र शाह

यहां दी गई सभी कविताएं और इनकी तरह की कई और कविताएं नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'महके सारी गली गली' में संकलित है।

किताबें बनाना

कक्षा में (स्कूल में ही नहीं) किताबें रखना अच्छी बात है पर किताबें 'बनाना' भी जरूरी है। बच्चों को पढ़ना सिखाने के लिए सबसे अच्छी सामग्री अध्यापक ही बना सकता है। यह सामग्री हर बच्चे के लिए अलग से भी बनाई जा सकती है और सामूहिक रूप से भी। इस सामग्री का मुख्य स्रोत वे तमाम गतिविधियां हैं जिनकी चर्चा हम कर चुके हैं, जैसे कहानियां सुनाना व पढ़ना, चित्रों पर चर्चा करना, कविता गाकर सुनाना आदि। कागज कैसा भी हो सकता है। यदि बच्चों के पास कापियां हैं तो उन्हें ही नीचे समझाए गए तरीके से किताबों में बदला जा सकता है। यदि अध्यापक या स्कूल कागज खरीदने की स्थिति में हो– सादा भी और ड्राइंग का भी–तो कई और चीजें संभव हैं।

शुरुआत पांच वर्ष के आसपास कभी भी हो सकती है। यह याद रखना जरूरी है कि 'कक्षा के सारे बच्चे कभी एक साथ या एक रतार से पढ़ना शुरू नहीं कर सकते।' अंतर काफी बड़ा हो सकता है। कुछ बच्चों में पांच वर्ष की आयु में ही बहुत रुचि और सामर्थ्य हो सकती है। ये बच्चे सात वर्ष की आयु तक पढ़ने के कौशल अच्छी तरह प्राप्त कर लेंगे। दूसरी ओर कुछ बच्चों को आठ वर्ष की आयु में भी दिक्कत महसूस हो सकती है। इन पृथक रतारों की चिंता ऐसे अध्यापक को नहीं सताएगी जो अपने बच्चों को निकट से जानता हो। उसे इतना भर करना होगा कि हर बच्चे की प्रगति पर विचार करे और कुछ बच्चों की विशेष कठिनाइयों का ध्यान रखे। **यह एक चुनौती भरा काम है और जहाँ बच्चों की संख्या अधिक हो, वहां तो यह असंभव है।** वहाँ केवल सीमित सफलता की उम्मीद की जा सकती है।

कहानियों, कविताओं और तस्वीरों आदि से संबंधित गतिविधियों से उपजी बातचीत से हरेक बच्चे के लिए एक शब्द या वाक्य चुन लीजिए और उसे बच्चे की कापी या एक कागज पर साफ–साफ लिख दीजिए। यह जरूरी है कि शब्द या वाक्य उस कहानी या चित्र का प्रतिनिधित्व करता हो जिसके संदर्भ में बातचीत हुई थी। तभी उसका बच्चों के लिए कोई तात्कालिक अर्थ होगा। आपने हर बच्चे के लिए जो लिखा है उसे पढ़ कर सुनाएं। फिर बच्चे से कहें कि वह आपकी लिखावट को नीचे उतारे या उसी पर लिखे।

रोज जब आप बच्चे को एक नया शब्द या वाक्य लिख कर दें तो पिछली सामग्री को जरूर दुहराएं। बच्चे से कहिए कि पिछले शब्दों या वाक्यों को पढ़कर सुनाए और जब उसे दिक्कत हो तो आप पढ़कर सुनाइए। साथ ही जब 'रोज नया वाक्य लिखने और पुराने वाक्य सुनने के लिए बच्चे के साथ बैठें तो वाक्यों को थोड़ा विस्तार देकर उन पर बातचीत करना ना भूलें।' उदाहरण के लिए यदि एक पिछला वाक्य कुत्ते के बारे में है तो इस तरह के एक–दो प्रश्न और पूछिए कि वह कहां गया था, आज सुबह वह कहां है? आखिरी बात यह है कि बच्चे के पढ़ने में छोटी छोटी गलतियां न निकालिए। यदि वाक्य है 'बारिश आई' और बच्चे ने पढ़ा, 'बारिश हुई' तो इस गलती को ठीक करने की जरूरत नहीं है क्योंकि उससे वाक्य के अर्थ का कोई नुकसान नहीं हुआ।

कक्षा की हर कापी धीरे–धीरे कहानियों या सोच–विचार की एक किताब बन जाएगीं आप जब बच्चे की लिखाई रोज देखेंगे तो पाएंगे कि अलग अलग अक्षरों में उसे एक बराबर कठिनाई नहीं होती। कुछ अक्षर या चिह्न ज्यादा अभ्यास मांगते हैं और उनका अभ्यास उसी पृष्ठ पर जितनी बार चाहे किया जा सकता है। लक्ष्य यह है कि जो भी भाषा आप सिखा रहे हैं उसकी वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर को लिखने और पहचानने में बच्चा प्रवीण हो जाए।

कुछ लोग सोचते हैं, और शायद उन्होंने आपको बताया भी हो, कि हिन्दी वर्णमाला अंग्रेजी से एकदम भिन्न है। वे कहते हैं कि हिन्दी की मात्राएं अलग से सीखना जरूरी है और शुरू में बच्चों को केवल ऐसे थोड़े–से शब्द दिए जाने चाहिए जिनमें कोई मात्रा नहीं लगती। यह दृष्टिकोण एक मान्यता पर आधारित है

और यह कतई जरूरी नहीं कि हर अध्यापक इस मान्यता से सहमत हो। इस मान्यता के कारण प्रवेशिकाओं के लेखक मात्राओं से परहेज करते हुए प्रायः बड़ी अजीबोगरीब रचना कर बैठते हैं। उदाहरण के तौर पर ये दो वाक्य जिनमें अर्थ की तलाश करना व्यर्थ है, हिन्दी की प्रवेशिकाओं में बहुत लोकप्रिय रहे हैं :

थप रतन। घर थप । घर थप रतन।

मगर इधर मत रख। खबर उधर मत रख।

'इस बात का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है कि छोटे बच्चों को मात्राओं से दूर रखा जाए।' पढ़ने की सार्थक सामग्री में मात्राएं हो तो इसका बच्चों की प्रगति पर कोई बुरा असर नहीं पड़ेगा। हां, मात्राओं को लिखने या आगे चलकर लेखन में मात्राओं के इस्तेमाल का विशेष अभ्यास कराना दूसरी बात है।

कुछ गतिविधियां

फिर से कहना जरूरी है कि ये गतिविधियां सुझाव मात्र हैं। पढ़ना सीखने की प्रक्रिया को मजेदार बनाने के लिए आप क्या क्या चीजें कर सकते हैं, इसकी ओर संकेत करने के लिए ये गतिविधियां यहां दी गई हैं। इनकी उपयोगिता बच्चों की प्रगति के भिन्न–भिन्न स्तरों के हिसाब से आपको तय करनी होगी उनमें थोड़ा–सा परिवर्तन करके उन्हें किसी भी आयु या क्षमता के अनुरूप बनाया जा सकता है।

एक

फर्श पर नक्शा

अगर आपकी कक्षा में फर्नीचर नहीं है तो अच्छा है, नहीं तो बच्चों को बरामदे, पिछवाड़े या किसी और खुली जगह में ले जाइए जहाँ वे आसानी से घूम–फिर सकें।

दौड़ने, चलने, एक पैर से कूदने, एक कदम छोड़कर कूदने, घोड़े की तरह कूदने, लंबे डग भरने, आधे कदम लेने, उल्टे चलते, और बगल चाल के लिए अलग अलग प्रतीक चुन लीजिए। ध्यान रखें कि प्रतीक बहुत सरल हों और आसानी से याद किए जा सकें। जैसे दौड़ने के लिए : ⟶ एक कदम छोड़कर कूदने के लिए:

अब जिस जगह आप यह गतिविधि कर रहे हैं उसके हर कोने के लिए प्रतीक नियत कर दीजिए। बच्चों को समझा दीजिए कि किस प्रतीक का क्या अर्थ है। पहली बार यह गतिविधि करते वक्त तीन या चार से ज्यादा प्रतीक न लीजिए, वरना बच्चे कुछ दिक्कत महसूस करेंगे।

शुरू करने के लिए कोई सा कोना चुन लीजिए। बच्चों को बताइए कि उस कोने में पहुचकर उन्हें फर्श पर बने प्रतीक के अनुसार काम करना है। प्रतीक मिट्टी में हाथ से बनाए जा सकते हैं या वहां गत्ते या पत्थर का टुकड़ा रखकर रंग से बनाए जा सकते हैं।

जब हर बच्चे को तीन–चार बार भाग लेने का मौका मिल चुका हो तब प्रतीक की जगह उस गतिविधि का नाम साफ अक्षरों में लिख दीजिए– 'दौड़ो'। इसके बाद गतिविधि पहले की तरह चालू रखिए।

धीरे धीरे प्रतीकों की संख्या बढ़ाते जाइए। कक्षा में वापस आकर बाहर की जगह का नक्शा ब्लैकबोर्ड पर बनाइए और उसमें सही जगहों पर गतिविधियों के नाम लिखिए।

दो

वर्णमाला के टुकड़े

वर्णमाला को तीन भागों में बांटिए और हर भाग के अक्षर बड़े आकार में कागज की एक लंबी पट्टी पर लिख दीजिए। तीनों भागों को दीवार पर कुछ कुछ दूर पर चिपका दीजिए– ऐसी जगह जहाँ वह सब बच्चों को साफ व आसानी से दिखाई दे। मात्राओं को एक चौथी पट्टी पर लिखिए।

अब बोर्ड पर एक शब्द लिखिंए। बच्चों से कहिए कि उस शब्द के अक्षर और मात्राएं ध्यान से देखकर उन्हें दीवार पर चिपकी पट्टियों में पहचानें।

तीन

विज्ञान की शुरुआत

रोजमर्रा की चीजों की चर्चा के लिए उनका वर्गीकरण कीजिए। उदाहरणतया 'उड़ने वाली चीजें,' 'गोल चीजें', 'चपटी चीजें', और 'तैरने वाली चीजें'।

इस तरह बनाए गए किसी एक समूह का नाम बोर्ड पर लिखिए, फिर उसे पढ़कर सुनाइए और बच्चों से कहिए कि वे उस समूह में शामिल की जा सकने वाली तीन चीजों के नाम सुझाएं। जैसे, 'उड़ने वाली चीजों', में बच्चे पतंग, हवाई जहाज और बादल सुझा सकते हैं। इन्हें बोर्ड पर साफ साफ लिखिए।

बच्चों से कहिए कि चीजों के नाम अपनी कापी पर उतारें और चीज का एक छोटा–सा चित्र भी बनाएं।

चार

शब्दों का नागिन टापू

जमीन पर एक या कई नागिन टापू के खेल जैसे चौखाने बनाइए। हरेक घर में रोजमर्रा की चीजों जैसे गिलास, चम्मच, घर, पेड़ के नाम लिख दीजिए और साथ में उस चीज का एक छोटा–सा प्रतीक बना दीजिए।

बच्चों को पांच पांच के समूह में बांटकर हर समूह में एक रैफरी नियुक्त कर दीजिए। रैफरी का काम है गप्पी फेंकना और हर बच्चे की चाल का निरीक्षण करना। खेलने वालों को हर घर में पैर रखते समय उस पर लिखी चीज का नाम पढ़कर सुनाना है और गप्पी वाले घर के ऊपर से गुजर जाना है।

यह खेल खिलाते वक्त रैफरी का काम हर बार किसी नए बच्चे को दीजिए।

पांच

जो पढ़ा वह करो

जो बच्चे सीख चुके हैं उन्हें यह भी सीखना जरूरी है कि पढ़ने का संबंध करने से है। इस गतिविधि में अध्यापक बोर्ड के पास चुपचाप खड़ा रहता है और बोलने के स्थान पर छोटे छोटे निर्देश बोर्ड पर लिखता जाता है।

हरेक बच्चे को उसकी क्रमसंख्या पता होनी चाहिए। बोर्ड पर निर्देश लिखते समय साथ में किसी बच्चे की क्रमसंख्या भी लिख दें। जैसे– 'उठकर बाहर जाओ, एक पत्थर लाओ–10'। इस निर्देश का मतलब है कि 10 नंबर के बच्चे को उठकर बाहर जाना है और एक पत्थर लाना है। अब अगला निर्देश हो सकता है–'10 नबंर पत्थर लेकर उसे अपने दाहिने घुटने पर रखो–5।'

धीरे–धीरे निर्देशों को और जटिल बनाते जाएं। जटिल निर्देश इस तरह के हो सकते हैं कि बच्चा दीवार पर टंगा पोस्टर देखकर कोई खास चीज ढूंढ़े या अस्पताल का रास्ता बताए, या स्कूल के बाहर लगे पेड़ों की संख्या गिनकर बताए, आदि।

छह

पिछला शब्द, अगला शब्द

इस गतिविधि के लिए बाल साहित्य की किताबें पर्याप्त संख्या में होना जरूरी हैं। किताबें बच्चों में इस तरह बांटिए कि हर बच्चे को कोई ऐसी किताब मिले जिसे वह आसानी से पढ़ सके। बच्चों से कहिए कि वे किताब के किसी भी पन्ने को खोलें और दाहिना पेज देखें। क्या इस पेज के अंत में पूर्णविराम आता है? यदि हां तो कोई और पन्ना खोलें।

अब पूरा दाहिना पन्ना चुपचाप पढ़ डालें। अंत तक पहुंचकर रुक जाएं ओर अगला पन्ना न पलटें।

प्रत्येक बच्चे से पूछिए कि वह अंदाज से बताए कि अगले पृष्ठ का पहला शब्द क्या होगा? जब वह अपना अनुमान बता दे तब उससे पन्ना पलटकर यह देखने के लिए कहिए कि अनुमान सही था कि नहीं? सही अनुमान पर बाकी बच्चे ताली बजाने की परंपरा डाल सकते हैं।

जब सबकी बारी आ चुके और सब बच्चे अगला पन्ना पलट चुके हों तो फिर पहले बच्चे से शुरू कीजिए। इस बार हर बच्चे को याददाश्त के आधार पर यह बताना है कि पिछले पेज का आखिरी शब्द क्या था?

सात

तीन प्रश्न

बच्चों को दो पंक्तियों में आमने–सामने बैठाएं। हर बच्चे को एक किताब देकर उसे कहीं से भी खोलने को कहिए। दाहिना पेज पूरा पढ़कर बच्चा अपने सामने बैठे बच्चे को किताब दे दे। अब इस बच्चे को वही पेज पढ़ना है। पढ़कर वह अपने सामने बैठे बच्चे से, जो पहले ही यह पेज पढ़ चुका है, तीन प्रश्न पूछे।

शुरू–शुरू में बच्चे कुछ पूछने में दिक्कत या झिझक महसूस करें तो उन्हें प्रश्नों के उदाहरण बताइए।

आठ

गड़बड़ कविता

यह बहुत जटिल गतिविधि है, इसकी तैयारी बहुत ध्यान से और काफी पहले से करनी होगी। पर एक बार तैयारी करके आप उसी सामग्री को बार बार प्रयोग में ला सकते हैं। यह भरोसा रखिए कि इस गतिविधि में अपार आनंद आता है।

चार चार पंक्तियों की कई कविताएं चुनिए। कोशिश यह कीजिए कि चारों पंक्तियों की तुक मिलती हो। जितने बच्चे हैं उतनी ही कविताएं चाहिए। अब मान लीजिए कि आप 20 बच्चों में यह गतिविधि करने वाले हैं तो 20 कविताओं की पहली पंक्ति अलग अलग कागज पर लिख लीजिए। अब हर कागज पर दूसरी पंक्ति किसी और कविता की लिखिए और इसी तरह तीसरी और चौथी पंक्ति अलग अलग कविताओं की लिखिए। अंततः आपके पास 20 कागज होंगे जिन पर अलग अलग कविताओं से ली गई चारों पंक्तियां इस तरह लिखी हुई होंगी :

1. दूध जलेबी रक्खी है।
2. तू लगता है बिल्कुल भालू
3. तब में खाना खाऊंगा
4. पानी में ही सोती मछली

बच्चे गोल घेरे में बैठेंगे। बच्चों को बताइए कि उनके कागज पर लिखी कविता की पंक्तियां गड्डमगड्ड हो गई हैं। हर बच्चे को तीन पंक्तियां ढूंढनी है जो उसके कागज पर दी गई पहली पंक्ति से मेल खाती हैं।

पहले बच्चे से कहिए कि वह अपने कागज पर लिखी दूसरी पंक्ति पढ़कर सुनाए। बाकी बच्चे ध्यान से सुनें और सोचें कि क्या यह पंक्ति उनके कागज पर दी गई पहली पंक्ति से मेल खाती है। जिस बच्चे को ऐसा लगे वह अपना हाथ खड़ा करे और पंक्ति मांगे। यदि अध्यापक को लगे कि मांग सही है तो बच्चा यह पंक्ति लिख ले और जिस बच्चे ने यह पंक्ति दी है वह अपने कागज पर यह पंक्ति काट दे। अब अगला बच्चा अपनी दूसरी पंक्ति पढ़े। इस तरह यह क्रम तब तक चलता रहे जब तक हर बच्चे को सही दूसरी पंक्ति नहीं मिल जाती। इसके बाद तीसरी पंक्ति की खोज शुरू हो।

नौ

प्रतिक्रिया

चित्र देखकर पैदा होने वाली प्रतिक्रिया के स्तर और इन स्तरों से जुड़े हुए सवाल, जिनकी चर्चा 'बात' लेख में हो चुकी है, कहानियों और कविताओं जैसी साहित्यिक सामग्री पर भी लागू होते हैं।

जब आप बच्चों को कहानियां, पत्रिकाएं या किताबें पढ़ने को दें। इन सामग्रियों के आधार पर प्रश्न भी बना लें। जब बच्चे आपकी दी हुई सामग्री पढ़ चुकें तो आप इन प्रश्नों की मदद से बच्चों की प्रतिक्रियाओं पर आधारित एक बहस आयोजित कर सकते हैं। पर हर बार कोई चीज पढ़ने के लिए देते समय ऐसा न करें। संभवतया हते में एक दिन ऐसा रखा जा सकता है जब उस हते में पढ़ी गई सामग्री पर चर्चा हो।

बच्चों की प्रतिक्रियाओं का माप–जोख न कीजिए। न ही कभी यह आभास दीजिए कि कोई प्रतिक्रिया गलत थी। हर प्रतिक्रिया अपनी जगह सही है। ऐसी प्रतिक्रिया भी सार्थक हो सकती है जो विषयवस्तु से खींचतान करती हो। प्रतिक्रिया कैसी भी हो, वह पढ़ी हुई सामग्री से सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा दिखाती है। एक ही चीज को बार बार पढ़कर बच्चा उस पर हर बार अलग प्रतिक्रिया देना चाहे तो इसकी पूरी छूट रहनी चाहिए।

शुरुआत के बाद

यहाँ प्रस्तुत गतिविधियों के आधार पर आप कई और नई गतिविधियां और नई सामग्री गढ़ सकते हैं। आप पाएंगे कि जिन बच्चों ने यहां दिए गए तरीकों से पढ़ना सीखा है वे हर तरह की सामग्री में दिलचस्पी लेंगे और उसे समझने की कोशिश करने के योग्य पाएंगे। यहां तक कि अखबार का एक पुराना फटा हुआ टुकड़ा भी एक पहेली की तरह इस्तेमाल किया जा सकता है। उसे छोटे छोटे टुकड़ों में फाड़कर और बच्चों से यह कहकर कि इन टुकड़ों में दिए अधूरे वाक्य पढ़कर सारे टुकड़ों को जोड़ें, आप पुराने अखबार का इस्तेमाल पढ़ने के कौशल का विकास करने के लिए कर सकते हैं। इस कौशल में होशियारी से अनुमान करना, छुपे हुए शब्द को अर्थ से जोड़ना और अपने अनुमान का परीक्षण करना शामिल है।

बच्चे के पढ़ना सीख लेने के बाद अध्यापक का काम यह है कि बच्चे को अपने इस नए कौशल का इस्तेमाल अलग–अलग किस्म के कामों को करने की प्रेरणा दे। हमारे कई प्राइमरी स्कूलों में पढ़ने के कौशल का प्रयोग विविध उद्देश्यों के लिए करने को प्रोत्साहित नहीं किया जाता। पढ़ने का रिश्ता सिर्फ पाठ्यपुस्तकों और परीक्षा से जुड़कर रह जाता है। नई जानकारी ढूंढ़ने के लिए पढ़ने, निजी रुचियों के विकास के लिए पढ़ने, और आनंद की खातिर पढ़ने की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। पढ़ना बच्चे के व्यक्तित्व के समग्र विकास का हिस्सा नहीं बन पाता। परिणामस्वरूप बच्चे पढ़ना सीखकर भी पाठक नहीं बन पाते। यह एक बड़ी विफलता है और अध्यापक चाहे तो इसका निवारण कर सकता है।

यह लेख कृष्ण कुमार की पुस्तक 'बच्चे की भाषा और अध्यापक : एक निर्देशिका' से संकलित है।

पढ़ने का आकलन कैसे करें

– शारदा कुमारी

दुनिया के किसी भी कोने में रहने वाले किसी भी उम्र के व्यक्ति के पास अगर कोई सबसे रोमांचकारी और अनोखी चीज़ है तो वह है 'पढ़ने' का कौशल। यह वह तिलस्मी दरवाज़ा है जिसे खोल कभी हम परी लोक हो आते हैं, न जाने कितने किस्से–कहानियों का मज़ा लूटते हैं तो कभी ज्ञान की अतुल अपार संपदा समेटे रहस्यमयी दुनिया की सैर कर आते हैं, और तो और इतिहास बन चुके नज़ारों से भी रू–ब–रू हो लेते हैं। स्कूली दुनिया में तो उस करिश्मे के बिना किसी की कोई बिसात ही नहीं। गणित हो या विज्ञान या फिर भाषा सभी विषयों की नैया का खेवनहार 'पढ़ना' ही है। पर किसी तरह से पढ़ना? ज़रा नीचे लिखे पर गौर फरमाएँ:

- बच्चे को हर अक्षर की पहचान बहुत अच्छे से है। वे अक्षरों को जोड़–जोड़ कर शब्द पढ़ पा रहे हैं। क्या इसी तरह का 'पढ़ना' उन्हें किस्से–कहानियों की दुनिया में ले जाएगा?
- बच्चे लिखित या मुद्रित सामग्री के एक–एक शब्द को पढ़कर आगे बढ़ रहे हैं। क्या इसी तरह से 'पढ़ना' उन्हें उस सामग्री से रोमांचित होने के मौके दे पाएगा?
- बच्चे केवल वही सामग्री पढ़ पा रहे हैं जिसे शिक्षक या अभिभावक द्वारा बच्चे के सामने कई बार पढ़ा गया है। ज़ाहिर सी बात है पाठ्यपुस्तक के पाठ ही होंगे और वह भी भाषा की पुस्तक के. पर जब पाठ्यपुस्तक से बाहर कोई पठन सामग्री उनके सामने आती है, वे उसका आनंद नहीं उठा पाते। क्या हम इसी तरह के 'पढ़ने' की बात कर रहे थे? बिल्कुल नहीं।

हम 'पढ़ने' को करिश्माई कौशल तभी मान सकेंगे, जब हम लिखे हुए में से अर्थ ढूँढ़ सकें।

शब्दों, अक्षरों की पहचान मात्र 'पढ़ना' नहीं है। बहुत से बच्चे गणित के तमाम जटिल से जटिल सवाल चुटकियों में हल कर लेते हैं बशर्ते सवाल की इबारत ज़बानी बोली जाए या सिर्फ संख्याएँ दे दी जाएं। वे अपने इर्द–गिर्द हो रही हर घटना की जानकारी रखते हैं, अपने बड़ों को उन घटनाओं से अवगत करवाते रहत हैं। पेड़–पौधों, पशु–पक्षियों, चाँद–सूरज, दिन–रात आदि से जुड़ी उनके पास अपनी जानकारियों का खज़ाना है, जिसे उन्होंने अपनी अद्भुत अवलोकन क्षमता से हासिल किया है पर विज्ञान की पुस्तक में लिखे खज़ाने से वे कुछ भी नहीं ले पाते। दोनों जगह उन्हें एक ही चीज़ मात दे रही है वह है 'ठीक से न पढ़ पाना'। यह 'ठीक से न पढ़ पाना' सिर्फ भाषा की घंटी से ही सरोकार नहीं रखता बल्कि पूरी विद्यालयी गतिविधियों जैसे– दूसरे विषयों की पढ़ाई, बुलेटिन बोर्ड तैयार करना, परियोजना कार्यों की रिपोर्ट तैयार करने के लिए सामग्री का चयन करना, यह सब 'पढ़ना आने' पर ही निर्भर करता है। और अब तो ऐसा दौर आ गया है कि विद्यालय से बाहर की दुनिया को समझने के लिए भी 'पढ़ना आना' जरूरी है।

आकलन

इस 'पढ़ने' का आकलन कैसे किया जाए अभी असल बात हमें इसी पर करनी है। हम सभी जानते हैं कि 'पढ़ना' भाषा का अर्जित किया जाने वाला कौशल (Acquired skill) है। इस आधार पर यह तथ्य उभर कर सामने आता है कि 'पठन कौशल' यानी कि 'पढ़ने' का आकलन करने के लिए समझना बहुत जरूरी है कि यह कौशल अर्जित कैसे किया जा रहा है, अर्थात् बच्चे किस तरह से 'पढ़ना' सीख रहे हैं। 'पढ़ना सीखने' के प्रति समझ बनना इसलिए भी जरूरी है क्योंकि 'पढ़ना सीखना' और उसका 'आकलन

करना' ये अलग–थलक घटने वाली प्रक्रियाएं नहीं है बल्कि दोनों ही साथ–साथ चलने वाली प्रक्रियाएँ हैं। इस संदर्भ में कुछ और भी बिन्दु हैं जिन पर ध्यान देना जरूरी होगा जैसे –

- आकलन सीखने–सीखाने की प्रक्रिया का हिस्सा है। यह एक सतत् प्रक्रिया है।
- आकलन से मतलब है तरह–तरह की तरीकों का इस्तेमाल करते हुए बच्चों के सीखने की प्रगति संबंधी सूचनाएं हासिल करते रहना और उस आधार पर उन्हें रचनात्मक पृष्ठपोषण देना।
- आकलन सिर्फ इसलिए नहीं किया जाता कि हम पता लगाएं कि बच्चों ने क्या और कितना सीखा है बल्कि 'कैसे' सीख रहे हैं, इसे भी समझा जाता है। उनकी सफलताओं या कठिनाइयों और आत्मविश्वास के स्तर को पहचानना भी जरूरी होाता है।
- आकलन बच्चों की जरूरतों, रुचियों और पूर्व अनुभवों का पता लगाने के लिए भी किया जाता है। वे पहले से क्या जानते हैं और क्या कर सकते हैं, आकलन की प्रक्रिया हमें यह जानने में भी मदद करती है।
- गतिविधियों और पद्धतियों की प्रभावशीलता मापने तथा अपनी अध्यापन पद्धतियों को परखने में भी आकलन मदद करता है।
- आखिरकार, आकलन द्वारा बच्चे के सीखने की गुणवत्ता सुनिश्चित करना भी अनिवार्य है।
- आकलन सम्बन्धी पद्धतियाँ एवं दृष्टिकोण पिछड़े बच्चों की ज़रूरतों का भी ख्याल रखने वाला हो और निश्चित रूप से पूर्वाग्रहों से दूर हो।
- एक बात और। आकलन चाहे पढ़ने की क्षमता का हो या फिर किसी अन्य कौशल का, आकलन करना अकेले शिक्षक/अध्यापक की बपौती नहीं, इस प्रक्रिया में सामुदायिक सहभागिता भी जरूरी है। 'स्व' और 'साथी आकलन' के लिए भी तमाम गुँजाइशें हैं।

पढ़ने का मकसद

उपर्युक्त बिन्दुओं के प्रति समझ और सहमति बनने के बाद अगले पायदान पर चढ़ने से पहले एक छोटा–सा पड़ाव और पड़ता है, वह है भाषायी कौशलों के सन्दर्भ में 'पठन कौशल के उद्देश्य'। जब तक हमें यह ही नहीं पता कि प्राथमिक स्तर पर 'पढ़ने' से जुड़े क्या–क्या उद्देश्य हैं तो हम आकलन किस आधार पर करेंगे? इसलिए हम उद्देश्यों पर भी निगाह डाल लेते हैं –

- परिवेश में उपलब्ध संदर्भों, चित्रों एवं अन्य मुद्रित/लिखी सामग्री से परिचित होना और अनुमान से पढ़ने का प्रयास करना।
- 'पढ़ने' को दैनिक जीवन की जरूरतों से जोड़ना, घर और बाहर दोनों ही।
- लिपि चिह्नों को देखकर और उनकी ध्वनियाँ सुन और समझकर उनमें सहसम्बन्ध बनाते हुए पढ़ने की कोशिश करना।
- सुनी हुई कहानियों, कविताओं को लिखित/मुद्रित रूप में देखने पर उनसे अपने अनुभव जोड़ पाना।
- विषय सामग्री के माध्यम से नए शब्दों का अर्थ जानने की कोशिश करना।
- मुख्य बिन्दु/विचार को ढूँढ़ने के लिए विषय सामग्री की बारीकी से जाँच करना।

- पाठ्यपुस्तक की विधाओं से परिचित होना और उन विधाओं की दूसरी पुस्तकें/रचनाएँ पढ़ने के लिए प्रोत्साहित होना।
- दूसरों के विचारों को पढ़कर समझने की योग्यता का विकास करना।
- पुस्तकों के प्रति रुचि जाग्रत करना/पढ़ने की प्रति एक ललक पैदा करना।
- पढ़कर ज्ञानार्जन और आनंद पाना।

हाँ, इन उद्देश्यों के साथ–साथ कक्षा में विराजी भाषायी सामाजिक–सांस्कृतिक विविधता के प्रति सहिष्णुता होना तो शामिल है ही।

आकलन

अब बात करते हैं कि आकलन कैसे करें? मान लीजिए कि हमने बच्चों के सामने एक चित्र प्रस्तुत किया। चित्र में एक बस है। उस बस से कुछ दूरी पर बच्चे हैं। उनकी मुद्रा दौड़ने की सी है और बस पर चढ़ने की है।

चित्र के साथ मोटे अक्षरों में लिखा है – ''बच्चे दौड़कर बस में चढ़ गए।'' जिन बच्चों के सामने हमने चित्र प्रस्तुत किया उन्हें लिपि चिह्नों, अक्षरों, शब्दों, वर्णों की पहचान है यानी कि आम भाषा में कहें तो वे 'पढ़ना' जानते हैं। हमने इन बच्चों से कहा कि चित्र देखें और लिखा हुआ वाक्य पढ़कर बताएँ। कुछ बच्चे पढ़ते हैं – ''बच्चे दौड़कर बस पर चढ़ गए।'' कुछ बच्चों ने वाक्य को इस तरह से पढ़ा – ''ब–च्–चे द औ की मात्रा ड़, दौड़ कर ब–स म ए की मात्रा में, च–ढ़ ग–ए।''

कुछ बच्चों ने वाक्य को इस तरह से पढ़ा – ''बच्चे <u>द ड़</u> क र ब स में च ढ़ ग ए।'' कुछ बच्चों ने वाक्य को इस तरह से पड़ा – ''बच्चे <u>भागकर</u> बस में चढ़ गए।'' यहाँ पर 'पढ़ने' की चार बानगियाँ प्रस्तुत हैं।

- पहली बानगी में बच्चों ने 'में' की जगह 'पर' बोला है या ऐसे भी कह सकते हैं पढ़ा है।
- दूसरे से साफ़ जाहिर है कि बच्चे हर अक्षर को अलग–अलग पढ़ रहे हैं यानी कि तोड़–तोड़ कर पढ़ रहे हैं और निश्चित रूप से उनका आपस में कोई सम्बन्ध नहीं जोड़ पा रहे हैं।
- तीसरी शैली से पता चलता है कि वाक्य के कुछ शब्द तो सही–तरीके से पढ़ लिए गए हैं पर 'दौड़' में औ की मात्रा एक व्यवधान बन गई और उसे 'द ड़' पढ़ा गया।
- चौथे में तो 'दौड़ कर' उड़ा ही दिया गया और पढ़ा गया 'भागकर' आपको क्या लगता है – यह शब्द 'भागकर' कहाँ से आया होगा? निश्चित रूप से उस सामग्री में तो कहीं भी नहीं लिखा या छपा जो उन्हें पढ़ने के लिए दी गई है। उस पर सिर्फ़ एक ही वाक्य लिखा है – ''बच्चे दौड़कर बस में चढ़ गए।'' और साथ में एक चित्र है जिसमें बस है और दौड़कर बस पकड़ते बच्चे।

अब यदि आपके पास पाँच बिन्दुओं वाली मापनी है –

1. बहुत मदद चाहिए।
2. मदद चाहिए।
3. औसत
4. उत्तम/अच्छा
5. उत्कृष्ट

और 'पढ़ने' के संदर्भ में आपकी परिभाषा है – ''लिखे हुए से अर्थ ग्रहण करना।'' तो आप चारों में किसको किस श्रेणी में रखेंगे?

आपका उत्तर 'पढ़ने' का आकलन करने की दिशा तय करेगा।

गतिविधियाँ

अब 'पढ़ने का आकलन' से जुड़ी कुछ गतिविधियाँ प्रस्तुत हैं जो यह समझ बनाने में सहायता करेंगी कि 'पढ़ने' का आकलन कैसे करें, किस तकनीक का इस्तेमाल करें, सूचनाएँ दर्ज कैसे की जाएँ और पीठ किसकी और की जाए। पहले चित्र पढ़ने की बात करते हैं।

शुरूआती तैयारी

पूर्व तैयार – हमारे पास बच्चों को दिखाने के लिए चित्र है। (क) चित्र का आकार इतना तो जरूर है कि बच्चे ध्यान से देख सकें, पढ़ सकें, अनुमान लगा सकें। संभवतया उस चित्र की 6–7 प्रतिलिपियां हैं और पांच–पांच (स्थिति के अनुसार) के समूह बनाकर चित्र को देखने के लिए भी दिया जा सकता है। (ख) चित्र का चयन बच्चों के पूर्व अनुभवों, स्थानीय सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भों के अनुसार ही किया गया है।

- हमारे पास एक रजिस्टर है जिसमें सभी बच्चों के नाम लिखे हैं और हम उसमें हर बच्चे के संबंध में विवरणात्मक टिप्पणियाँ लिखने के लिए मानसिक रूप से तैयार हैं।

भरी हुई कक्षाओं (एक कक्षा में अधिक संख्या में बच्चे होना) के साथ निर्वाह करने वाले शिखक भी इस तैयारी का हिस्सा हो सकते हैं। जरूरी नहीं है कि साठ–सत्तर सभी बच्चों का अवलोकन और टीपें दर्ज़ होना 'आज एक ही दिन' में किया जाए। आज समूह–1 के सात बच्चे तो कल समूह–2 के। इस तरह 15 दिन में हर बच्चे के कौशल का स्तर हमारी मापनी पर अंकित हो सकता है। पूर्व तैयारी में ही शामिल होगा चित्र सम्बन्धी प्रश्नों का निर्माण। ऐसे प्रश्न जो ये पता लगा सकें कि बच्चे चित्र को पढ़ पा रहे हैं या नहीं।

मेरे बच्चे गए कहाँ? Where Are My Children?

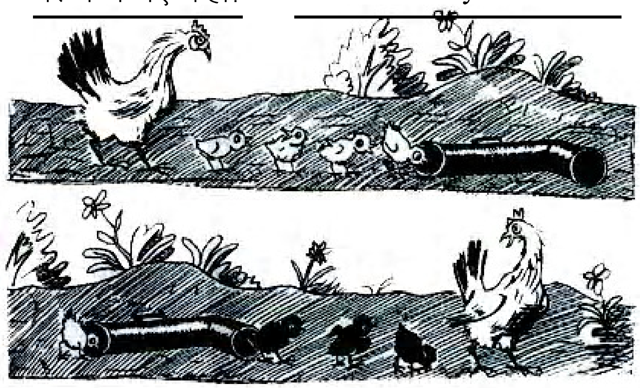

प्रस्तुत चित्र के सम्बन्ध में प्रश्न हो सकते है –

1. इस चित्र में क्या–क्या चीज़ें दिखाई दे रही हैं?
2. आगे–आगे कौन चल रहा है?
3. चूज़ों के पीछे कौन चल रहा है?

4. सभी चूज़ों के अपनी पसंद से नाम रखो।
5. उनकी माँ मुर्गी का भी नाम रखो।
6. चूज़े उस पाइप के अंदर से क्यों जाना चाहते हैं?
7. माँ उन्हें मना करे या नहीं?
8. जब चूज़े पाइप के रास्ते बाहर आए तो उनकी माँ हैरान क्यों हुई?
9. कितने चूज़े पहले बाहर निकले। कितने चूज़े पीछे रह गए।
10. यह चूज़ा पीछे क्यों रह गया होगा?
11. पाइप के अन्दर क्या चीज़ हो सकती है, जिससे चूज़ों का रंग बदल गया?
12. इसे देखकर कोई कहानी सूझती होगी, सुनाओ?
13. पहले क्या हुआ, फिर क्या हुआ?
14. अब चूज़े क्या करेंगे?
15. इनकी माँ इन्हें क्या कहेगी?
16. इस चित्र को कोई नाम दे सकते हो?
17. इससे मिलता–जुलता कोई चित्र पहले भी देखा था?
18. अगर चूज़े पाइप के अंदर ही फंस जाते तो?
19. ये पाइप रास्ते में किसने रखा होगा?
20. तुम्हारे घर के आस–पास भी ऐसे ही चीज़ें पड़ी होती हैं क्या?
21. तुम इस मुर्गी और चूज़ों से कोई सवाल करना चाहोगे, कोई भी सवाल इनसे पूछो।

निश्चित रूप से इतने सवाल नहीं पूछे जाएंगे। ये केवल उदाहरण के लिए हैं कि कल्पना को विस्तार देने वाले, अनुमान लगाने वाले, विश्लेषण करने का मौका देने वाले और तार्किक क्षमता का विकास करने में मदद देने वाले ही सवाल पूछना बेहतर होगा। मात्र कौन हैं? क्या–क्या है? जैसे प्रश्न पूरी तरह से चित्र पढ़ने में मदद नहीं करते।

अब तक हमने क्या किया? तसवीर का चयन, संबंधित प्रश्नों का निर्माण, एकल या समूह में बच्चों को चित्र दिया गया और अब प्रश्न पूछने की बारी है और टीपें दर्ज़ करने का समय। (इस समय टीपें रजिस्टर में नहीं हमारे मस्तिष्क/स्मृति में दर्ज़ हो रही हैं। सवाल–जवाब करते समय रजिस्टर में टिप्पणियाँ लिखना बच्चों को व्याकुल कर सकता है। उनकी सहजता के आड़े आ सकता है।) यहाँ हमें एक बहुत ही अहम बात ध्यान में रखनी होगी –

''सभी बच्चे अपने–आप में अद्वितीय हैं। उनके सीखने–समझने की गति भिन्न–भिन्न है।'' यानि हर बच्चे को अलग–अलग समय दिया जाना चाहिए।

एक बहुत ही सहज से माहौल में बच्चों से प्रश्न पूछे गए। उत्तर पाने में शीघ्रता का भाव नहीं दिखाया गया। सवाल की भाषा सरल थी। ज़रूरत पड़ने पर सवाल दोहराया भी गया। बच्चों के उत्तर स्वीकार किए

गए। जिस बच्चे ने जवाब देने में झिझक/कठिनाई प्रदर्शित की, उसे विवश नहीं किया गया बल्कि कहा गया – ''चलो, कोई बात नहीं। बाद में बता देना।''

एक बार में पाँच बच्चों के पढ़ने के बारे में ही याद रह पाया। उनकी टिप्पणियाँ कैसी होंगी, नमूना प्रस्तुत है –

1. अनुश्री – उत्कृष्ट

पिछली बार की तुलना में कहीं अधिक सहज और सजग है। चित्र देखते हुए मुस्कुरा रही थी और अंत में तो हँस ही पड़ी। फटाफट बच्चों के नाम रख दिए पर मुर्गी का नाम नहीं रखा यह कहकर कि यह तो 'मम्मी' है। मम्मी का नाम नहीं होता। (घर पर कभी मम्मी का नाम लिया जाता होगा।)

पूछे गए प्रश्नों की जगह अपने ही प्रश्न बना डाले और उनके उत्तर भी दे दिए। जैसे – चारों चूज़े आपस में क्या कह रहे हैं? ये एक लाइन में क्यों चल रहे हैं? ये एक लाइन में क्यों चल रहे हैं? ये आपस में कब–कब लड़ते होंगे?

2. शांतनु – मदद की ज़रूरत है

चित्र को देखने में कुछ अधिक समय लिया। क्या है? कितने हैं? कौन हैं? के उत्तर फटाफट दे दिए। पिछली बार से तुलना करें तो कोई विशेष प्रगति नहीं है। ''मुर्गी कैसी है'' का वर्णन अच्छे से किया पर अनुमान वाली बात में हिचकिचाहट थी। सवालों का जवाब एक या दो शब्दों में दे पा रहा था। बिना उतार–चढ़ाव के पाँच वाक्यों की कहानी सुनाई।

3. आयुष – औसत

पिछली बार की तुलना में इस बार अधिक ऊर्जावान और प्रफुल्लित नज़र आ रहा है। उत्तर देने के लिए तत्पर है। घटनाक्रम बहुत सहजता से बता पाया है परन्तु कल्पना तथा अनुमान लगाने वाले सवालों का उत्तर देने में हिचकिचाहट थी। प्रोत्साहित करने पर एक दो वाक्य रूक–रूक कर कह पाया है।

इसी तरह से बाकी बच्चों के सम्बन्ध में भी टीपें दर्ज़ की गई।

'पठन कौशल' के आकलन के संदर्भ में अभी हमने 'चित्र पढ़ने' का आकलन किया था। चित्र के बाद छोटी–छोटी कविताओं, कहानियों और पाँच–छह वाक्यों वाले रुचिकर अनुच्छेदों को पढ़ने की बात आती है। धीरे–धीरे स्तर बढ़ता जाएगा और हम बच्चे को भिन्न–भिन्न विधाओं के पठन की ओर ले जाएंगे। यहाँ पर आकलन के लिए हमें कुछ सुरागों को ध्यान में रखना होगा। पठन सम्बन्धी मुख्य सुराग इस प्रकार हो सकते हैं –

1. आनंद लेते हुए कविता को पढ़ना।
2. आवश्यकतानुसार शब्दों पर बल देना।
3. पढ़ी गई कविता को अनुमान से आगे बढ़ाना।
4. कविता–कहानी का अर्थ समझते हुए पढ़ पाना।
5. कविता या कहानी के घटना–क्रम को अपनी कल्पना से आगे बढ़ाना और आगे–पीछे होने वाली घटनाओं में अंतर कर पाना।
6. पढ़ी जा रही सामग्री में आए अपरिचित शब्दों का संदर्भ के आधार पर मतलब ढूंढ़ना।
7. पढ़ी गई सामग्री को अपनी तरह से प्रस्तुत कर पाना।
8. परिवेश में उपलब्ध पठन सामग्री जैसे पोस्टर, विज्ञापन बोर्ड, सड़क संकेतों, स्कूल, सड़क, दुकानों के नाम, स्कूल में लिखी इबारतों आदि को पढ़ पाना और उनके प्रति समझ बनाना।

9. आवश्यक सूचनाओं और संदेशों को समझकर पढ़ पाना।
10. चित्रों को लिखित सामग्री से जोड़ते हुए घटनाओं के बारे में अनुमान लगाना और अपने अनुमान के लिए तर्क भी सुझाना।
11. पोस्टर, विज्ञापन, साइन बोर्डों से अब पत्र–पत्रिकाओं को पढ़ने की तरफ प्रोत्साहित होना।
12. पाठ्यपुस्तकों से इतर अपनी पसंद की पुस्तकों, चित्रकथाओं, कॉमिक्स आदि पढ़ना और उन्हें पढ़ने के लिए ललक पैदा होना।
13. नए तथा अपरिचित शब्दों के अर्थ ढूँढ़ने के लिए सिर्फ अनुमानों पर या फिर बड़ों की मदद पर ही निर्भर नहीं रहते अपितु शब्दकोश की सहायता भी लेते हैं।
14. भिन्न–भिन्न विधाओं को पढ़ने में रुचि दिखाना और किसी खास विधा के प्रति आकर्षण प्रदर्शित करना।
15. तरह–तरह की पठन सामग्री का संकलन करना और उन्हें पढ़ने के लिए लालायित रहना।

इन सभी संकेतकों के आधार पर बच्चों के पठन कौशल एवं क्षमता का आकलन किया जा सकता है। यद्यपि ये सभी संकेत एक बढ़ते हुए क्रम में हैं पर यह दावा नहीं किया जा सकता कि सभी बच्चे क्रमानुसार ही इन्हें प्रदर्शित करेंगे। हो सकता है कोई बच्ची अभी पूरी तरह से पढ़ना नहीं सीख पाई है, पर वह तरह–तरह की पठन सामग्री का संकलन करने में रुचि रखती हो और अनुमान के आधार पर उन्हें पढ़ती हो। यह भी हो सकता है कि किसी बच्चे ने अभी प्रवाह के साथ पढ़ना नहीं सीखा पर घर में या विद्यालय में देखकर शब्दकोश के प्रति रुचि जाग्रत हो आई हो और उसका इस्तेमाल करना शुरू कर दिया हो।

उपर्युक्त सुरागों को आधार बनाकर तरह–तरह की विधियों के माध्यम से जिनमें अवलोकन सर्वोपरि है, बच्चों के पढ़ने की प्रगति से जुड़ी सूचनाएँ और प्रमाण संग्रहित किए जा सकते हैं। ध्यान यह रखना है कि इन सूचनाओं के आधार पर हम प्रत्येक बच्चे की प्रगति की तुलना उसकी अपनी पिछली स्थिति से करेंगे, दूसरे बच्चों की प्रगति से नहीं। इनका इस्तेमाल बच्चों के अधिगम और निष्पादन को उन्नत करने के लिए करेंगे न कि निर्णयात्मक टिप्पणी देने के लिए कि अमुक बच्ची पढ़ने में तेज़ है और अमुक कमज़ोर या असफल। ये सूचनाएं हमें अपनी शिक्षण विधियों, सिखाने–सीखने की प्रक्रियाओं को उन्नत करने में भी मददगार होंगी। इन सूचनाओं को दूसरी साथी शिक्षकों तथा अभिभावकों से साँझा करना भी जरूरी होगा। आकलन संबंधी पृष्ठपोषण बच्चों को भी देना बहुत जरूरी है। बच्चों को यह आभास होता रहे कि अधिगम प्रक्रिया के कौन–से हिस्से पर वे अभी हैं और किन क्षेत्रों में अधिक ध्यान देने की ज़रूरत है।

पढ़ने की उत्सुकता

'पढ़ने' का आकलन करने से जुड़े बहुत से मुद्दों की बात की गई। चलते–चलते एक और बात। वह यह कि पठन कौशल को अगर वास्तव में 'निपुणता' के स्तर पर लाना है तो पढ़ने का माहौल तो बनाना ही होगा। कक्षा में, कक्षा के बाहर, यहां तक कि अभिभावकों से संवाद स्थापित कर उनके घर में भी अपेक्षित माहौल बनाया जा सकता है। यह माहौल बनेगा रुचिकर पठन सामग्री की उपलब्धता से। आपने जरूर गौर किया होगा कि उन बच्चों पर जिन्होंने अभी–अभी पढ़ना सीखा है, कोई भी कागज़ उनके हाथ लगता है जिस पर कुछ लिखा या छपा हो चाहे वह कोई लिफाफा हो या चने–मूंगफली को लपेटे कोई पुराना सा कागज़, वे उसे उलट–पुलट कर पढ़ते ज़रूर हैं। सड़कों के किनारे लगे इश्तिहारों पर भी उनकी नज़रें घूमती रहती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि वे पढ़ने के लिए उत्सुक हैं। इस उत्सुकता को बरकरार रखना या खत्म कर देना, दोनों बहुत कुछ हमारे हाथ में हैं।

पढ़ाई पहली कक्षा की

– अक्षय कुमार दीक्षित

जब मुझे पहली कक्षा के बच्चों को पढ़ाने का अवसर मिला तो मुझे विशेष प्रसन्नता का एहसास हुआ। वर्षों से मैं सरकारी स्कूलों के बच्चों को विभिन्न 'लेबलों' में बाँटे जाने की प्रवृत्ति का सामना करता रहा हूँ। ''सरकारी स्कूलों में तो ऐसे ही बच्चे आते है'', ''इन्हें पढ़ना सिखाना तो लोहे के चने चबाना है'', ''साल भर इन्हें क ख ग घ ही आ जाए, यही गनीमत है'' इस तरह के जुमले कई बार मैं सुन चुका था। मुझे पहली कक्षा को पढ़ाना इन्हीं मायनों में चुनौतीपूर्ण भी लगा।

मैंने सोचना–विचारना शुरू किया कि पहली कक्षा को पढ़ना–लिखना कैसे सिखाया जाना चाहिए। सदियों पुराना जाना–पहचाना रास्ता मेरे सामने था। मैंने भी शायद इसी तरीके से पढ़ना–लिखना सीखा था। पहले वर्णमाला, फिर बारहखड़ी, बिना मात्राओं वाले शब्द, मात्रा सहित शब्द, और ढेर सारा अभ्यास। पर मुझे एहसास था कि यह रास्ता बच्चों के लिए बहुत नीरस और कठिन रहेगा।

केवल पढ़ना–लिखना सिखा देना पहली कक्षा के शिक्षण का उद्देश्य नहीं हो सकता। पहली कक्षा तो बच्चे के स्कूली जीवन की बुनियाद है। यहीं से बच्चे स्कूली पढ़ाई तथा अनुभवों के बारे में अपनी पसंद या राय बनाते हैं। यदि कोई काम बच्चों की पसंद या उनके लिए महत्वपूर्ण नहीं है, तो वह निरर्थक है। बस, मुझे समझ में आ गया कि मुझे कैसे आगे बढ़ना है। **मुझे वे गतिविधियाँ या काम सोचने या खोजने होंगे जो मेरे लिए ही नहीं, बच्चों के लिए भी आनंददायक तथा सार्थक हों, तभी बच्चों की जिज्ञासा को संतुष्ट किया जा सकेगा।**

आखिर वह दिन आ पहुँचा जब मुझे पहली कक्षा के बच्चों से रू–ब–रू होने का सौभाग्य मिला। कुछ बच्चे उदासीन से लगे। कुछ उत्सुकता से मेरी ओर देख रहे थे। कुछ की आँखों में डर भी रहा होगा शायद। मैंने बच्चों से बातचीत शुरू की। अपना परिचय दिया, बच्चों से परिचय लिया। धीरे–धीरे बातचीत को उनकी पसंद/नापसंद की ओर मोड़ दिया। अवसर मिलते ही एक सवाल मैंने हवा में छोड़ दिया, ''अच्छा ये तो बताओ, खाने में कौन–सा फल सबसे अच्छा लगता है?''

तुरन्त जवाबों की रिमझिम होने लगी। ''आम, केला, अमरूद, सेब,'' आदि। कुछ ने हलवा, आइसक्रीम आदि का नाम भी लिया। जो बच्चे चुप थे, उनसे मैंने स्वयं पूछ लिया। आखिरकार यह बात उभरकर आई कि 'आम' सबसे अधिक बच्चों को अच्छा लगता है। मैंने सुझाव दिया, ''चलो, आम का चित्र बनाते हैं।'' जब मैंने ब्लैकबोर्ड पर आम बनाने का प्रस्ताव रखा तो कुछ बच्चे तुरन्त तैयार हो गए। ब्लैकबोर्ड पर तरह–तरह के आम बन गए। फिर मैंने अगला सुझाव दागा, ''जब आप सब आम बना लो, तो आम के नीचे उसका नाम भी लिख देना।''

''हमें तो लिखना नहीं आता,'' एक–दो बच्चों ने बताया। ''कोई बात नहीं। मैं बता देता हूँ'', यह कहकर मैंने ब्लैकबोर्ड पर बने आमों के नीचे 'आम' लिखा और कहा कि ब्लैकबोर्ड पर से देखकर आम का नाम लिखा जा सकता है। सभी बच्चों के चेहरों का तनाव गायब हो गया।

मेरा उद्देश्य केवल 'आम' शब्द लिखवाना नहीं था। इस काम से यह अपेक्षा बिलकुल नहीं थी कि बच्चे बिलकुल सुडौल अक्षरों में सही–सही 'आम' लिख देंगे। पर इसके पीछे मेरी मंशा यह थी कि बच्चों को इस बात का एहसास हो कि लिखे हुए शब्द का एक अर्थ होता है और बोले जाने वाले तथा लिखे जाने वाले 'चित्र' में कुछ संबंध होता है। जो शब्द या चित्र बच्चा पहली बार लिखे या बनाए, वह बच्चों की पसंद का हो, उनके लिए उसका अस्तित्व तथा महत्व हो।

जब बच्चे चित्र बनाकर मुझे दिखाने लगे, तो मैंने उनके सामने एक 'जटिल' समस्या रख दी।

''मुझे तुम्हारा नाम तो पता ही नहीं है। तुम जब अपना–अपना चित्र मुझे दिखाओगे, तो मुझे कैसे पता चलेगा कि यह किसका चित्र है? ऐसा करो, अपने चित्र के ऊपर अपना नाम भी लिख दो।''

दो–चार बच्चों को अपना नाम लिखना आता था, वे तुरन्त खुश हो गए, उन्हें समस्या का बड़ा आसान हल मिल गया था। पर कुछ बच्चों ने कह दिया ''मुझे अपना नाम लिखना नहीं आता'' जो बच्चे चुपचाप बैठे थे, संभवतः उन्हें भी अपना नाम लिखना नहीं आता था। मैंने तुरन्त आश्वासन दिया, ''कोई बात नहीं, जिन बच्चों को अपना नाम लिखना नहीं आता, उनके चित्र पर उनका नाम मैं लिख दूंगा, पर देखो, अगली बार मैं नाम नहीं लिखूंगा। अपना नाम याद कर लेना।''

इस तरह मैंने लगभग सभी बच्चों को उनके नाम लिखकर दे दिए। बच्चे खुश थे और एक–दूसरे को अपने–अपने चित्र और नाम दिखा रहे थे। मैंने उनके सामने जो समस्या रखी थी, वह शायद बड़ों के लिए बहुत हलकी या छोटी समस्या हो–''मुझे कैसे पता चलेगा कि यह चित्र किसने बनाया है?'' पर बच्चों के लिए यह एक गंभीर और वास्तविक समस्या थी। अतः उसका हल खोजने में उनकी दिलचस्पी भी गंभीर थी। इस बात के दो प्रमाण मुझे बाद में देखने को मिले। पहला, अगले दिन जब मैंने यहीं गतिविधि फिर करवाई तो मुझे केवल तीन–चार बच्चों के नाम उनके चित्र पर लिखने पड़े। अधिकतर बच्चों ने अपने नाम याद कर लिए थे। जिन बच्चों ने याद नहीं किए थे, उन्होंने पिछले चित्र से देखकर अपना नाम लिख लिया था अर्थात् उन्हें अपने नाम के अस्तित्व तथा उसे उचित रूप से इस्तेमाल करने की समझ थी।

दूसरा प्रमाण मुझे काफ़ी समय बाद तक मिलता रहा। कई बच्चे बाद में अनेक महीनों तक जब भी कुछ लिखते या चित्र बनाते, उस पर अपना नाम लिख देते ताकि मुझे पता चल जाए कि वह कार्य किसने किया है। अंत में मुझे कहना पड़ा ''अब तो मुझे तुम सबके नाम याद हो गए हैं। अब तुम्हें हर बार अपना नाम लिखने की जरूरत नहीं है।''

इन सब गतिविधियों और समस्या–समाधानों के द्वारा अनेक उद्देश्य पूरे हुए परन्तु सबसे बड़ा लाभ मुझे अगले चरण की गतिविधि में हुआ। उसमें इस बात की आवश्यकता थी कि प्रत्येक बच्चे को उसका नाम लिखना आता हो। मैंने उस गतिविधि का नाम रखा, ''आज का राजा या रानी।'' इस दौरान मैंने बच्चों को रोज़ कहानी सुनाना, नए–नए खेल खिलवाना भी जारी रखा। हर रोज़ बच्चे नए–नए शब्दों का इस्तेमाल करते, नए शब्द गढ़ते, खोजते और लिखते।

एक दिन मैंने एक मज़ेदार खेल खेलने का प्रस्ताव रखा। इस खेल का नाम बता दिया। हर बच्चे को एक–एक पर्ची दे दी गई। मैंने बताया, ''इस पर्ची पर हर बच्चे को अपना–अपना नाम लिखना है।'' नाम लिखने के बाद एक बच्चे ने सबकी पर्चियाँ एक थैली में इकट्ठी कर लीं। इसके बाद सबकी सहमति के बाद कक्षा की सबसे छोटी लड़की से एक पर्ची का चुनाव करवाया गया। मैंने पर्ची पर लिखा नाम पढ़ा और उसे ''आज का राजा'' घोषित कर दिया। ब्लैकबोर्ड पर उसका नाम लिख दिया और पढ़ दिया। उस बच्चे को आमंत्रित किया गया और सबके सामने उसे कुर्सी पर बैठने को कहा गया। उसके सिर पर कागज़ का बना मुकुट भी रख दिया गया। मैंने सबको बताया, ''सुमित जी आज हमारी कक्षा के राजा हैं। तुम सुमित जी से कोई भी सवाल पूछ सकते हो। शिकायत कर सकते हो। सुमित जी उसका जवाब देंगे।'' मैंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि यदि किसी सवाल का जवाब मालूम न हो तो राजा कह सकते है, ''मुझे नहीं पता।''

सब बहुत उत्साहित थे। शुरू में तो राजा जी कुछ शर्माए पर बाद में बहुत तत्परता से सवालों के जवाब देने लगे। कुछ सवाल और शिकायतें मैंने भी कीं। बीच–बीच में ब्लैकबोर्ड पर लिखे नाम की ओर भी मैं सबका ध्यान आकर्षित करता रहा। सबको बहुत मज़ा आया।

अब तो रोज़ कोई न कोई बच्चा ''आज का राजा'' या ''रानी'' बनता। मैं ब्लैकबोर्ड पर उनके नाम लिखता। साथ–साथ पिछले ''राजा'' या ''रानियों'' के नाम भी लिखता। कुछ हतों के बाद मैंने इस गतिविधि

को कुछ विस्तार देने का प्रयास किया। मैंने कुछ 'राजा–रानियों' के नाम ब्लैकबोर्ड पर लिख दिए जिनमें 'स' वर्ण स्वाभाविक रूप से आ रहा था। सुरेश, सुमित, संतोष, असलम, मानसी आदि मैंने उन सब नामों को पढ़ा। जिन बच्चों के नाम ब्लैकबोर्ड पर लिखे थे, उन्हें आमंत्रित किया कि वे सब बच्चों को दिखाएँ कि उनका नाम कहाँ लिखा है। इसके बाद अन्य बच्चों को मौका दिया कि वे बताएँ कि उनके मित्र या सहेली का नाम कहाँ लिखा है। उद्दश्य यह था कि सब बच्चों को उनके या उनके मित्र के नामों की पहचान हो जाए।

इसके बाद मैंने उस ध्वनि की ओर बच्चों का ध्यान आकर्षित किया जो सभी नामों में मौजूद थी। मैंने शुरूआत इस तरह की थी। ''कौन सी चीज़ इन सब नामों में एक जैसी है?'' कई जवाब आए पर अंत में हम 'स' पर पहुँच ही गए। फिर मैंने 'स' से शुरू होने वाली व 'स' अक्षर वाली अन्य चीज़ों के नामों की ओर बच्चों का ध्यान आकर्षित करवाया और जैसे–जैसे वे नाम लेते गए, मैं ब्लैकबोर्ड पर लिखता गया – पेंसिल, बस, सड़क, स्कूल, सब्ज़ी और भी न जाने क्या–क्या।

मेरा उद्देश्य था सार्थक संदर्भों द्वारा बच्चों को उनके परिचित व्यक्तियों और वस्तुओं के नामों से परिचित करवाना। कुछ समय ध्वनियों की पहचान में भी लगाया। अब यह हमारा नियमित कार्यक्रम हो गया। कुछ ही समय में बच्चों का शब्द भंडार आश्चर्यजनक रूप से बढ़ गया। अनेक अक्षरों की पहचान और उनके सार्थक उपयोग की क्षमता भी लगभग सभी बच्चों में उपस्थित थी। इस कार्य में पाठ्यपुस्तक में मौजूद रोचक तथा बालसुलभ कविताओं ने मेरी बहुत मदद की। हम सब मिलकर कविताएँ गाते। मैं बच्चों से उनकी राय पूछता। जो कविता बच्चों को बहुत अच्छी लगती, बच्चे बार–बार उसे गाना चाहते। एक बार गा लेने भर से उनका मन नहीं भरता, वे कह उठते ''सर, एक बार और।'' कुछ बच्चे कविता गाते–गाते अपने को रोक न पाते और खड़े होकर कविता के हिसाब से अभिनय तक करने लगते। कई बार मैं मज़े–मज़े में सुझाव देता, ''मैं कविता की एक पंक्ति बोलूँगा, तुम दूसरी बोलना।'' मैं बाद में क्रम उलट देता, ''पहली पंक्ति तुम बोलो, दूसरी मैं बोलूंगा।'' कभी–कभी बच्चे कविता की एक पंक्ति बोलते, मैं उनके पीछे–पीछे दोहराता।

मैं आज भी यही करता हूँ। बच्चों को बहुत आनंद आता है जब उनके 'सर' उनके पीछ–पीछे कविता दोहराते हैं। कविता उन्हें स्वतः याद हो जाती है। यह सब कार्य उनके लिए सार्थक बन जाता है। उनके अंदर नया उत्साह तथा आत्मविश्वास जाग्रत हो जाता है कि वे बड़ों का 'मार्गदर्शन' करने में समर्थ हैं। इससे पता चलता है कि ज़रा–सी सूझ से किस प्रकार एक नीरस काम सरस बन जाता है। कविता अनेक बार गाने के बाद हम जब उसको ''पढ़ते'' तो यह काम लगभग सभी बच्चों के बाएँ हाथ का खेल बन चुका होता था। कई बच्चे स्वयं पुस्तक खोलकर अपने साथी को 'पढ़ाते' दिखाई पड़ते : ''देख, यहाँ लिखी है यह कविता. ..'' वे अँगुली रखकर अपने साथी को बताते। कई बार कुछ समझ न आने पर या भूल जाने पर पंक्ति को अपने मन से शब्द जोड़कर पूरा कर देते, ठीक उसी तरह जिस तरह हम कोई गाना भूल जाने पर अपने मन से शब्द जोड़कर गाना पूरा कर लेते हैं। मैंने गौर किया, यह बदलाव हमेशा ठीक–ठीक या सटीक होता। उदाहरण के लिए, एक बार एक बच्चा अपने साथी को कविता दिखा रहा था,

''पत्ता बोले खड़–खड़–खड़।
कहें पटाखे भड़–भड़–भड़।
छुर–छुर–छुर बोलें – फुलझड़ियाँ।
रॉकेट बोले – तड़–तड़–तड़

बच्चे ने पूरी कविता अपने आप–अपने साथी को पढ़कर बताई और फुलझड़ियाँ की जगह ''छुरछुरियाँ'' बदल दिया। स्वाभाविक–सी बात है कि उसके परिवेश या घर में फुलझड़ी को छुरछुरी बोलते होंगे। मैं चुपचाप यह सब देख रहा था। मैंने उसे टोकने या 'ठीक करने' की जरूरत महसूस ही नहीं की क्योंकि उसने कोई गलती की ही नहीं थी। बल्कि मुझे अवसर मिला एक नया शब्द और संदर्भ अगली गतिविधि के लिए। हमने अगली गतिविधि में ''छुरछुरी'' शब्द के बारे में ही बातचीत की।

पढ़ना सिखाना

पढ़ाने के दो प्रमुख पहलू होते हैं – प्रेरणा वाला और जानकारी वाला। प्रेरणा वाला पहलू सीखने वाले में सुरक्षा की भावना व सीखने की प्रतिबद्धता से जुड़ा है। जानकारी का पहलू सीखने वाले के ज्ञान व कौशल से। इस लेख में हम चुने हुए शोधों पर ऐतिहासिक और अन्तर्राष्ट्रीय नज़रिया प्रस्तुत करेंगे। ज़ोर शुरुआती समय में पढ़ने में सामान्य प्रगति और बच्चों को पढ़ने में आने वाली दिक्कतों पर है।

शुरुआती तरीके :

बहुत पहले से अक्षरों से शुरू करके पढ़ाने वाला तरीका ही उपयोग में आता रहा है। लगभग 3000 वर्ष से लगभग पिछली शताब्दी तक यही तरीका उपयोग होता था। इस तरीके में अक्षर माला के एक–एक अक्षर पहले बच्चे को सिखाए जाते थे – फिर दो अक्षर वाले ध्वनि टुकड़े (Syllable जैसे ab, ed, ib, ob, ub, ba, be, bi, bo, bu ac)। पहले हर अक्षर ध्वनि को अलग–अलग बोलते थे और फिर ध्वनि टुकड़े को। धीरे–धीरे बच्चा इसी तरीके से छोटे–छोटे शब्दों तक पहुँचता था, और फिर छोटे–छोटे पाठों तक जो उस समय के शिक्षा के उद्देश्यों के अनुसार चुने जाते थे। जैसे भगवान की प्रार्थना या कैसे व्यवहार करें। अगर बच्चे शब्द नहीं जानते थे तो वह पहले अक्षर–अक्षर का के ज़ोर से बोलते थे और फिर पूरा शब्द बोलने का प्रयास करते थे। (Daries, 1973)

19 वीं शताब्दी के दूसरे हिस्से तक आते–आते वर्ण आधारित पद्धति अपना दबदबा दिखाने लगी थी (Smith, 1965)। उस शताब्दी के आखिरी दशक में न्यूजीलैंड में, एक देश जो कि पढ़े–लिखे समाज के केन्द्र से दूर था, पढ़ाने के एक तरीके पर एक किताब छपी (फार्नी 1895)। इस किताब में वर्ण से पढ़ाने के तरीके के तीन विकल्प दिए गए थे। पहलाः ध्वनि आधारित (phonic) तरीका था, जिसमें बच्चों को हर अक्षर के लिए सबसे ज्यादा उपयोग होने वाली ध्वनि सिखाई जाती थी, जैसे /b...../for b। अगर उनको कोई लिखा हुआ शब्द नहीं आता था तो उन्हें हर अन्तर की ध्वनि क्रम से उच्चारित करने को कहा जाता था और फिर यह देखना होता था कि इन ध्वनियों को जोड़ कर कौन से पहचाने हुए शब्द के करीब की आवाज़ बनती है। दूसरा बताया गया तरीका : देखो और बोलो का तरीका था। इसमें बच्चों को शब्द को पूरा देखना होता था और उससे क्या दिखा यह बताना होता था और उसमें शामिल अक्षरों को नहीं पहचानना होता था। तीसरा विकल्प : जो फर्नी शिक्षकों को इस्तेमाल करने को प्रोत्साहित करता था, वह इन तीनों तरीकों के सबसे अच्छे बिन्दुओं को एक साथ इस्तेमाल करने का था। इसमें वर्ण पहले सिखाए जाते थे, फिर देखो और बताओ और फिर ध्वनि व अक्षरों को सिखाना (phonic) जब जरूरी लगे (फर्नी 1895)।

19 वीं शताब्दी से ज्यादा विश्लेषण वाले ध्वनि आधारित तरीकों और ज्यादा सम्पूर्णता वाले 'देखो और बोलो' तरीकों के महत्त्व के बीच काफी अदला बदली हुई है। 16 वीं शताब्दी में इकेलस्मार ने जर्मन भाषा पढ़ना सिखाने के लिए ध्वनि आधारित तरीके को वर्ण आधारित तरीके से ज्यादा स्वाभाविक बताया और हार्ट ने इसे अंग्रेजी पढ़ना सीखने के लिए ज्यादा उपयुक्त बताया। लेकिन ध्वनि आधारित तरीके 19 वीं शताब्दी तक ज्यादा व्यापक रूप से नहीं उपयोग हुए। ऐसी ही बात 'देखो और कहो' तरीके के साथ भी थी जिसकी जर्मनी में सत्रहवीं शताब्दी की शुरूआत में ल्यूबिनस ने वकालत की और बाद में कोमिनस ने उपयोग किया (डेविस 1973, हलाडक्जुक व एलर 1992 चेप्टर 24)।

19 वीं शताब्दी के बाद के हिस्से में अमेरिका में वाक्य पढ़ने का तरीका, जो कि 'देखो और बोलो' से भी ज़्यादा व्यापक था (व्यापक याने जिसमें बड़ी इकाई को पहचानने का प्रयास हो) की वकालत की गई। इसके पीछे तर्क यह था कि भाषा ऐसी पूरी इकाइयों में पहचानी जाती है जो पूरे विचार को व्यक्त करे। इसलिए पढ़ना सिखाने की शुरूआत सार्थक सम्पूर्ण इकाइयों से की गई और ये इकाइयाँ न तो वर्ण हैं और न ही शब्द बल्कि वाक्य हैं।

महत्त्वपूर्ण योगदान व कार्य

साक्षरता गतिविधियों के जुड़ने से, उन्नीसवीं शताब्दी के अंत से लेकर 1920 तक 'कहानी का तरीका' काफी लोकप्रिय हुआ। यह अमेरिका के वाक्य तरीके से भी ज़्यादा व्यापक था। बच्चा पढ़ना सीखने की शुरूआत अच्छे साहित्य से ली गई पूरी कहानियों से करता था और उसी छपी सामग्री को पढ़ने का प्रयास करता था, जिसके मौखिक रूप से वह परिचित होता था (स्मिथ 1965)। 1960 और 1970 के दशकों में भाषाई अनुभव विधि का कई अंग्रेज़ी बोलने वाले देशों में प्रभाव था। इसमें पढ़ने को उन भाषाई क्षमताओं को आगे बढ़ाना माना (समझा) था जो बच्चा हासिल कर चुका था। पढ़ाने में ज़ोर पढ़ने को सार्थक संप्रेषण का माध्यम समझने पर था।

आजकल का पूर्ण भाषा तरीका कुछ हद तक भाषा अनुभव तरीके से विकसित हुआ है। सम्पूर्ण भाषीय तरीके में जिन साहित्यिक गतिविधियों में बच्चे शामिल होते हैं, उनकी सम्पूर्णता व अखंडता के साथ–साथ सार्थक संप्रेषण पर ज़्यादा ज़ोर है। सिखाने के लिए शुरुआती पठन सामग्री में भी अच्छे साहित्य के उपयोग को प्रोत्साहित किया गया है (गोल्डमैन 1989)। इस विधि में अच्छे साहित्य पर इतना ज़ोर है कि 'पूर्ण साहित्य' कहना इस पद्धति के लिए ज्यादा उपयुक्त नाम होगा। इस तरीके के कई स्वरूप इंगलैण्ड, अमेरिका, कनाडा और न्यूजीलैंड में उपयोगी माने जाते हैं (हलादक्जुक व ऐलर 1992)। अमेरिका के परिप्रेक्ष्य से हेरिस (1993) ने उन मुद्दों का परीक्षण किया है, जो पढ़ना सिखाने की साहित्य–आधारित पद्धतियों में उठते हैं। स्थाल और मिलर (1989) ने अमेरिका में हुए बहुत से अध्ययनों का विश्लेषण किया जिनमें पढ़ना सीखने में अलग–अलग तरीकों से हासिल क्षमता का अध्ययन हुआ था। इसमें भाषायी अनुभव और सम्पूर्ण भाषा कार्यक्रमों की तुलना, बेसल पढ़ने के कार्यक्रमों से की गई। इन बेसल कार्यक्रमों में अच्छे साहित्य का उपयोग कम प्रतीत होता है और इनमें पठन सामग्री क्रम में व्यवस्थित करके बनाई जाती है, और पढ़ाने के तरीके भी टुकड़े–टुकड़े का विश्लेषण करके बने हैं। इनमें ध्वनि या एक–एक शब्द लेकर पाठ शामिल हैं। इसमें सबसे रोचक बात यह थी कि ज़्यादा ध्यान से किए गए अध्ययनों में किसी भी तरीके के पक्ष में निष्कर्ष नहीं दिखा। किन्तु इन अध्ययनों में पाठक की पाठ सामग्री की आलोचना व मूल्यांकन और साहित्य को कला के रूप में देख पाने की क्षमता का आकलन शामिल नहीं था।

एक प्रमुख मसला यह भी है कि क्या प्राथमिक शाला के बच्चे अपने द्वारा पठित सामग्री के बारे में अपनी राय को प्रमाणित करने के लिए पढ़ने के अनुभवों के संदर्भ में कुछ कसौटियाँ विकसित कर पाएँगे? क्या उनमें अपने पढ़ने के अनुभव को निरपेक्ष ढंग से (objectify) आकलन करने की क्षमता है, और क्या वे अपने अनुभव के बारे में अलग–अलग नजरिये स्वीकार कर सकते हैं? पिनसेन्ट ने अपने पठन अनुभव के बारे में बच्चों की राय पर हुए शोध का विश्लेषण किया है। इसमें पठित सामग्री का नजरिये, लेखक और अन्य पाठक के नजरिये शामिल किए गए थे। अवलोकन ये दिखाते हैं कि 10 साल की उम्र से बच्चे साहित्यिक सामग्री का आकलन करने लग सकते हैं। इस उम्र से ही उन्हें ऐसे शिक्षण से फ़ायदा होगा जो साहित्य को कला के रूप में स्पष्ट रूप से देखे और उसके उस दृष्टि से आकलन की अपेक्षा रखे व बच्चों को इस बारे में अपना मत विकसित करने में मदद करे।

शब्द पहचान

बीसवीं शताब्दी में बच्चों में शब्द पहचानने की क्षमता लाने की दोनों पद्धतियों यथा टुकड़ों को अलग पहचान कर (विश्लेषण तथा analytic method) और सम्पूर्ण के साथ अंतःक्रिया कर (global method), के बीच बहस लगातार हो रही है। बहस का यह मुद्दा सभी लिपि – ध्वनि तंत्रों चाहे वह काफी अधिक सामान्य व व्यवस्थित (सर्वा–करोशियन और हाँगुल दक्षिण कोरिया) का हो, चाहे वह लगभग सामान्य व व्यवस्थित जर्मन हो या रूसी लिपि का हो या फिर अंग्रेज़ी का जिसमें अक्षरों व ध्वनि इकाइयों के संबंध काफी जटिल हैं। यह मुद्दा चीनी भाषा पढ़ना सिखाने के संदर्भ में उठता रहा है कि क्या हम पढ़ना सिखाने में विश्लेषणात्मक पद्धति अपनाएँ जिसमें संकेतों को जैसे वे दिखते हैं उसके आधार पर इकट्ठे रखकर सिखाया जाएगा या फिर संपूर्णता व अर्थ पद्धति अपनाएँ जिनमें संकेतों को सार्थक भाषाई संदर्भों जैसे लिखित कहानी के संदर्भ में ही पढ़ाया जाएगा। (हलादक्जुक व ऐलर, 1992 अध्याय 4)।

बच्चों को लिखित सामग्री पढ़ना सिखाने के कई वैकल्पिक ध्वनि तरीके सोचे गए हैं। 1920 तक आते–आते अमरीका में लिखित अक्षर व उनकी आवाज़ के संबंध को अलग–अलग शब्दों में आए उसी अक्षर व उसकी ध्वनि की तरफ ध्यान दिला कर सिखाया जाता था।

उदाहरण के लिए शब्दों सन, सॉ, सैट के लिखित रूप sun, saw, sat प्रस्तुत किए जाते थे और शिक्षक इन्हें ऐसे उच्चारित करता था, जिसमें शुरुआती 'स' की आवाज़ लम्बी हो। साथ–साथ ऐसे वर्तनी क्रम (पैर्टन) जो एक संपूर्ण ध्वनि टुकड़े (phoneme) से ज़्यादा बड़े थे का भी उपयोग किया जाने लगा था। शिक्षक 'एट' (at) जैसे ध्वनि समूह (phonogram) प्रस्तुत करते थे और बताते थे कि और अक्षर जोड़ने से यह कैसे सैट, बैट, फैट (sat, bat, fat) बन जाता है। ध्वन्यात्मक विश्लेषण (analytical phonics) के इस तरीके का अध्ययन गेट्स (Gates, 1928) के अध्ययनों में किया गया है।

पढ़ना सीख पाने की दर के संदर्भ में ऐसे शिक्षण कार्यक्रमें (जिनमें ध्वनि विश्लेषण पर ज़ोर है) की तुलना ऐसे संपूर्ण भाषाई कार्यक्रमों, जिनमें ऐसा ज़ोर नहीं है या बहुत कम है से की जाती रही है (जैसे फुरमैन, फ्रांसिस, नोवी और लिबरमेन, 1991)। दिक्कत यह है कि यह सब अध्ययन सभी कारकों (variable), जिनका अगर कक्षा व सीखने पर पढ़ सकता है उनका ध्यान नहीं रख पाते जिससे निष्कर्ष अस्पष्ट हो जाते हैं। इसमें यह स्पष्ट नहीं है कि इन कारकों का असर होगा या नहीं। फिर भी असर नहीं होगा यह स्पष्टता न होने से भ्रम की स्थिति बनती है। इन कारकों में अलग–अलग कार्यक्रमों में लिखित शब्दों की अलग–अलग शब्दावलियों का उपयोग, उनकी बच्चों के सामने रखने की दर शिक्षकों में अंतर का प्रभाव, पढ़ाने के समय में अंतर और पढ़ने वालों के शुरुआती स्तर में पृष्ठभूमि आदि में अंतर शामिल हैं।

हाल के कुछ अध्ययन सीखने का स्तर छोड़कर इस बात को जानने की कोशिश करते हैं कि अगर हम ऐसे बच्चे ले लें जो अलग–अलग कार्यक्रमों में होने के बावजूद स्तर हासिल कर पाए हैं तो क्या उनके सीखने की प्रक्रिया अथवा तरीके में कोई फ़र्क है? (जोनसन, थोम्पसन, लेचर–सिन्न और हौलिग्न 1995, थोम्पसन, समर और निकोलसन, 1993)। उदाहरण के लिए कौनोली, जोहस्टन व कोम्पसन ने पाया कि 5–6 साल के बच्चे जिन्हें ध्वनि आधारित तरीके को कहानी पढ़ने के साथ जोड़कर सिखाया गया था, की तुलना जब सम्पूर्ण भाषा कार्यक्रम के बच्चों से की गई तो ध्वनि आधारित पद्धति वाले बच्चे नये किन्तु सामान्य नियमों का पालन करने वाले शब्दों और ऐसे संकेतों (blum), जिन्हें नकली शब्द कहा जा सकता है, को पढ़ पाते थे किन्तु असामान्य अक्षर – उच्चारण वाले साधारण शब्द (जैसे sword) को नहीं। जिन बच्चों को ध्वनि आधारित तरीकों से सिखाया गया था, वे सामग्री को ज़्यादा समझ पाते थे, शायद शब्दों के रचना को बारीकी से देखने के कारण, जो उनके पढ़ने की धीमी दर से भी प्रतीत होता है।

शब्दों को पहचानना सिखाने के लिए सम्पूर्ण भाषा पद्धति वाले अकसर कहते हैं कि शिक्षक पठित सामग्री को पढ़कर उस संदर्भ में शब्दों के अर्थ का अनुमान लगाने की प्राथमिकता दें। बच्चों को प्रोत्साहित करें कि वे इसे कई बार करें। इसके विपरीत काफ़ी शोध हैं जो दिखाते हैं कि पढ़ने वाले संदर्भ का ज्ञात शब्दों को पहचानने के लिए उपयोग नहीं करते (पेरफेटी 1995)। अज्ञात शब्दों को पढ़ने का प्रयास करने में संदर्भ कुछ उपयोगी जानकारी दे सकता है, खास तौर पर पढ़ना शुरू कर रहे पाठकों के लिए (निकलसन 1991)। परन्तु यह भी पाठक द्वारा अक्षर को ध्वनि के साथ जोड़ने की जानकारी को साथ उपयोग करके ही होता है। प्रमाण हैं कि यही बात न्यूज़ीलैण्ड में पूर्ण भाषाई पद्धति से पढ़ाए जा रहे बच्चों के संदर्भ में है (हनमर व चैपमैन, 1997)। पढ़ना को पढ़ाने के तरीकों के बारे में दी गई सिफारशों को पढ़ने पर हुए शाध में इकट्ठे हुए अवलोकनों से फायदा हो सकता है (एहरी, 1994)। इनमें उन प्रक्रियाओं के बारे में अवलोकन है जो पढ़ने की क्षमता विकसित करते समय बच्चे शब्द पहचानने के लिए उपयोग करते हैं।

वर्ण आधारित शिक्षण का सिद्धान्त

पढ़ना सिखाने की शुरूआत के लिए 16 वीं शताब्दी में ही जर्मनी में इकरस्लेनर ने शिक्षकों को इस बात पर ध्यान देने को कहा कि इन्सानों ने सबसे पहले पढ़ना कैसे सीखा। उन्होंने कहा कि आप बच्चों को बोले गए शब्दों को उनको बनाने वाली ध्वनि इकाइयों के टुकड़ों को मन ही मन बाँटकर पहचान पाना सिखाए और फिर उन्हें अक्षर सिखाएं (डेविस 1973)। पिछली शताब्दी के मध्य में रूस में उशनिस्की ने ऐतिहासिक तरीके की वकालत की, यह तरीका अक्षर–ध्वनियों में लिखने की पद्धति का विकास किस प्रकार हुआ होगा, उन पर आधारित था (डौब्निंग 1988, बर्नबेय का विश्लेषण लूमर में भी देखें)। चूँकि यह आविष्कार (invention) अमूर्त ध्वनि–टुकड़ों के समूह को पहचानने पर निर्भर थी जो हमारी भाषा की रचना करते हैं, इसलिए बोले गए शब्दों के इन पहलुओं पर जाना बच्चे को पढ़ना सिखाने का पहला कदम है। उदाहरण के लिए, बच्चे को एक ध्वनि इकाई को पहचानना सिखाने के लिए बहुत से बोले गए शब्दों को चुनते हैं, जो एक ही ध्वनि से शुरू होते हैं जैसे /क/ और फिर किसी बोले गए शब्द के पहली ध्वनि और आखिरी ध्वनि टुकड़े को पहचानने का प्रयास करवाते हैं। इस तरीके को कभी भी ठीक से इस्तेमाल करने का मौका नहीं मिला। हालाँकि पढ़ना सीखना शुरू करने के कुछ इसी तरह के तरीके 1960 व 70 के दशक के दौरान रूस से में खोजे गए। इनका अध्ययन एल्कोनिन ने किया (डोब्निंग 1973 व 1988 Chapter, 22)।

ध्वनि सिद्धान्त का ज्ञान यानेकि यह जानना कि किसी शब्द के अक्षरों का संबंध उस शब्द की अलग–अलग ध्वनियों से है (और यह एक के साथ एक के जुड़ाव का संबंध है) इस ज्ञान से अधिक है जो कि अक्षरों को स्थाई ध्वनि के चिह्न रूप में देखता है। बच्चे यह सीख सकते हैं कि /but/ ध्वनि विवरण के रूप में अक्षर b के लिए उपयुक्त है। किन्तु, अगर वह /job/ और /crab/ जैसे शब्दों में समान phoneme नहीं पहचान सकते तो उन्हें अक्षर नियम (alphabatic principle) नहीं अख्तियार किया। सामान्य गति से आगे बढ़ने के लिए यदि हम यह मान लें कि पढ़ना सीखना शुरू करते समय इस सिद्धान्त को जान लेना (implicit knowledge) व उसका मतलब समझ पाना जरूरी है, तो शिक्षक को सुनिश्चित करना होगा कि उसके छात्र इसे जल्दी सीख जाएँ। यह सवाल उठेगा कि क्या यह ज्ञान अपने–आप बच्चे में बनता रहता है और इसके अचानक अपने–आप उभरने का इन्तजार करना चाहिए या इसे भी खास तौर से पढ़ाकर सिखाया जा सकता है।

आस्ट्रेलिया में काम कर रहे बायर्ने व फिल्डिंग (बार्नस्ले 1995) ने यह दिखाया है कि 4 साल के बच्चों को स्कूल में पढ़ना सिखाने का कार्यक्रम शुरू होने से पहले ही, 12 हते ध्वनिम इकाइयों का (phoneme identities) ज्ञान सिखाया जा सकता है। लेकिन इन बच्चों व अन्य बच्चों के साथ, दो–तीन साल स्कूल में रहने के बाद, जिसमें अक्षर/ध्वनि के बीच संबंध पर भी थोड़ा बहुत सिखाया गया था, किए

गए अध्ययनों ने दिखाया कि इस समय के बाद ये बच्चे सामान्य शब्दों को पढ़ने में अन्य बच्चों से बेहतर नहीं कर पाते। इस अध्ययन ने लेकिन यह ठीक वर्तनी में लिखे अर्थहीन खेल–खेल में बने शब्दों को ये बच्चे ज्यादा बेहतर पढ़ पाते हैं। इसके विपरीत बॉल व ब्लाकमैन (1991) का अध्ययन है। अपने इस अध्ययन में उन्होंने दिखाया कि सात हते तक ध्वनि संकेत टुकड़ों की पहचान व अक्षरों के साथ उनके ध्वनि चिह्नों को जोड़ने का अभ्यास करने से 5 साल के बच्चे सरल व सामान्य वर्तनी वाले शब्दों को बेहतर ढंग से पढ़ पाते हैं। शब्द उन अक्षरों के नहीं होने चाहिए जिन्हें पढ़ना उन्होंने सीखा है। जिन बच्चों पर यह अध्ययन किया गया वे अमेरिका के एक किन्डरगार्टन (पूर्व प्राथमिक) के ऐसे कार्यक्रम में सम्मिलित थे जिसमें पढ़ना सिखाने का कोई व्यवस्थित कार्यक्रम नहीं था। यह आश्चर्य की बात है कि पढ़ने में यह अतिरिक्त क्षमता बच्चों को अक्षर सिद्धान्त का अपरिचित शब्दों पर इस्तेमाल सिखाए बिना हासिल हो गई। इन तरीकों के उपयोग को सिखाने से शायद पढ़ने की क्षमता में और ज्यादा बढ़ोतरी हो पाती। टर्नर और चैपमैन ने एक ऐसी (meta-cognitive) तरीके के बारे में चर्चा की है जो किसी बच्चे में अपरिचित शब्दों को, पहचानने के लिए उपयोगी (strategic) ज्ञान पर विचार करती है।

पढ़कर समझना

बहुत सी वे क्षमताएँ जो समझकर पढ़ने की क्षमताओं में वर्गीकृत की जाती हैं, वास्तव में भाषा को समझने की क्षमताएँ हैं। ये सिर्फ पढ़ने से विशेष रूप से जुड़ी नहीं हैं। (थोम्पसन, टर्नर व निकोलसर, 1993)। मुख्य बात किन्तु यह है कि क्या छपी सामग्री को पढ़कर समझने की क्षमता का विकास सीधे–सीधे पढ़ना सिखाने की प्रक्रिया पर कक्षा में कार्य कर किया जा सकता है। यह कई देशों में चर्चा का विषय रहा है। जैसे जापान में ही पढ़ाना सिखाने के कुछ तरीके स्पष्ट रूप से ध्वनियों व अक्षरों के टुकड़ों का उपयोग करते हैं और कुछ ज़्यादा सम्पूर्ण भाषाई इकाइयों को लेते हैं (डॉवनिंग, 1973)। 1980 के दशक से ही अमेरिका में पढ़ना सिखाने के एक ऐसे मॉडल (पद्धति) में बहुत रुचि बनी है, जिसमें बच्चों को बहुत सी अक्षर वर्णित पद्धतियों को मिला–जुलाकर पढ़ना सिखाया जाता है। इसमें मॉडल में यह भी समझ है कि कौन सी पद्धति कब और क्यों उपयोग की जानी चाहिए (डोल, डफी, टोहेलर और पियरसन 1991; पियरसन व फिल्डिंग, 1991)। अमेरिका के कई शोधकर्त्ताओं ने यह भी पता करने का प्रयास किया है कि ऐसे तरीकों को क्या वास्तव में सिखाया भी जा सकता है और क्या सीखने वाला उन्हें सफलतापूर्वक ज्ञात विषय से सम्बन्धित परन्तु नई व अज्ञात पठन सामग्री पर उपयोग कर सकता है।

लेकिन इनमें से बहुत थोड़े से ही अध्ययन ऐसे हैं जो रिसर्च के सही व मान्य तरीकों के स्तर के हैं (प्रेसले व अन्य 1989)। राफनेल व वोम्नाकोट (1985) ने पाया है कि 9 साल के बच्चों को यह सिखाया जा सकता है कि पढ़कर समझने से संबंधी प्रश्नों (बोध प्रश्नों) के संदर्भ में कुछ सवालों के उत्तर तो दी गई सामग्री में सीधे ही मिल जाएँगे, कुछ के हल दी गई सामग्री तक हम विचार कर पहुँच सकते हैं और इसमें पठन सामग्री में अलग–अलग जगह व्यक्त बातों का उपयोग होने की आवश्यकता पड़ सकती है, या फिर यह भी है कि समझकर उत्तर देने के कुछ प्रश्नों के संदर्भ में पाठक को अपने पहले ज्ञान का भी उपयोग करना होता है। डवाइट्ज़ कार व पैटबर्ग 1987 ने पाया कि 10 साल के बच्चों को अपने ज्ञान को पठन सामग्री के साथ जोड़कर समझना सिखाया जा सकता है। उन्हें पाठ की सामग्री में निहित व्यवस्था को समझना भी कुछ हद तक सिखाया जा सकता है।

पढ़ना सिखाने के इस ढंग पर कई सवाल हैं और कई लोग इसे ठीक नहीं मानते। एक विरोध तो यह कि पढ़ना सिखाने के इस तरह के तरीकों की कोई ज़रूरत नहीं, यदि बच्चे पढ़ने को प्रेरित हैं और वे ऐसे पाठों को पढ़ने का प्रयास नहीं कर रहे हैं, जो उनके स्तर से ऊपर हैं (कार्वर 1987)। एक और विरोध यह है कि यह समझना व ध्यान रखना कि कब और कहाँ कौन सी विधि (strategy) उपयोग करनी है, बहुत

मुश्किल है और पढ़कर समझने के कार्य से भी ज्यादा ध्यान व मेहनत की माँग करती हैं (पियरसन व फिल्डिंग, 1991)। एक और समस्यात्मक पहलू यह है कि पढ़ने का ढंग सिखाने के प्रयास में कक्षा बिल्कुल एक तरफा हो जाती है। इसमें सिर्फ शिक्षक बताता है और बच्चे सुनते हैं, न तो बच्चों की तरफ से ही कक्षा में कुछ आता है और न ही शिक्षक बच्चों के व्यवहार व्यक्त बातों के मद्देनज़र कुछ कर पाता है। प्रेसले आदि (1992) पढ़ाने के एक ऐसे अनुभव के बारे में बताते हैं जिसमें इस समस्या का सामना करने का प्रयास है और जिसमें सिर्फ दिए गए विचारों को निकलवाने के स्थान पर पढ़ने वाले के विविध अर्थों, भावनात्मक व कलात्मक प्रतिक्रियाओं को विमर्श में शामिल किया जाता है।

आगे की दिशा – अब यह समझ धीरे–धीरे साफ हो रही है कि अक्षर–ध्वनि संबंध का सिद्धान्त (alphabetic principle) का उपयोग पढ़ना शुरू करने वाली कई तरह से कर सकती है। बच्ची पढ़ाई गई निश्चित ध्वनियों को अक्षरों के स्थान पर उपयोग करके अपरिचित शब्दों को ध्वनि के आधार पर पहचानने का प्रयास कर सकती है। याने वह ज्ञात अक्षरों के स्थान पर सिखाई गई ध्वनि निकालेगी और पहचानने का प्रयास करेगी कि इससे क्या शब्द बनता है।

एक और तरीका यह है कि बच्ची अपने आप अपनी शब्दावली जो वह पढ़ पाती है में से नये, यानी जो उसे सिखाए नहीं गए हैं, अक्षर–ध्वनि संबंध के पैटर्न खोज ले। ध्वनि–अक्षर नियम के बहुत से हिस्से हमारी ज्ञात शब्दावली में निहित हैं। जैसे कि छपे शब्द sit, cat और not की अंतिम आवाज़ व अक्षर एक जैसे ही हैं। इसी तरह ball, fall, wall में भी एक ही तरह के अक्षर व ध्वनि अंत में है। इस तरह के खुद बनाए व सीखे गए नियमों का उपयोग अपरिचित शब्दों को पहचानने के लिए कर सकते हैं (थाम्पसन, काट्टरल और फलेचर–फिन्न 1996; थोम्पसन व निकलसन)।

ध्वनि–शब्द नियम को इस्तेमाल करने का एक और तरीका भी है। बच्चा उससे मिलता–जुलता शब्द जैसे जंप (jump) का उपयोग hump जैसे किसी अपरिचित शब्द को पहचानने के लिए कर सकता है। नये शब्द को समान ध्वनि व अंतिम अक्षर वाले शब्दों को पढ़ने के संदर्भ में नये शोध के निष्कर्षों ने इस बात की वकालत को पुख्ता किया है कि पढ़ना शुरू करने वालों को ऐसे पढ़ना सिखाना चाहिए। लेकिन दुर्भाग्य है कि ऐसा पढ़ने की वकालत करने वाले लोगों ने शोधों को नज़रन्दाज किया है जो यह दिखाते हैं कि अक्षर की ध्वनि के साथ मिलाकर पढ़ना सिखाने वाले तरीके के शुरुआती पढ़ने वालों के लिए परिणाम इससे ज्यादा अच्छे होते हैं (सुलिवन, ओकाडा व न्यादीमेयर, 1971)। समान शब्द तरीके का अपरिचित शब्दों को पढ़ने में सक्षम व स्वतः प्रयोग, यह माँग करता है कि बच्ची अपने उस शब्दकोश, जिसे वह पढ़ सकती है, में से उस शब्द के समान शब्द को ढूंढ़ पाए। जब तक कि यह पढ़ पाने वाला शब्दकोश काफी बड़ा नहीं होगा तब तक समान शब्द इस्तेमाल कर नया शब्द पढ़ना आसानी से संभव नहीं होगा और इसका बहुत कम उपयोग हो पाएगा। ध्वनि विज्ञान (phonics) बच्ची को सीमित संख्या में ही ध्वनि–अक्षर संबंध सीखने के मौके देती है। यह स्पष्ट नहीं कि इस तरह का पढ़ाना बच्ची को न सिखाए गए नियमों को स्वयं सीखने में कितना सक्षम बनाता है। भाषा व लिपि जिनमें संबंध जटिल है, में अक्षर–ध्वनि संबंध के बहुत सारे पैटर्न होते हैं। इन में से हरेक पर बच्चे व शिक्षक अलग–अलग विशेष ध्यान देकर अभ्यास नहीं कर सकते। कुछ ऐसे नियमों का शायद स्वयं सीखना कुदरती होता है।

इसके बिना पढ़ने की क्षमता हासिल करना मुश्किल है। बाद का विमर्श इस पर ही होगा कि शिक्षकों की ज़िम्मेदारी यह देखना है कि कब बच्चों को शब्दों की ध्वनियों का विश्लेषण करना ज़रूरी है और कब इस तरह के संपूर्ण विश्लेषण की आवश्यकता नहीं है। उन्हें यह भी तय करना है कि किस बच्चे के लिए इस तरह के विश्लेषण का कितना अनुभव पर्याप्त है। आगे के अध्ययन को यह भी दिखाना होगा कि विश्लेषणात्मक तरीकों पर किए गए अध्ययनों से आने वाले निष्कर्षों को बच्चों को अधिक सक्षमता से पढ़ना सीखना सिखाने में कैसे उपयोग किया जाएगा।

रेफरेन्सेज

बॉल, ई.डब्लू एण्ड बी.ए. ब्लाचमैन 1991. डज फोनिम अवेअरनेस ट्रेनिंग इन किंडरगारटेन मेक अ डिफरेंस इन अर्ली वर्ड रिकॉगनिशन एण्ड डेवलपमेंटल स्पेलिंग? रीडिंग रिसर्च क्वार्टर्ली 26, 49, 66।

बायर्ने, बी. एण्ड आर. फिल्डिंग बार्नस्ले 1995. 'इवैल्यूएशन ऑफ अ प्रोग्राम टू टीच फोनेमिक अवेअरनेस टू यंग चिल्ड्रेन : अ 2 – एण्ड 3–इअर फॉलो–अप एण्ड अ न्यू प्री–स्कूल ट्रायल, जौर्नल ऑफ एजुकेशनल साइकोलॉजी 87, 488–503।

कार्वर, आर.पी. 1987. शुड रीडिंग कंप्रिहेन्सन स्किल्स बी टॉट? इन जे.ई. रीडेन्स एण्ड आर.एस. बाल्डविन (एड्स), रिसर्च इन लिटरेसी : मर्जिंग पर्सपेक्टिवज, थर्टी–सिक्सटी इअरबुक ऑफ दि नेशनल रीडिंग कन्फ्रेंस, 115–126, नेशनल रीडिंग कन्फ्रेंस, रोचेस्टर एन वाइ।

डवीज, डब्लू.जे.एफ. 1973. टीचिंग रीडिंग इन अर्ली इंगलैंड, पिटमैन, लंदन, यू.के.।

डवाइटज, पी.ई.एम. कार एण्ड जे.पी. पैटबर्ग 1987. इफेक्ट्स ऑफ इन्फेरेन्स ट्रेनिंग ऑन कंप्रिहेंसन एण्ड कंप्रिहेंसन मॉनिटरिंग, रीडिंग रिसर्च क्वार्टर्ली 22, 99–121।

डोल, ज.ए., जी.जी. डफी, एल.आर. रोएहलर एण्ड पी.डी. पियरसन 1991. मूविंग फ्रॉम दि ओल्ड टू दि न्यू : रिसर्च ऑन रीडिंग कंप्रिहेंसन इन्सट्रक्शन, रिण्यू ऑफ एजूकेशनल रिसर्च 61, 239–264।

डॉवनिंग, ज.ए. (एड.) 1973. कंपरेटिव रीडिंग क्रॉस–नेशनल स्टडीज ऑफ बिहैविअर एण्ड प्रॉसेसेज इन रीडिंग एण्ड राइटिंग, मैकमिलन, न्यूयार्क।

डॉवनिंग, जे.ए. (एड.) 1988. कॉग्निटिव साइकोलॉजी एण्ड रीडिंग इन दि यू.एस.एस.आर. नॉर्थ हालैण्ड, ऐम्सटरडम (ट्रांसलेशन ऑफ रस्सन राइटिंग फ्रॉम दि 1930 ज़ टू 1980 ज़.)।

एहरि, एल.सी. 1994. डेवलपमेंट ऑफ दि ऐबिलिटी टू रीड वर्ड्स : अपडेट, इन आर.बी. रुड्डेल, एम.आर. रुड्डेल एण्ड एच. सिंगर (एड्स.), थ्योरेटिकल मॉडेल्स एण्ड प्रॉसेसेज ऑफ रीडिंग (फोर्थ एडीशन), 323–358 इंटरनेशनल रीडिंग एसोसिएशन, नेवर्क डे।

फरनी आर.सी. 1895. मैनुअल ऑफ स्कूल मेथड, व्हिटकोम्बे एण्ड टॉम्ब्स, क्राइस्टचर्च, न्यूजीलैण्ड।

फुअरमैन, बी.आर., डी.जे. फ्रैंसिस, डी.एम. नोवि एण्ड डी. लिबरमैन 1991. 'हाउ लेटर–साउंड इंस्ट्रक्शन मेडिएट्स प्रॉग्रेस इन फर्स्ट–ग्रेड रीडिंग एण्ड स्पेलिंग, जौर्नल ऑफ एजुकेशनल साइकोलॉजी 83, 456–469।

सबक–VI
अब्रलिखना किस चिड़िया का नाम है?

पाठ 1. लिखना–क्या और कैसे? : उभरता हुआ कौशल है – छात्रों की आँखों से – लेखन के अंग – सामाजिक प्रभाव – बेहतर लेखन के लिए।

पाठ 2. लिखना सिखाने के उभरते आयाम : लेखन क्या है? – लेखन कौशल क्या है? – लेखन सिखाया जा सकता है? – समस्याएँ – लिखना सिखाने के अलग–अलग तरीके – लिखना सिखाने के नमूने।

पाठ 3. लेखन के विविध प्रकार : लिखने की अलग–अलग किस्में इनमें फर्क कहाँ–कहाँ है? – विभिन्न प्रकारों को सिखाने के अभ्यास।

पाठ 4. लिखना – बातचीत : लिखना एक तरह की बातचीत – लिखने की शुरूआत – शुरूआत के बाद का कदम – टीचर की प्रतिक्रिया – कुछ गतिविधियाँ।

अगर बोलने से बात हो जाती है तो लिखने की जरूरत क्या है? हज़ारों सालों से वेद लिखे नहीं गये, सिर्फ याद करके गाए गये। इनको लिखने की ज़रूरत क्यों नहीं समझी गयी? ऐसा नहीं कि भारत में लिखने की कला नहीं थी, या फिर लिखने के साधन नहीं थे।

वेदों की बात फिलहाल छोड़कर, ज़रा देखते हैं कि हमारे इतिहास में लिखना क्यों शुरू किया गया। सबसे पुराने लिखने के निशान पाये जाते हैं हड़प्पा सभ्यता के खडंहरों में। उसके बाद के काल में फिर आते हैं सम्राट अशोक के शिलालेख। इन सब में क्या लिखा गया है?

हड़प्पा की भाषा तो अब तक नहीं पहचानी गयी है, लेकिन वहाँ की लिखाई जिस–जिस चीज़ों पर की गयी है उनसे यह बात साफ है कि लिखाई का इस्तेमाल खासकर व्यापार के लिए किया जाता था। जैसे इस बोरे/कलश में कितना सामान रखा है? जैसे पिछले महीने कितने बोरे/डब्बें माल भेजा गया, या मिला? जैसे लेन–देन का हिसाब क्या है? साफ है, व्यापार में बोलना काफी नहीं जिससे बात करनी है वह कोसों दूर है। या फिर, जो बात है उसका परमानेन्ट सुबूत रखना है ताकि बाद में कोई मुकर न जाए। अब कुछ कुछ समझ आती है लिखने की ज़रूरत।

आगे देखें। सम्राट अशोक ने अपने शिलालेख कहाँ–कहाँ लगवाये थे? अपने साम्राज्य की सरहदों पर, ताकि बाहर से आने वाला हर इंसान इनको पढ़े। शिलालेख अन्दरूनी विशाल साम्राज्य के खास खास चौरास्तों, शहरों, और तीर्थों में भी लगवाये गये थे। खैर, इन शिलालेखों पर सम्राट ने लिखा क्या था? वे थे साम्राज्य के नियम–कानून। जैसे क्या–क्या शिकार करना जायज़/नाजायज़ है, जैसे क्या–क्या करना अपराध है, जैसे अलग–अलग जुर्मों की सज़ा क्या है, जैसे टैक्स कितना देना है, और किसको देना है, जैसे विदेशियों से कैसे बर्ताव करना है, वगैरह।

जाहिर है : चूँकि इंसान का सामाजिक फैलाव जब बड़ा हो जाता है और दूर–दूर फैल जाता है, तब समाज को ठीक से बाँधे रखने के लिए लिखाई की ज़रूरत पड़ती है।

इन सब से बाद में उपजती है लिखने की अन्य जरूरतें – कथा–कहानी, पत्र, विज्ञान, इतिहास, आदि।

सुनने की दूसरी ओर है बोलना। और पढ़ने की दूसरी ओर है लिखना। पूरी इमारत कुछ ऐसी है:

सुनना	बोलना
पढ़ना	लिखना

लिखना कैसे सिखाया जाए, सिखाने में क्या दिक्कतें आती हैं, उनको कैसे आसान किया जाए, लिखने का कौशल कैसे बेहतर बनाया जाए, पढ़के देखों।

लिखना – क्या और कैसे?

लिखना

लिखने की कला कैसे विकसित होती है? उसमें ऐसे कौन से ज्ञानवर्धक (cognitive) और सामाजिक रचनात्मक तरीके हैं?

विकासशील बदलाव :

बच्चों में लिखने की क्षमता दो से तीन वर्ष की उम्र में घसीटों (आड़ी तिरछी रेखाएं) द्वारा आरम्भ होती है।

बचपन में motor skills अच्छी तरह विकसित हो जाती है और वे अपना नाम अथवा अक्षरों को छाप सकते हैं। अमरीका में अधिकतर चार वर्ष के बच्चे अपना पहला नाम लिख सकते है। पांच वर्ष के बच्चे अक्षरों और छोटे शब्दों का भी पुननिर्माण कर सकते है। जैसे–जैसे वे अपने लिखने की कला विकसित करते हैं, वैसे ही वे यह पहचानना भी सीख जाते हैं कि अलग–अलग अक्षर किस प्रकार बनते हैं एवं इसके विशेष गुण जानने लगते हैं। जैसे विभिन्न अक्षरों में रेखाएं किस प्रकार से बनती है, अगर घुमावदार है तो कैसी है, बन्द है या खुले आकार की है इत्यादि। प्रारम्भिक कक्षाओं में कई बच्चे b और d तथा p और q में गड़बड़ी करते हैं (टेम्पल और अन्य, 1993) परन्तु विकास के इस पायदान पर अगर उनका अन्य आयामों में विकास सही चल रहा हो तो इस तरह की अक्षरों की गड़बड़ियाँ उनकी समझ शक्ति का आकलन करने की भविष्यवाणी नहीं मानी जा सकती।

जब बच्चे लिखना शुरू करते हैं तो कई बार वे अपने खुद के हिज्जे (Spellings) बनाते है, वे ऐसा इसलिए करते है क्योंकि वे शब्दों के उच्चारण को उसके बनावट का आधार मानते है।

शिक्षकों और अभिभावकों को चाहिए कि वे इनके लिखने की आदत को प्रोत्साहन दें बिना इस बात की ज्यादा चिंता करे कि उनकी अक्षरों की बनावट या उनके शब्दों को लिखने में अशुद्धियाँ हो रही है। इसी संदर्भ में मैंने (आपका लेखक) अपनी सबसे छोटी बेटी जेनिफर की पहली कक्षा की शिक्षिका से चर्चा की क्योंकि उन्होंने उसके गृहकार्य के लिखे हुए कई कागज़ लौटा दिए तथा उन पर उन्होंने उसकी गलती पर कई टिप्पणियाँ और रोते हुए चेहरे बना दिये थे। मैंने उन्हें समझाया कि ऐसा करना उसके (जेनिफर) लिए लाभदायक नहीं रहेगा। भाग्यवश शिक्षिका ने इस तरह की टिप्पणियाँ देना बन्द किया।

गलतियाँ

इस तरह लिखने की गलतियाँ बच्चों के सीखने का एक प्राकृतिक हिस्सा माना गया है और हर पल उस पर सूक्ष्म निरीक्षण कर लताड़ना नहीं चाहिए। हिज्जे और लिखने की गलतियों को सुधारने के लिए कई सकारात्मक और न्यायसंगत तरीके हैं जो लिखने की स्वच्छन्दता और आनन्द रोके बिना अपनाये जा सकते है, जिससे लिखने की कला उत्साहहीन न बने (ह्यूले और स्लॅक, 2001)। जैसे अच्छा पाठक बनने के लिए बहुत अभ्यास की आवश्यकता होती है वैसे ही अच्छा लेखक बनने के लिए भी उसी प्रकार कड़ी मेहनत की आवश्यकता होती है (ब्रूनीज और होर्न 2001, स्पन्डन 2005)। बच्चों के प्राथमिक और सैकण्डरी स्तर पर लिखने के बहुत से अवसर देने की आवश्यकता है। जैसे–जैसे उनकी भाषा तथा ज्ञान (cognitive) बोध सही मार्गदर्शन से बढ़ता है वैसे–वैसे उनकी लिखने की कुशलता भी बढेगी।

उदाहरण के तौर पर सही वाक्य रचना तथा व्याकरण की उच्च स्तरीय समझ असरदार और उम्दा लेखन के लिये आधार बनती है।

उसी तरह से तार्किक सोच का निर्माण करने जैसी ज्ञानवर्धक कलाएं भी इसमें मददगार होती है। बच्चे अपने प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च माध्यमिक विद्यालय में विचारों के संगठन के कई अच्छे तरीके सीखते हैं। प्राथमिक स्तर में वे कई छोटी कविताओं का उच्चारण समझाने और लिखने का काम करते हैं। प्राथमिक से माध्यमिक स्तर में वे किताबों के बारे में वृत्तान्त उपस्थित करना–जिसमें वर्णन के साथ निक्षेप तथा विश्लेषण का समावेश होता है– तथा उच्च माध्यमिक स्तर में वे विवरण के और अच्छे तरीकों का उपयोग करना सीखते हैं जो केवल वर्णन को आधार नहीं बनाते।

और मुझे लिखना बहुत अच्छा लगने लगा है पर कभी–कभी मेरे बुरे हिज्जों पर मुझे गुस्सा आता हैं। मुझे एक चीज़ मेरे लिखने के बारे में अच्छी लगती है कि मैं हमेशा एक उत्साह से लिखती हूं इसलिये उनमें खूब चंचलता होती है। मुझे लगता है कि अगर मैं अपना लेख बिना सही कराये पढ़ने दूं तो कोई पढ़ ही नहीं पायेगा। और अगर सही करके पढने दिया जाये तो पढ़ने में मेरी कहानी अच्छी लगेगी।

– जेनिफर

The Devil and the Babe Goste

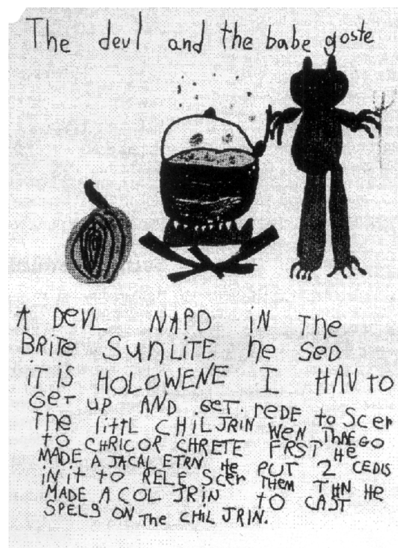

ॲन्ना मडड इस कहानी की लेखिका है। वह छह साल की है और वह दो साल से कहानियाँ लिख रही है। उसकी कहानियों में कविताई की छटाएं, उच्च स्तर की वाक्य रचनाएं, और शब्दावली का समावेश होता है जो एक अच्छे भाषा वृद्धि का आभास देते हैं।

छात्रों की आँखों से – (स्वमूल्यांकन लिखना)

सॅन फ्रान्सीस्कों की पांचवी कक्षा की शिक्षिका केरेन एब्रा समय–समय पर अपने छात्रों को अपने लिखने के संगठन में अपना खुद का मूल्यांकन खुद करने को कहती है। साल के अन्त में कुछ बच्चों ने जो समालोचना की वह नीचे दी गई है –

मैं पांचवी कक्षा में हूं और मुझे लिखना बहुत अच्छा लगता है। जब भी मौका मिले मैं लिखूंगी और जहां तक मुझे याद है मुझे लिखना बहुत पसंद है। मुझे लगता है कि मेरे लिखने में वृद्धि हुई चौथी कक्षा से और मैं अपने लेखन से बहुत खुश हूं। कुछ लेखकों को अपना लेख अच्छा नहीं लगता होगा पर मुझे नहीं, मैंने अपना कोई भी लेख आज तक फेंका नहीं है। मुझे अपना लिखा लेख दूसरे लेखकों को दिखाना तथा उनको नये सुझाव देना या उनसे सुझाव लेना अच्छा लगता है। अगर मुझे अपने खुद की लिखाई पर कहना हो तो मैं कहूंगी कि मेरा लिखना विस्तृत, कल्पनापूर्वक और और लुभावना होता है (मैं अपनी बढ़ाई खुद नहीं कर रही)।

– मिशेल

मुझे लगता है कि कहानी लिखना बहुत आसान है क्योंकि इतना कुछ लिखने के लिये है और अगर मुझे किसी एक चीज़ के बारे में लिखना हो तो भी बहुत कुछ किया जा सकता है। कोई अगर मेरा लेख पढ़े तो वे अनुमान लगाएंगे कि मैं बहुत खुश और स्फूर्तीली हूं। उन्हें ऐसा लगेगा क्योंकि मेरा लेख हमेशा उत्साहित करता है।

– सारा

जब भी मैं लिखती हूं, मुझे लगता है कि मैं और अच्छा कर सकती हूं। खास तौर पर मेरे हिज्जों में। जब मैं किन्डर गार्डन में थी तब हम बहुत लिखते नहीं थे। तीसरी कक्षा में तो मुझे लिखना अच्छा भी नहीं लगता था। लिखने के बारे में नई चीज़ें सीखने में मुझे डर लगता था। अब मैं पांचवी कक्षा में हूँ।

ज्ञान बोध के तरीके

ज्ञान बोध के तरीकों में लेखन में भी उन्हीं बातों पर चर्चा करते है जो पढ़ने के साथ जुड़े हुए है, जैसे शब्दार्थ जानकर विस्तार करने की व्युहरचना करना। (Kellogg 2000, D Olson 2001) योजना बनाना, प्रश्नों को सुलझाना (सवाल का हल निकालना), पुनर्निरीक्षण करना और Meta-cognitive व्यूहरचना बनाना छात्रों के लिखने में अत्यन्त महत्त्व के तरीके पाये गये हैं।

योजना बनाने के अन्तर्गत

योजना बनाना – इनमें समावेश होता है, रूपरेखा बनाना और विषयवस्तु की सही ढंग से जानकारी प्राप्त कर संगठित करना। यह लेखन लिखने का बहुत महत्त्वपूर्ण अंग है। (Levy & Randsel 1996, Mayer 2004)

छात्रों को यह मार्गदर्शन देना जरूरी है कि कैसे लेख की रूपरेखा बनाई जाये और उसे कैसे संगठित किया जाये। तथा उनके लेख के गुणवत्ता की जानकारी भी इन्हें देना जरूरी है (Houston, 2004)। एक अध्ययन में यह पता चला कि लिखने से पहले की गतिविधियों का लिखने पर क्या असर होता है। (Kallogg, 1994) जैसे – आकृति 11.4 से स्पष्ट है कि रूपरेखा बनाने से सबसे अधिक प्रभावी लेखन पर होता है। आकृति 11.5 दर्शाती है कि शिक्षक छात्रों की लेख की योजना बनाने में कैसे मददगार साबित हो सकते है? जब कि उन्हें एक deadline को रखना हो। सीमा रेखा तय करनी है।

समस्या को सुलझाना

जो निर्देश विद्यालयों में लिखना सिखाने के लिये दिये जाते है वे उन्हें सही वाक्य निर्माण तथा परिच्छेद लिखने में मदद करते हैं। परन्तु लेखन कोई मांग करने वाले वाक्यों को लिखना या इस बात पर ध्यान देना कि परिच्छेद विषय से जुड़ा हुआ है या नहीं? मांग यही नहीं है। (Mayer 1999) अधिक मूल रूप से लिखना एक विस्तृत प्रश्न या समस्या को सुलझाना माना गया है। एक मानस शास्त्री ने लिखने में प्रश्न सुलझाने की प्रक्रिया को 'शब्दार्थ बनाना' बताया है (Kellogg, 1994)।

प्रश्नों को सुलझाने वालों के रूप में लेखकों को एक लक्ष्य रखकर उस तक पहुंचने के लिए सतत कार्य करना पड़ता है। यह सोचा जा सकता है कि जब एक लेखक पर दबाव रहता है तो वह उस विषय के बारे में पूर्ण नाम रखता है तथा यह ज्ञात भी रखे कि भाषा कैसे काम आती है? तथा लेखन में आने वाली समस्याओं के बारे में विचार करे। लिखने के प्रश्न में समावेश होता है कि यह लेख क्यों लिखा जा रहा है? उसे सुनने या पढ़ने वाले कौन है? और लेख की इस लेख बनाने में भूमिका क्या है? (Flower and Hayes, 1981)।

पुनर्निरीक्षण

पुनर्निरीक्षण अच्छे लेखन का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। (Mayer, 1999) पुनर्निरीक्षण का मतलब होता है कि लेख के दो या तीन पुर्जे बने, उस पर लेखन में जानकार लोगों की प्रतिक्रियाएं मिले और फिर इस समालोचना से भरी प्रतिक्रिया का उपयोग अपने लेख के सुधार के लिए करें। इसको गलतियों को पहचानने और उनका सुधार करने को एक जरूरी हिस्सा माना गया है। अनुसंधान करने वालों ने पाया है कि वयस्क और ज्यादा कुशल लेखक अपने लेखों का पुनर्निरीक्षण छोटी उम्र से और कम कुशल लेखकों से ज्यादा करते है। (Bailett, 19, Hayes and Flower 1986)।

लेखन पूर्व की प्रक्रिया

लेखन पूर्व की प्रक्रिया और लेख की गुणवत्ता से संबंधित, एक अभ्यास किया गया जिसमें कुछ कॉलेज के छात्रों के चार समूह बनाये गये और उन्हें इस प्रकार की प्रक्रिया सौंपी –

(1) पहले समूह को जिस बारे में लिखना था, उससे संबंधित विचारों को क्रमबद्ध करना तथा उसकी रूपरेखा बनाना था।

(2) दूसरे समूह को उससे संबंधित जो अनुरूप विचार है उनकी एक सूची बनाना।

(3) तीसरे समूह को केवल इससे संबंधित विचार एकत्रित करते थे बगैर किसी मूल्यांकन या क्रम के।

(4) चौथे समूह को लेखन पूर्व की कोई भी गतिविधि नहीं दी गई।

फिर उनके लिखे लेखों का आकलन किया गया जिसमें 1 (सबसे निचला स्तर) से 10 तक (सबसे उत्कृष्ट स्तर) (केल्लोग, 1994) के अंक दिये जाने का निर्णय लिया।

निर्णायकों के दिये गये अंकों से यह निष्कर्ष निकला कि जिनको रूपरेखा बनाकर विचारों को संगठित करने को दिया गया था, उनके लेख सबसे अच्छे रहे। इससे यह सिद्ध होता है कि जब छात्रों को अपने लिखने से पूर्व एक रूपरेखा बनाने को कहा जाये। तो वे उसे बनाने के लिये एक सूचीबद्ध और रचनात्मक तरीका अपनाते हैं।

इसलिए लिखने से पहले रूपरेखा बनवा लेना एक अच्छी गतिविधि मानी गई है।

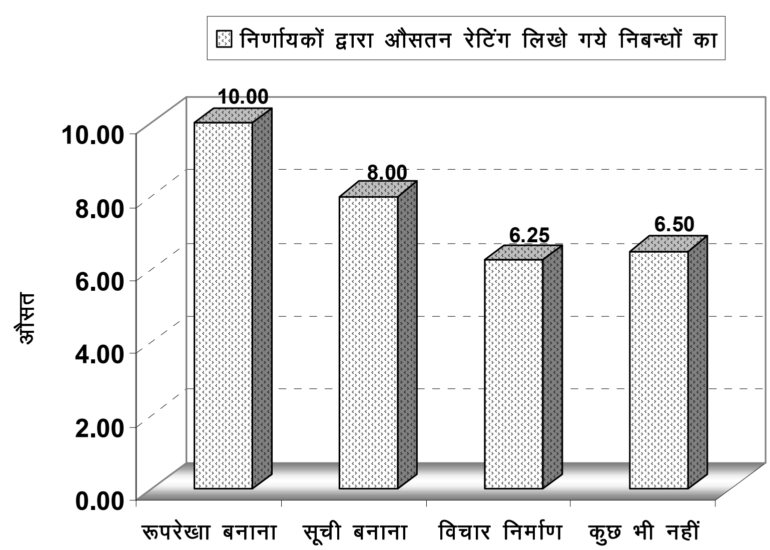

मेटाकोग्निशन (ज्ञान बोध की विधि अथवा प्रक्रिया)

जब हम लेखन बोध की व्यूह रचना पर प्रकाश डालते हैं तो हम मेटाकोग्निशन के क्षेत्र में प्रवेश करते है। एक अध्ययन में दस से चौदह साल के बच्चों को ऐसा कुछ लिखने को कहा गया जो उनकी उम्र के बच्चों को अच्छा लगे। (Scardam, 1981)। इसे पूरा करने में अवरोध यह रहा कि वे योजना नहीं बना पाये, उनके विचारों को कहीं लिख नही पाए और नहीं उन्होंने कार्य किस तरह से हो रहा है उसकी सही जानकारी रखी – फलस्वरूप उनको अपने लेखों को दुबारा पढ़कर सुधार कर सकते। इन बातों से यह निष्कर्ष निकला कि ज्यादातर माध्यमिक स्तर के बच्चों में योजना बनाना तथा ज्ञान संगठित करने का कौशल कम होता है जो एक अच्छे लेखक बनने में काम आते हैं और ये कौशल उन्हें सिखाये जाने चाहिये।

स्वयं के काम का निरीक्षण करना एक अच्छे लेखक के लिए अतिआवश्यक है (ग्रहाम और हेठिस, 2001) – इसमें सम्मिलित है कि वह उसे मिली प्रतिक्रियाओं को सकारात्मक रूप से देखें और अलग लेख लिखते समय जो सुधार बनाये उनको भी ध्यान में रखें ताकि उसका अगला लेख सही हो।

सामाजिक रचनात्मक तरीके (Social Constructive Approaches)

जिस प्रकार सामाजिक रचनात्मक तरीके का प्रभाव पढ़ने में पाया गया है, उसी प्रकार लिखने की कला तभी बढ़ती है जब वह समाज एवं संस्कृति द्वारा निर्मित हो और अपने से उत्पन्न हुई हो न कि मनगढ़ंत हो।

पढ़ने के इस तरीके में शिक्षक की मुख्य भूमिका ज्ञान देना नहीं बल्कि बच्चों के अपने ज्ञान को सही दिशा देना है। इस सम्बन्ध में शिक्षक और छात्र दोनों ही ज्यादा विद्वान माने गये है।

यही सामाजिक रचनात्मक तरीका लिखने में भी अपनाया जा सकता है (Dauite 2001, Schultz and Fecho 2001)।

एक या दो महिने पूर्व की तैयारी	विषय को चुनना
	• विचारों का खाका तैयार करना। • लिखने के लिये एक योजना बनाना। • एक पूर्व पक्ष के लिये कथन का निर्माण करना। • अनुसंधान आरम्भ करना।
समय सीमा के दो हफ्ते पूर्व तक	• अलग–अलग खाके बनाना। • उत्साहपूर्वक पुनर्निरीक्षण करना। • अनुसंधान पूरा करना। • पूर्व पक्ष के कथन को अन्तिम रूप देना।
समय सीमा से एक हफ्ता पूर्व	• अलग–अलग पेपर के हिस्सों को अन्तिम रूप देना। • एक रोचक शीर्षक देना। • उसकी सच्चाई को जांचने के लिये उसके संदर्भ साहित्य को देखना। • किसी से पढ़वाकर उनसे समालोचना करवाना।
समय सीमा से एक रात पूर्व	• पेपर के अलग–अलग हिस्सों को जोड़ना। • अन्तिम खाका तैयार करना। • उसमें पाई गई त्रुटियाँ हटाना। • पेपर को एक साथ प्रस्तुत करना।

आकृति 11.5 समयबद्ध समय विभाजन का नमूना।

लिखने का सामाजिक परिवेश

लेखन का सामाजिक रचनात्मक तरीका उस सामाजिक हिस्से पर अधिक ध्यान देता है जिस परिवेश में यह लेख लिखा गया है। यह महत्त्वपूर्ण है कि छात्र इस समाज के पाठक व लेखकों से मिले तथा जानकारी ले और पहचाने कि उनकी समझ किस प्रकार ओरों की समझ से अलग हो सकती है (Hicbat 1996)।

इसका महत्त्व समझने में दो उदाहरण प्रस्तुत है –

पहला – एन्थनी, एक नौ साल का बच्चा जो अपनी पूरी जिन्दगी न्यूयार्क के मेन्हेट्टन क्षेत्र में गुजार चुका है (McCarthey, 1994)। वह खूब पढ़ता और लिखता है, वह विज्ञान के समाचार पत्र रखता है और अनेक प्रतियोगिताओं में भाग ले चुका है, जिसमें लिखने पर ज़ोर दिया गया था। उसे अपने विषय में बहुत रूचि है, क्योंकि वह अपनी दादी के बारे में लिख रहा है जिनकी हाल ही में मौत हुई है।

उनकी शिक्षिका उसे प्रोत्साहन देती है कि वह दादी के बारे में, किस वजह से उनकी मौत हुई उनके बारे में लिखने के लिये और उसे पेश करने के अलग–अलग तरीकों पर वे दोनों चर्चा करते हैं और उसे लिखने के सबसे अच्छे तरीके की एक योजना बनाते है।

उसका अन्तिम लेख उसकी दादी के जीवन और मरण का एक बहुत ही प्रभावपूर्ण लेख बनता है।

एन्थनी की शिक्षिका का मानना है कि लिखने की कला शिक्षण का एक महत्त्वपूर्ण अंग है और वह इसको बच्चों में उत्साहपूर्वक देने की कोशिश करती है। इसके विपरित अनुभव है एक लेटिनों के छात्र कार्लोस का, जिसके अभिभावक हाल ही न्यूयार्क के ब्रोन्क्स क्षेत्र में रहने आये हैं।

इसके बावजूद कार्लोस की अंग्रेज़ी की पकड़ अच्छी है, उसे अपनी कक्षा के बाहर के अपने अनुभवों के बारे में अपने आप लिखने का अनुभव बिलकुल नहीं है। छात्र–शिक्षक चर्चा से वह अपने भावों को व्यक्त करने में संकोच करता है। कार्लोस की शिक्षिका को जिले में विभिन्न विषयों पर लिखवा लेने का जिम्मा सौंपा गया। उसे ऐसा करने में उत्साह नहीं है और इसलिये वह कार्लोस का लेख सुधारने में बहुत कम समय दे पाती है।

जैसे इन दो छात्रों के अनुभवों से पाया गया कि सामाजिक परिवेश लिखने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कुछ छात्र अपने परिपूर्ण वातावरण से अनेक अनुभवों का भण्डार लिये लिखने का सही मार्गदर्शन पाकर उसे प्रभावी ढंग से लिख पाते हैं, जबकि कुछ को कोई भी प्रोत्साहन और सही मार्गदर्शन नहीं मिलने से उनका लिखना उतना प्रभावी नहीं हो पाता।

कुछ कक्षाओं में लिखने की कला को अधिक महत्त्व मिलता है जबकि कुछ कक्षाओं में इन्हें इतना ज़रूरी नहीं माना जाता है।

प्रभावी लेख और छात्र–शिक्षक चर्चा

सामाजिक रचनात्मक तरीके का मानना है कि छात्रों के लिखने में ऐसे विषयों को चुनना जरूरी है, जिनमें उसके आसपास के अनुभवों का समावेश होता हो।

उदाहरणार्थ – एन्थोनी की शिक्षिका ने उसे अपनी दादी के जीवन और मरण पर लिखने के लिए प्रेरित किया और इसे लिखने में उसे मदद भी की। इसमें छात्र–शिक्षक चर्चा अच्छे लेखक बनने का एक असरदार माध्यम है।

सहकर्मियों से सहयोग (Peer colloboration)

समूह में काम करते समय लेखकों को कई अलग–अलग अनुभव होते हैं, जैसे पूछताछ करना, जानकारी या सत्यापन करना, किसी विषय का विस्तार करवाना जो अच्छे लेखक बनने में आवश्यक है (Webb & Palincsar)। जब एक से अधिक बच्चे मिलकर पेपर लिखते हैं तो वे अपने विभिन्न अनुभव एक–दूसरे के साथ बांटकर अपने ज्ञान का विस्तार करते हैं। सही सहयोग से ही इस परिज्ञान का निर्माण होता है कि हमें क्या लिखना है? और कैसे लिखना है?

इसके विपरित अगर लेख केवल अपने शिक्षक की अपेक्षाओं को पूरा करने के लिखे गये हो तो वह तनावपूर्ण तथा अप्रभावी लेख होगा। जब छात्र आपस में मिलकर लिखते हैं तो शिक्षक की अपेक्षाओं की झलक उनमें कम होती है (Kearney, 1991)।

विद्यालय / परिवार / आपसी मित्रों से सम्बन्ध

एक प्रायोजना में शिक्षकों को प्रोत्साहित किया गया कि वे लेटिनो समाज की विविधता और अस्तित्व को पहचाने और अपने विद्यालय के पाठ्यक्रम में उसका समावेश करे (Moll, Tapia & Whitmore, 1993)। इसके अन्तर्गत –

1. इसका विश्लेषण हो कि – ज्ञानअर्जन इन परिवारों में कैसे होता है।
2. विद्यालय समय के बाद एक प्रयोगशाला (लेबोरेट्री) जिसमें शिक्षक और छात्र उस भाषा का प्रयोग करते हैं जो उनके आसपास के समाज में अपनाई जाती हो और उसको लिखते भी हैं।
3. प्रयोगशाला में किये गये प्रयोगों को कक्षा के परिप्रेक्ष्य में कुछ गतिविधियों द्वारा लाना।

मुख्य लक्ष्य था इन तीन अंगों को किसी तरह से जोड़ना।

उदाहरण के लिये बच्चों ने समाज में लिखने के तौर तरीकों का उपयोग किया जैसे वे अन्य परिवारजनों से पत्र व्यवहार द्वारा कैसे सम्पर्क रखते है और अपने हिसाब–किताब कैसे रखते है। फिर आपस में मिलकर उन्होंने ऐसे विषयों पर प्रोजेक्ट बनाये जो उन समाज के लोगों की विशेषताएं दिखाते हैं। जैसे यन्त्र विद्या में निपुणता या किसी चीज़ को ठीक करने में निपुणता, कागज़ों का रख–रखाव। इसके लिये उन्होंने लेटिनो समाज के लोगों के साक्षात्कार लिये और जो लोग यू.एस.ए. में दूसरी जगह जा बसे थे, उनसे भी ई–मेल द्वारा सम्पर्क साधा।

आपकी कक्षा के साथ लेखकों को मिलाओ अपने आसपास समाज में जो भी अच्छे लेखक हो उन्हें अपनी कक्षा में आमन्त्रित करके उनके कार्य के विषय में बातचीत कर सकते हो। कई समाजों में ऐसे कुशल लेखक या सम्पादक या पत्रकार होते हैं। जोन लिपिञ्ज (1984) ने यू.एस.ए. में चार में से एक सबसे सफल माध्यमिक पाठशाला को पहचाना जिसमें उन्होंने लेखक सप्ताह को अपने पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया हुआ था। छात्रों के अलग–अलग रूचि, प्राप्ति तथा विविधता के आधार पर लेखक उनकी कला के बारे में उनसे बात करते है। छात्रों को अलग–अलग लेखक के साथ अकेले काम करने का मौका मिलता है। पर इनसे मिलने से पहले उन्हें उस लेखक की लिखी हुई कम से कम एक पुस्तक पढ़ना जरूरी होता है। लेखकों को

पूछने के लिए छात्रों को कुछ प्रश्नों की तैयारी करनी पड़ती है। कभी–कभी लेखक कक्षा में आकर कुछ दिनों तक उनके साथ काम करते हैं और उन्हें लिखने में मदद करते हैं। जैसे देखा गया है कि लिखने की कला कई तरीकों से विकसित होती है।

पढ़ने और लिखने के बारे में बात करते समय हमने कई विचार दिये हैं कि कक्षा में क्या किया जा सकता है।

अध्ययन की व्यूह रचना

लेखन को पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने के लिए अध्ययन की व्यूह रचना :–

लिखने को पाठ्यक्रम में जोड़ने के आपको कई मौके मिलेंगे, यहां पर कुछ उदाहरण दिये है, (Bruning & Holn 2001, Halonen, 2002) मेरे पढ़ने और लिखने के अनुभवों का आकलन – स्वआकलन इसको न देखते हुए कि आप किस विषय या किस कक्षा को पढ़ा रहे हो, आपका एक ध्येय यह होना चाहिये कि आपके छात्र कैसे न केवल कुशलता से पढ़ या लिखे परन्तु उनमें उन्हें आनन्द भी प्राप्त हो। अपने खुद के लिखने या पढ़ने के अनुभवों के बारे में सोचिये।

1. पढ़ने में आनन्द आने का क्या कारण रहा?

   ——————————————————————————————

2. ऐसा क्या हुआ कि पढ़ना आपको मुश्किल या आनन्नदायी नहीं रहा?

   ——————————————————————————————

3. अब आपके पढ़ने के बारे में क्या विचार है?

   ——————————————————————————————

4. आपको पुस्तकालय अच्छा लगता है या नहीं?

   ——————————————————————————————

5. क्या आपको लगता है कि आपके पढ़ने के कौशल को सुधारना जरूरी है?

   ——————————————————————————————

6. आपको लिखने में रूचि कैसे उत्पन्न हुई?

   ——————————————————————————————

7. ऐसा क्या हुआ कि आपको लिखना मुश्किल या मज़ेदार नहीं लगता?

   ——————————————————————————————

8. अब आपका लिखने के बारे में क्या विचार है?

———————————————————————————————————

9. क्या ऐसा कुछ है जो आपके लिखने में सुधार कर सकते हैं?

———————————————————————————————————

अनुभवों के आधार पर आप अपने छात्रों के लिये पढ़ना और लिखना कैसे अधिक सफल तथा आनन्दयी बना सकते हैं?

बेहतर लिखने के लिए

1. लिखने के बारे में सकारात्मक विचार पैदा कीजिये – ऐसा करने के लिए छात्रों को कई मौके लिखने के देने चाहिए जिससे छात्रों को सफलता प्राप्त हो और लिखने के कई विकल्प देना भी जरूरी है।

2. छात्रों को लिखने से बांधे रखने के लिए, उनको लिखने के ऐसे मौके देने चाहिये जो उनके जीवन से जुड़े हुए हो। छात्रों को प्रोत्साहित कीजिए, लिखने के लिये उन विषयों पर जिनमें इनको अभिरुचि हो। उन्हें अलग–अलग लोगों के लिये लिखने पर विवश करना चाहिये जो दूसरे क्षेत्रों से जुड़े हो जैसे विज्ञान, गणित, सामाजिक विज्ञान आदि।

3. लिखते वक्त उनके लिये एक आधार बने ऐसा माहौल बनाइये – इन्हें प्रोत्साहित कीजिए कि वे अपने लक्ष्य निर्धारित करें और फिर योजनाबद्ध उस तक पहुंचे तथा उनके वहां पहुंचने में जो मदद चाहिये वो प्रदान करें। उनके लक्ष्य बहुत मुश्किल भी न हो और बहुत आसान भी न हो। उन्हें लिखने के कुछ गुर बतायें और वे उन्हें कैसे काम में लेते हैं, उस पर निगरानी रखें। उन्हें उनकी प्रगति पर प्रतिक्रियाएं भी दें। उन्हें साथ में काम करने के लिए प्रेरित करें।

4. सीखने के लिए छात्रों से लिखवा लें – यह आप किसी भी विषय में कर सकते हैं। उदाहरणतः जीव विज्ञान में जब वे पढ़ते हैं कि कैसे अलग प्रजातियाँ अपने वातावरण से अनुकूल होते है। उन्हें उसके बारे में संक्षेप में लिखने तथा अपने आप कुछ उदाहरण बताने को कहा जाए जो उन्होंने देखा हो।

5. स्वतंत्र रूप से लिखने के अवसर देना – स्वतंत्र प्रकार से उन्हें किसी भी विषय में लिखने को आज़ादी दें। ऐसे कार्यों का कोई आकार नहीं होता परन्तु उनकी समय सीमा होती हैं। उदाहरणतः एक कार्य अमेरिकन इतिहास में ऐसा हो सकता है कि 'अमेरिकन क्रान्ति के बारे में पांच मिनिट में कुछ लिखिए।' स्वतंत्र लेखन से उन्हें कई नये विचार मिलते हैं, नये संबंध और प्रश्न उत्पन्न होते हैं जो दूसरे तरीकों में नहीं हो पाते।

6. छात्रों को रचनात्मक लेखन कार्य दें – ऐसे कार्य उन्हें अपने जीवन और अपने आप के नये आयाम ढूंढ़ने में मददगार साबित होते हैं। इनको करने के लिए वे रचनात्मक और परिज्ञानात्मक तरीकों को अपनाते हैं। जिनमें समाविष्ट हो कविताएं, लघु कहानियां या अपने खुद के अनुभवों पर लेख।

7. कुछ विधिवत लिखने के कार्य भी दें – इसके अन्तर्गत छात्रों को ऐसे मौके दें जिसमें ये अपने आपको एक लक्ष्य के साथ व्यक्त कर सके, लिखने में सही तरीका हो तथा उनके लेख के तथ्यों का कोई ठोस आधार हो। ऐसे विधिवत लेख से उन्हें विधिवत तर्क–वितर्क करना आता है। उदाहरणतः उच्च माध्यमिक स्तर के छात्रों को ऐसे विषयों पर लिखने को दिया जा सकता है जैसे ग्लोबल वॉर्मिंग –

भय उचित या बढ़ा–चढ़ा हुआ; 'एक निरीक्षण–फाल्कनर के लिखने के तरीके पर; या 'क्यों अधिकतर लोग पक्षपात करते हैं' ऐसे लेख छात्रों को विश्लेषण करना सिखाते हैं तथा उससे जुड़ी सामग्री का सही उपयोग और उससे जुडे लेख या साहित्य भी बता सकते हैं।

छात्रों के साथ मिलकर उनको विषय पर किस प्रकार से लिखना है? कैसे योजना बनानी? और समय का उपयोग कैसे करना? ताकि ये अपना कार्य समय से पूरा कर सकें तथा उसका खाका बनाकर उसे दोबारा पढ़ें और उसकी हिज्ज़े और व्याकरण सम्बन्धी त्रुटियों को हटा सकें।

पुनर्निरीक्षण एवं चिन्तन

व्याख्या दीजिये कि लिखने के गुण को कैसे विकसित किया जा सकता है और ऐसा करने के लिये कौनसे अलग तरीके हैं।

पुनर्निरीक्षण

- लिखने से कौनसी कक्षाओं का विकास होता है? ये किस उम्र से विकसित होती हैं?
- कौनसी ज्ञानमय प्रक्रियाएं जरूरी है प्रभावी लेखन के लिये।
- लिखने के बारे में सामाजिक रचनात्मक तरीके के मूलभूत विचार क्या हैं?

चिन्तन

- आपने जिस विषय और कक्षा को पढ़ा है, उनसे किन तरीकों में लिखने का कार्य अधिक नियमबद्ध और निश्चित रहेगा? और कैसे वो खुला और लचीला हो सकता है?

लिखना सिखाने के उभरते आयाम

परिचय

जब हम अपने विद्यालय के बीते हुए दिनों को देखते हैं, हम में से अधिकतर लोग समिश्रण कक्षाओं की सुखद स्मृतियाँ नहीं रखते। हम हमेशा उन्हें एक 'आवश्यक बुराई' समझा है या फिर एक ऐसा कार्य जिससे बचा नहीं जा सकता। जैसा कि Tricia Hedge कहती है, ''अधिकतर विद्यार्थी व अध्यापक उदासपूर्वक यह स्वीकार करेंगे कि लेखन अवधि की प्रकृति कुछ ऐसी है कि वह दुख भरा, पेन्सिल चबाने वाला, पैर संचालन व पीड़ा का समय बन जाता है। अध्यापक की यादें भी लेखन को लुभावने रंगों में प्रस्तुत नहीं करता। अधिकतर सम्मिश्रण सबसे जूनियर अध्यापक द्वारा पढ़ाया जाता है और स्थायी रूप से सम्मिश्रण कार्य दिन की अंतिम अवधि में कराया जाता है जब बच्चे पूर्ण रूप से थक चुके होते हैं और घर वापस जाने को उतावले हो रहे होते है। सम्मिश्रण कक्षाओं को गद्‌य काव्य अथवा व्याकरण कक्षाओं परिवर्तित कर देने की रीति सी बन गई है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि यह महसूस किया जाता है कि ''सम्मिश्रण सिखाने की कोई आवश्यकता नहीं है'' एक ओर तो लेखन कौशल को निष्कासित या अनदेखा कर दिया जाता है, दूसरी ओर यह जानकर विरोधाभाग होता है कि परिक्षाएं केवल दो से तीन घंटे तक निरन्तर लिख पाने के कौशल को जांचा जाता है। आमतौर से यह माना जाता है कि लेखन को 'सिखाया' नहीं जाता बल्कि कुदरती पकड़ा (caught) जाता है। परन्तु यह लगता है कि ऐसा होता नहीं है क्योंकि अध्यापक सदैव सीखने वाले की निम्न स्तरीय क्षमता, विशेष रूप से लेखन कौशल से संबंधित क्षमता को लेकर शिकायत करते है।

इस प्रकार की स्थिति अनेक प्रश्न उठाती है, जिनका जल्द–से–जल्द उत्तर देना आवश्यक हो गया है। जैसे – लेखन की प्रकृति क्या है? भाषा पाठ्‌यचर्या में लेखन की, सुनने, पढ़ने व बोलने के कौशलों के संबंध में क्या भूमिका है? क्या लेखन सिखाया जा सकता है? क्या लेखन सिखाया जाना चाहिए? वह कौनसा सर्वश्रेष्ठ उपागम है, जिससे लेखन कौशल का विकास हो सकता है, इनमें से किसी भी प्रश्न के बिल्कुल सही उत्तर तक पहुंचना शायद संभव नहीं है, परन्तु हम यह आशा करते हैं कि इन उत्तरों को खोजने की प्रक्रिया में हम लेखन को बेहतर रूप से समझ पाएंगे। अंग्रेज़ी की अध्यापिकाओं के लिए यह एक उपयोग अभ्यास है।

लेखन की प्रकृति

सिंगापोर की तृतीय वर्षीय डिग्री छात्रा ने लेखन को इस प्रकार व्याख्यित किया हैः–

''लेखन एक संरचनात्मक प्रक्रिया है, जिसमें लेखक स्वयं को जान पाता है... यह अपने विचारों तक पहुंचने व उनके आविष्कार की प्रक्रिया है। लेखन, एक प्रकार से, अर्थ निर्माण की प्रक्रिया है।'' लेखन सीखने की प्रक्रिया जीवनपर्यन्त चलती रहती है। लेखन हमें हर्षोन्नाद एवं पीड़ा से भरे, दोनों ही प्रकार के क्षण प्रदान करता है। हम लेखन के प्रति एक प्रेम–घृणा का संबंध विकसित कर लेते हैं क्योंकि लेखन एक कष्टकर सुख है।

प्रायः यह गलत मान्यता प्रचलित है कि 'एक अच्छा वाचक, एक अच्छा लेखक भी होता है।' परन्तु यह आवश्यक नहीं क्योंकि बोलना व लिखना सम्प्रेषण की भिन्न विधियां है। लेखन बोली की नकल से कहीं बढ़कर है। बोली/भाषा प्राकृतिक एवं मूल प्रवृत्तिक होती है। प्रत्येक सामान्य व्यक्ति अपनी मातृभाषा बोलना

सीखता है; परन्तु हर कोई अपनी मातृभाषा तक में, लिखने में निपुणता प्राप्त नहीं कर पाता। प्रायः लेखक के पास सम्प्रेषण के वे साधन नहीं होते जो एक वक्ता को प्राप्य होते हैं। हेरॉल्ड रोसेन के अनुसार – लेखक एक अकेला व्यक्ति है.... लिखते समय उसका एक हाथ उसके पीछे रहता है, क्योंकि उससे शारीरिक हाव–भाव छीन लिए जाते हैं। उससे उसकी वाणी की तान भी छीन ली जाती है... उसे एकालाप करने पर मजबूर कर दिया जाता है, उसकी सहायता के लिए कोई नहीं होता जो निशब्धताओं को पूरित करे, जो उसके मुख में शब्द डाल दे या जो प्रोत्साहक आवाजें निकाले।

भाषा के चार कौशलों में से लेखन सर्वाधिक जटिल एवं कठिन कौशल है। इसके लिए शब्दकोष, व्याकरणिक व्यवहार (Pattern) एवं वाक्य संरचना पर सक्रिय पकड़ होना आवश्यक है। लेखन की यह मांग है कि उसकी परिपाटियों जैसे वर्तनी व विराम चिह्नों (Punctuation) पर निपुणता प्राप्त की जाए। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि लेखन में उच्च स्तरीय संगठन हो जो लेखक द्वारा कहीं जाने वाली बात का संदर्भ बनाने के लिए आवश्यक हो।

लेखन की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार प्रस्तुत की जा सकती है :–

लेखन के पक्ष

- क्या
  - विषयवस्तु / प्रकार्य
- कैसे
  - संगठन
  - ताल
  - खाका
  - शैली

"अच्छे लेखक कौन से कौशल प्रदर्शित करते हैं?" इस प्रश्न का उत्तर देते वक्त, ज्तपबपं भ्मकहम लेखन की 'कला' व लेखन के 'कौशल' (Craft) के बीच अंतर करती हैं जिसे नीचे विस्तार पूर्वक विवरण दिया गया है :–

लेखन की कला : उत्पादन कौशल

1. कहने के लिए कुछ होना (उद्देश्य की समझ)
2. पाठक से परिचित होना (श्रोता की समझ)
3. प्रथम से अन्तिम खाका बनाने तक कार्यशील रहना (प्रक्रिया की समझ)
4. विचारों को विकसित करना (दिशा की समझ)

लेखन का कौशल

5. विषयवस्तु को स्पष्ट व तार्किक रूप से संगठित करना।
6. लेख को कुशलतापूर्वक हाथों से लिखना (लिखावट)
7. लेखन की परिपाटियों का प्रयोग करना, वर्तनी, खाका
8. व्याकरण का सही उपयोग

9. वाक्य संरचना का विकास करना

10. विचारों के बीच संबंध स्थापित करना।

11. बड़े हुए शब्दकोष का प्रयोग कर पाना।

Ann Raimes लेखन के विभिन्न पक्षों को रेखाचित्र द्वारा प्रस्तुत करती है :

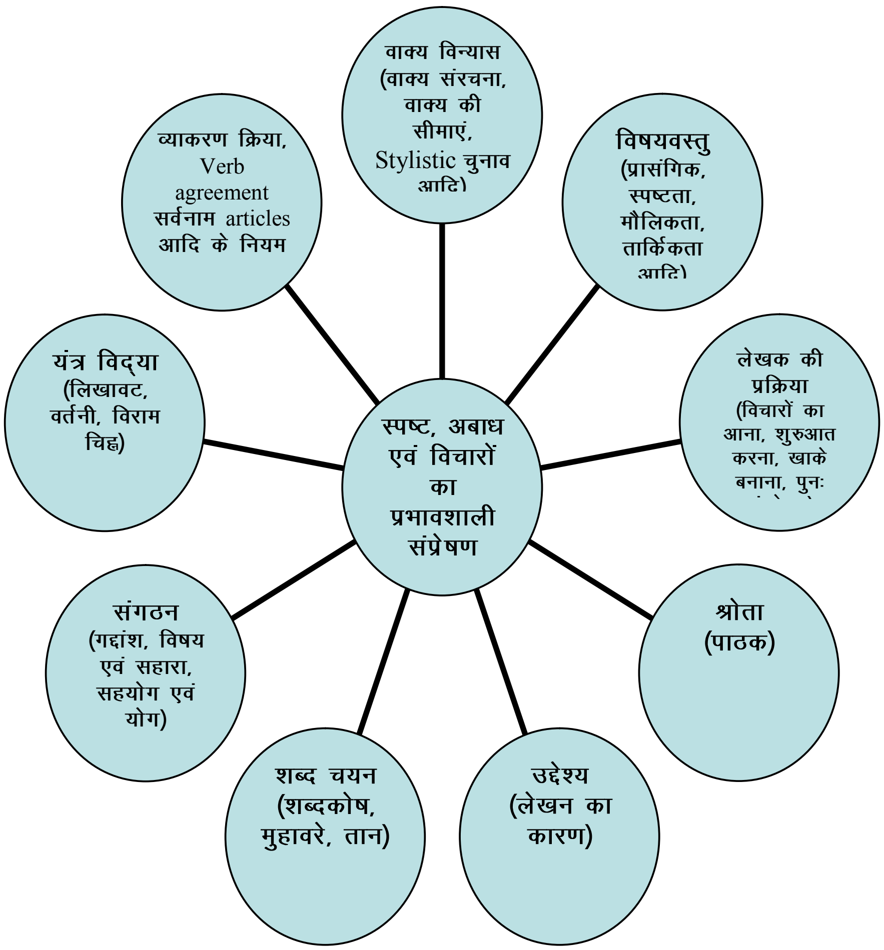

लेखन का उद्देश्य तीन प्रमुख चरणों से बना है जिन्हें इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :

लेखन की प्रक्रिया

पूर्व लेखन	लेखन और पुर्नलेखन	लेख का शोध करना
(योजना अवस्था)	(पहला खाका)	(अन्तिम अवस्था)

पूर्व लेखन अथवा योजना अवस्था में, लेखक विषय को पहचानता है, विचारों को उत्पन्न करता है और उनका चयन व संगठन करता है इस प्रक्रिया के दौरान वह दो प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास करता/करती है।

मैं यह क्यों लिख रही हूं? मैं यह किसके लिए लिख रही हूं? प्रश्नों के उत्तर से वह विषयवस्तु को संगठित कर, श्रोता व उद्देश्य की समझ प्राप्त कर पाती है।

लेखन व पहले खाके के पुनर्लेखन की दूसरी अवस्था बहुत जटिल होती है। यह प्रायः विध्नपूर्ण होता है। लेखक रूकता है, उसने जो लिखा है उसे फिर पढ़कर देखता है, उसमें संशोधन करता है, नए विचारों को लाता है व उन्हें व्यवस्थित करता है पहले चरण का केन्द्र यह था कि लेखक क्या कहना चाहता है जबकि दूसरे चरण का केन्द्र यह बन जाता है कि उस बात को किस प्रकार प्रभावशाली रूप से कहा जा सकता है।

लेख के शोध के तीसरे चरण में, लेखक अपने लेख का पाठक के परिप्रेक्ष्य से मूल्यांकन करने का प्रयास करता है। वह अन्तिम व्यवस्था करता/करती है और वर्तनी, व्याकरण व punctuation आदि की शुद्धता का संशोधन करता/करती है।

अपनी प्रगति जाँचिए

1. अपने विद्यालय/कॉलेज के किन्हीं पांच विद्यार्थियों अथवा अध्यापकों से बातचीत कर, उनके लेखन को सीखने/सिखाने की अवधारणा को समझिए?
2. लेखन को परिभाषित करने का प्रयास कीजिए (एक वाक्य में)। आप पुस्तकों से सूचना ले सकते हैं परन्तु नकल न कीजिए।
3. भाषण व लेखन के बीच क्या अन्तर है? सारणी बनाकर, इस अन्तर को स्पष्ट कीजिए।
4. अच्छे लेखक कौन से कौशल प्रदर्शित करते हैं? किसी विद्यार्थी के सम्मिश्रण का नमूना लेकर, उन कौशलों को पहचानने (identify) का प्रयास कीजिए, जिनमें उसने निपुणता प्राप्त नहीं की है।
5. अपने किसी सहकर्मी/मित्र की सम्मिश्रण कक्षा का अवलोकन करें और देखिए यदि सीखने वाले लेखन की तीन अवस्थाओं – पूर्व लेखन, लेखन व पुनर्लेखन व संशोधन, से गुजरते हैं? उनकी कक्षा पर एक संक्षिप्त रपट लिखिए (200 शब्दों में)।

क्या लेखन सिखाया जाना चाहिए?

भाषण व लेखन के बीच के अन्तर की चर्चा करते वक्त, Raines कहते हैं : ''हम यह देख सकते है कि हमारे विद्यार्थी, लेखन को, ESL कक्षाओं के अन्य कौशलों की तरह स्वयं नहीं सीख पाते। हमें उन्हें लेखन सिखाना पड़ता है।'' असल में, श्रवण भाषा (audio-lingualism) जिसका प्राथमिक केन्द्र भाषण था, के आगमन ने लेखन को पिछले स्थान पर पहुंचा दिया। एक सीखने वाला जो अपने लेखन कौशलों को विकसित करना चाहता है, उसे भी सुनने, बोलने व पढ़ने की परिश्रमपूर्ण प्रक्रियाओं से पहले गुज़रना पड़ता है। हमारे संदर्भ में अधिकतर अध्यापकों का यह मानना है कि सम्मिश्रण सिखाने की कोई आवश्यकता नहीं। वे हर सप्ताह विद्यार्थियों से कुछ लिखवाते हैं और समझते हैं कि यही उनके लेखन कौशलों के विकास के लिए पर्याप्त है। परन्तु उचित प्रशिक्षण व मार्गदर्शन के अभाव में, विद्यार्थी अंधेरे में ही टटोलते रह जाते है और लेखन के जटिल कौशल में निपुणता प्राप्त करने में असफल रहते हैं। पर्याप्त मार्गदर्शन व टिप्पणी (feedback) के अभाव में, लेखन का गहन अभ्यास भी कोई उद्देश्य पूरा नहीं करता।

लेखन इतनी जटिल प्रक्रिया है कि कोई सोच सकता है, ''क्या लेखन सिखाया जा सकता है?'' हाँ, सिखाया जा सकता है, परन्तु ''कैसे लिखना चाहिए?'' इस पर व्याख्यानों की श्रृंखला द्वारा नहीं; परन्तु कक्षा में 'लिखना सीखने' के लिए, अनुकूल परिस्थितियां बनाने से।

अधिक महत्त्वपूर्ण व प्रासंगिक प्रश्न यह है कि ''क्या लेखन सिखाया जाना चाहिए?'' दूसरे शब्दों में, हम लिखना क्यों सिखाएं? Raines, लिखना सिखाने के तीन प्रमुख उद्देश्य बताती/बताते हैं:

अ) लोग अक्सर, लेखन द्वारा, सम्प्रेषण करते हैं।

ब) लेखन, हमारे विद्यार्थियों की सीखने में दो प्रकार से सहायता करते हैं : वह, विद्यार्थी द्वारा, पहले से ही सीखे हुए व्याकरणिक संरचनाएं, शब्दकोष व मुहावरों को पुष्ट (reinforce) करता है। It enables them to be adventurous with language of take risks.

स) लेखन, सीखने को पुष्ट बनाने में सहायक होता है : लेखन व सोच के बीच का निकट संबंध, इसे किसी भी भाषायी क्रियाविधि का मूल्यांकन भाग बना देता है।

लेखन सिखाने में आने वाले समस्याएं

लेखन सिखाना बहुत अच्छा लग सकता है परन्तु हमारे संदर्भ में अध्यापक इसकी साध्यता/संभवता के विस्तार पर प्रश्न उठाते हैं। हमारे संदर्भ में अनेक समस्याएँ है जो लेखन सिखाने के विरूद्ध कार्य करती है। हम इन पर तीन परिप्रेक्ष्यों से नज़र डालते हैं :

सीखने वाले के परिप्रेक्ष्य से, अध्यापक के परिप्रेक्ष्य से, प्रबन्धकर्ता के परिप्रेक्ष्य से सीखने वाले अप्रेरित होते हैं, वे सम्मिश्रण कक्षाओं को अर्थहीन और अप्रासंगिक समझते हैं। उनके अनुसार ये कक्षाएं उन्हें परिक्षाओं की तैयारी में किसी प्रकार की सहायता प्रदान नहीं करती। यदि उन्हें चुनाव का मौका मिले तो मैं अपने समय को अधिक 'उपयोगी' बनाते हुए सहायता–पुस्तकों में दिये गए सारांशों को रटने में प्रयोग करेंगे। वे लिखने में किसी प्रकार के रोमांच का अनुभव नहीं करते। उनके लिए अध्यापक ही एक मात्र उद्देश्यपरक पाठक (intended reader) है, जो पूरी स्वतंत्रता से सीखने वाले की त्रुटियों की रेखांकित करने में संपूर्ण सुख प्राप्त करते हैं। यदि लेखन विनोदहीन हो तो मूल्यांकित लेखों का वापस मिलना अत्यधिक निराशाजनक होता है और बचे खुचे उत्साह को भी दबा देता है।

अधिकतर अध्यापकों को लेखन द्वारा संप्रेषण का कोई प्रशिक्षण नहीं दिया जाता : वे नवीन तकनीकों का प्रयोग करने में असुरक्षित महसूस करते हैं। इसके अलावा अंग्रेज़ी पाठ्यक्रम इतना भारी होता है कि वे उसे पूरा कराने की उत्सुकता में प्रायः सम्मिश्रण कक्षाओं को काव्य व गद्य कक्षाओं में परिवर्तन करने पर मजबूर हो जाते हैं। इन सभी समस्याओं को परे रखकर जो अध्यापक सम्मिश्रण सिखाना जारी रखते हैं उनके लिए भी लेखों का समय–समय पर मूल्यांकन करना कठिन हो जाता है। बहुत बड़ी कक्षाओं में, जहां लगभग 100 विद्यार्थियों की संख्या आती है, अध्यापकों के लिए न्यायपूर्वक मूल्यांकन करना असंभव हो जाता है। अतः वे बच्चों को न लिखवाने के आसान तरीके को अपनाने पर मजबूर हो जाते हैं।

ये समस्याएं ऐसी नहीं है जिन पर विजय प्राप्त करना असंभव है। लेखन में वर्तमान शोध में सीखने वाले–केन्द्रित उपागमों का अन्वेषण किया है। अध्यापक–केन्द्रित कार्यक्रमों का आयोजन किया जा सकता है जिससे अध्यापक अधिक सकारात्मक दृष्टिकोण अपना सके और यदि अध्यापक व बच्चे हाथ मिला ले तो वे बड़ी आसानी से प्रबंधकर्ता को विश्वास में ले सकते हैं।

लेखन सिखाने के विभिन्न रास्ते

पारंपरिक रास्ते

पिछले दशक में सम्मिश्रण सिखाने व विश्लेषण करने के संदर्भ में गंभीर शोध हुए हैं। उससे पहले अधिकतर अध्यापकों का यह मानना था कि लेखन को सिखाने की कोई आवश्यकता नहीं है। असल में वे अध्यापक भी जिन्होंने लेखन सिखाने का प्रयास किया, उनका ध्यान मुख्यतः फारमेट व नियमों पर ही था। आज भी अधिकतर भारतीय स्कूलों में यह नज़रिया प्रचलित है। उदाहरण के लिए, यदि एक अध्यापिका पत्र लिखना सिखाती है तो वह विद्यार्थियों को पत्र के खाके के बारे में बताती है – पता कहां लिखना है, अभिवादन, समाप्ति आदि, परन्तु पत्र का प्रमुख भाग किस प्रकार लिखा जाए, इस पर बहुत कम मार्गदर्शन दिया जाता है। इसी प्रकार संक्षिप्त लेखन में, अध्यापक संक्षेप लिखने के नियमों पर व्याख्यान दे देते हैं।

पारंपरिक रास्ते के अन्तर्गत, सीखने वाले पत्र लेखन व संक्षिप्त लेखन के नियमों पर निपुणता प्राप्त करते हैं; परन्तु वे इस ज्ञान का स्वयं के पत्र व सारांश लेखन में प्रयोग रास्ते नहीं कर पाते। वह बहुत उलझन में पड़ जाती है जब उसे निम्न ग्रेड व लाल रंग से रेखांकित अपना सम्मिश्रण वापस मिलता है। वहीं दूसरी ओर, यह रास्ता अध्यापक से बहुत कम परिश्रम की मांग करता है। वह बिना किसी तैयारी के सम्मिश्रण कक्षाओं का प्रबंध कर सकती है। वह कक्षा में सामान्य रूप से चली जाती है और उसी वक्त बच्चों के लिए कोई अभ्यास कार्य तैयार कर लेती है ऐसी स्थिति में, बच्चे, जो कुछ उन्हें आता है या जो कुछ उन्हें नहीं भी आता, सब लिख डालते हैं, और इसी प्रकार निराशा और प्रेरणाहीनता का दुष्चक्र चलता ही रहता है।

नमूना–आधारित रास्ता (The Model Based Approach)

इस रास्ते के अन्तर्गत, बच्चों को एक नमूना लेख दिया जाता है। वे लेख के तत्त्वों का विश्लेषण करते और फिर एक समानान्तर गद्य लिखते हैं। कमजोर सीखने वाले के लिए यह नमूना बहुत सहायक होता है। वे स्वयं से लिखना नहीं जानते और ये प्रतिरूप उन्हें बहुत सहारा प्रदान करते हैं। परन्तु बुद्धिमान बच्चे नमूने से प्रायः नाखुश रहते हैं, क्योंकि इसमें उन्हें अपनी मौलिकता व सृजनात्मकता के प्रदर्शन का अवसर नहीं मिलता। अतः नमूनों का उचित रूप से प्रयोग होना चाहिए। असल में, प्रतिरूपों को पहले प्रस्तुत किया जाता है और इस उपागम को इस प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है :

प्रतिरूप का अध्ययन – तत्त्वों का विश्लेषण – समरूप लेख की उत्पत्ति

हम इस आगम को, नीचे दी गई रीति को अपनाकर, अधिक चुनौती भरा बना सकते हैं :

कार्य →	अधिगमकर्ता को वो →	प्रतिरूप →	अधिगमकर्ता →	के संशोधन
स्पष्टीकरण	लिखने देना	का	लेख से	
	जो वे लिख	अध्ययन	तुलना करना	
	सकते हैं			

बच्चों के लिए लेखन में, उसके शुरूआती संघर्ष के पश्चात्, अपने लेखन के संदर्भ में ही प्रतिरूप का प्रस्तुतीकरण अत्यधिक अर्थपूर्ण व उपयोगी होता है।

प्रक्रिया आधारित रास्ता (The porcess-oriented approach)

लेखन को प्रायः एक चिंतन प्रक्रिया माना जाता है। सम्मिश्रण लिखते वक्त, एक लेखक विभिन्न प्रक्रियाओं से गुजरता/गुजरती है : सोचना, विचारों का संगठन, संदर्भ का ध्यान रखना व पुनर्लेखन (redrafting), परन्तु जैसा कि प्रायः माना जाता है, यह एक संकुचित (Linear) प्रक्रिया नहीं है। यह एक श्रेणीबद्ध प्रक्रिया है जिसमें यह आवश्यक नहीं कि विभिन्न प्रक्रियाएं क्रमानुसार चले क्योंकि लेखक आगे पीछे जाता रहता है। उदाहरणतः – पुनः खाका बनाने की प्रक्रिया में लेखक को कोई नया विचार आ सकता है। कुशल लेखकों के पास एक लचीली योजना होती है जिसमें लिखते वक्त परिवर्तन आता रहता है।

अन्तिम उत्पादन (Final Product) – ''निबन्ध, लेख–तक पहुंचने के लिए कुशल लेखक विभिन्न प्रक्रियाओं का प्रयोग करते है। वे योजना बनाते हैं, विचारों की उत्पत्ति करते हैं, खाके बनाते हैं, पढ़ते हैं, संशोधन व पुनर्लेखन करते हैं। हमारे बच्चे बेहतर लिखना सीख सकते हैं यदि हम उन्हें ये विभिन्न प्रक्रियाएं सिखाकर उनका मार्गदर्शन करें। प्रक्रिया उपागम एक अधिगमकर्ता–केन्द्रित उपागम है। यह लेखन उत्पादन का नहीं बल्कि लेखन प्रक्रिया का साया है। इसमें शिक्षार्थियों की सक्रिय भागीदारी शामिल है और इस उपागम का केन्द्र यह नहीं है कि क्या लिखा जाए बल्कि यह है कि कैसे लिखा जाए।

चर्चा आधारित रास्ता (The interactive approach)

भाषा सिखाने का प्रमुख उद्देश्य यह है कि विद्यार्थी में, अंग्रेज़ी में संप्रेषण करने की क्षमता का विकास किया जाए और संप्रेषण के अन्तर्गत चर्चा शामिल है। जब तक अंतःक्रिया न हो, तब तक उचित संप्रेषण नहीं हो सकता। चर्चा को बढ़ावा देने के लिए, हमें यह निश्चित करना होगा कि विद्यार्थी सजीव रूप से ध्यान दें और उनकी सक्रिय भागीदारी हो। चर्चा की गतिविधियां युगल कार्य, सामूहिक कार्य आदि का रूप ले सकती है। हम ऐसी क्रियाओं का ढांचा भी तैयार कर सकते हैं, जिसमें अधिगमकर्ता किसी लेख के साथ चर्चा कर स्वयं काम करें। पारंपरिक कक्षाओं में केवल एक प्रकार की चर्चा होती है – जहां अध्यापक पूरी कक्षा के साथ चर्चा करता है, जिसमें अध्यापक का अत्यधिक प्रभुत्व होता है, क्योंकि सीखने वालों से यह उम्मीद की जाती है कि वे तभी बोलें जब अध्यापक उन्हें बोलने को कहें। चर्चा की कार्यों से कक्षा में आरामदायक (relaxed) वातावरण बन जाता है और सीखने वाले अपने आपको अकेला व डरा हुआ महसूस नहीं करते। उन्हें सम्मिश्रण कक्षाओं में आनंद आने लगता है। वे एक दूसरे से सीखते हैं और वे बिना किसी रूकावट के काम करते हैं। अंतःक्रिया की प्रक्रिया में, वे संप्रेषण में अबाधता हासिल कर पाते हैं। उन्हें भाषा के चार कौशलों–सुनने, बोलने, पढ़ने और लिखने में अभ्यास मिलता है या फिर दूसरे शब्दों में वे सुनने–बोलने और पढ़ने से लिखना सीख जाते हैं।

अपनी प्रगति जाँचें – 2

1. लेखन क्यों सिखाया जाना चाहिए?

   ————————————————————————————————————

2. आपके बच्चे लेखन में किन समस्याओं का सामना करते है?

   ————————————————————————————————————

3. आप सम्मिश्रण कैसे सिखाते हैं? आपका तरीका किस प्रकार पारंपरिक उपागम के समान है? और किस प्रकार उससे भिन्न है?

———————————————————————————————

4. किस प्रकार प्रक्रिया उपागम, प्रतिरूप केन्द्रित उपागम से श्रेष्ठ है?

———————————————————————————————

चर्चा –आधारित लेखन (नमूने)

लिखना सिखाने के लिए कारगर अभ्यासों के नमूने (Sample Tasks for Teaching Writing Effectively)

इस इकाई से पहले यह सूचित किया जा चुका है कि लेखन सिखाया जा सकता है और सिखाया जाना चाहिए, हमने लेखन सिखाने के विभिन्न उपागमों पर भी दृष्टि डाली। इस भाग में हमने कक्षा में पढ़ाने के लिए कुछ व्यावहारिक मार्गदर्शन दिए है, किस प्रकार से अधिगमकर्ता के लेखन कौशल को विकसित करने में सहायता की जा सके। हम विभिन्न प्रकार के मार्गदर्शको (guidance) का, जिन्हें विभिन्न स्तरों पर दिया जा सकता है, भाषायी, मनोवैज्ञानिक और संज्ञानात्मक उनका अनुसंधान करेंगे। भाषायी स्तर पर, यह आवश्यक है कि हम सीखने वालों की शब्दकोष वृद्धि में, व्याकरणिक सटीकता प्राप्त करने में व लेख निर्माण में संबंध बनाने में सहायता करे। मनोवैज्ञानिक स्तर पर, हमें सीखने वालों को श्रोता, उद्देश्य व निर्देश की समझ प्रदान कर प्रेरित करना चाहिए। संज्ञानात्मक स्तर पर हमें विचार, संकेत, रूपरेखा आदि का सहारा प्रदान कर सिखुओं को सहायता देनी चाहिए। निम्नलिखित भाग में हम, उदाहरण सहित, कक्षा में लेखन सिखाने के कुछ आधारभूत मार्गदर्शकों पर चर्चा करेंगे।

पहला सिद्धान्त (The first Principle)

इसमें लिखी में मदद के लिए शुरूआती तस्वीर के लिए तालिका प्रक्रिया चिह्न आदि दिए जाते हैं। नीचे कुछ अलग–अलग स्तर के लिखने के कार्य दिए गए है जो सीखने वाले को एक विवरणात्मक पैराग्राफ लिखने के लिए तैयार करता है।

कार्य 1 (Task 1)

आगे दिए गए प्रश्नों के उत्तर के आधार पर, डाकिए का एक विवरण दीजिए–

(अ) डाकिया क्या पहनता है?

(ब) वह पत्र कहाँ रखता है?

(स) वह यात्रा कैसे करता है?

(द) वह तुम्हें कैसे सूचित करता है कि तुम्हारे लिए पत्र आया है?

(य) वह कौन–कौन सी विभिन्न वस्तुएँ लाता है।

(र) डाकिए का कार्य आसान होता है या कठिन?

कार्य 2 (Task 2)

नीचे दिए गए चित्र को देखकर, चित्र में बने व्यक्ति का विस्तृत विवरण दीजिए। आप निम्नलिखित बातें सम्मिलित कर सकते हैं:

(अ) कद

(ब) रंग–ढंग (Complexion)

(स) पहनावा

(द) लक्षण (features)

(य) मुख के भाव

(र) कोई भी ऐसी चीज़ जो आपको strike करें

कार्य 3 (Task 3)

आपके दादाजी पिछले तीन दिनों से गुमशुदा है। इसके संदर्भ में टेलीविज़न के लिए अपने दादाजी का विस्तृत विवरण दीजिए। निम्नलिखित संकेतों का प्रयोग कीजिए:

नाम, आय, Physical appearance, पहचान चिह्न पहनावा, आदतें (Mannerism) आदि।

कार्य 4 (Task 4)

एक प्रसिद्ध व्यक्ति– जो राजनीति, खेल या अभिनय जगत से संबंध रखता हो, उसका विवरण दीजिए–

हम यह देख सकते हैं कि मार्गदर्शन या सहायता प्रदान करने के संदर्भ में ये चार कार्य श्रेणीबद्ध हैं। पहला कार्य सिखुओं को बहुत अधिक मार्गदर्शन प्रदान करता है, जबकि अंतिम कार्य बहुत चुनौतीपूर्ण क्योंकि इनमें सिखुओं को बहुत कम सहायता प्रदान की जा रही है।

सिद्धान्त 2 (दो)

बच्चों को वास्तविक सच्चाई पर लिखने को कह कर उन्हें प्रेरित किया जाए। सीखने वालों को पाठक व उद्देश्य प्रदान किया जाए।

हम नीचे, संवाद लेखन से संबंधित, कुछ कार्यों के प्रकार प्रस्तुत कर रहे हैं जो दूसरे सिद्धान्त को बेहतर रूप से समझने में सहायक होंगे।

5. आपकी लिखने के कक्षाओं में कौन–सी विभिन्न प्रकार की अंतक्रियाएं होती है? प्रत्येक का एक उदाहरण दें।

लेखन के विविध प्रकार
(Different Types of Writing)

1.1 परिचय

पिछली इकाई में हमने लेखन प्रक्रिया का सामान्य रूप से अध्ययन किया। अब हम लेखन के विशिष्ट रूपों का अध्ययन करेंगे, जिनकी जरूरत हमें स्कूल में पढ़ाते समय होती है। लेखन के संदर्भ में आज शोध काफी उन्नत है, आए दिन सम्मिश्रण पढ़ाने के नयी रुचिकर सामग्री प्रकाशित होती रहती है। उपयुक्त मार्गदर्शन के साथ इस सामग्री को आप कक्षा में प्रयोग कर सकते हैं। यह निश्चित है कि इनके माध्यम से कक्षाओं को जीवंत व उपयोगी बनाया जा सकता है।

उन दिनों जब मैं स्कूल में पढ़ती थी, सम्मिश्रण कक्षाएँ काफी भयावह (डरा देने वाली) होती थीं। वह सब कुछ जो हमें लिखने को कहा जाता था उनमें मुख्य था निबंध, सार, कविताओं की विस्तृत व्याख्या। यह स्वाभाविक था कि रोजमर्रा के जीवन में हम इनका उपयोग नहीं कर पाते। जो भी हमने कक्षा में सीखा, बाहरी जीवन में उसकी बहुत कम प्रासंगिकता है। और तो और हमारे अध्यापक इस कहावत में विश्वास रखते थे कि ''जितना ज्यादा लिखोगे, उतना बेहतर तुम लिख पााओगे।'' बहुत कम मार्गदर्शन दिया जाता था, दरअसल किसी ने भी सम्मिश्रणी (composition) को गंभीरता से नहीं लिया। ''सम्मिश्रण सिखाने'' के विचार पर अध्यापक हँसते थे। अन्ततः लिखना कैसे सिखाया जाए? क्या कोई लिखना स्वयं ही सीखता है? परन्तु वर्तमान समय में परिदृश्य (scenario) में बहुत परिवर्तन हुआ है। वर्तमान में ELT विशेषज्ञ मानते हैं कि लिखना सिखाया जा सकता है और लिखना सिखाया जाना चाहिए।

इस इकाई में, हम लेखन के गैर–पारम्परिक शैलियों (प्रकारों) पर चर्चा करेंगे – डायरियाँ, फार्म भरना, सूचना हस्तांतरण आदि के साथ–साथ पारम्परिक शैलियों (प्रकारों) जैसे गद्यांश, निबंध और पत्र आदि के बारे में भी चर्चा करेंगे। सर्वप्रथम हम लेखन के इन प्रकारों या शैलियों के मुख्य अभिलक्षणों की बात करेंगे फिर हम कार्यों के नए प्रकारों के प्रतिरूपों (Sample) को प्रस्तुत कर सकते हैं। बाद में आप इसी प्रकार के (task) कार्यों की रचना स्वयं भी कर सकते हैं। इस इकाई के अंत में दी गयी संबंधित सामग्री का प्रयोग भी आप कर सकते हैं।

1.2 लेखन के विभिन्न प्रकार

1.2.1 फार्म भरना

जीवन में विभिन्न अवसरों पर, हमें विभिन्न उद्देश्यों के लिए फार्म भरने की जरूरत पड़ती है। उदाहरण – प्रार्थना पत्र (Application form) फार्म, रेल में आरक्षण के लिए फार्म, मनीआर्डर फार्म, चेक आदि। बहुत से लोग फार्म भरते समय असहज महसूस करते हैं, और सदैव किसी न किसी की मदद की उन्हें जरूरत होती है। अधिकतर हमारा फार्म खारिज़ कर दिया जाता है, अगर वह उचित रूप से भरा नहीं होता। इसे एक मूलभूत लेखन के कौशल के रूप में देखा जाता है, जिसके अन्तर्गत शब्दकोश भी शामिल है और निपुणता भी जरूरी है।

आपको आश्चर्य होगा कि बच्चों को इस कौशल की स्कूल में आवश्यकता होती है। हाँ, उन्हें होती है। और यदि हम उन्हें कक्षा एक I से ही प्रशिक्षित करें, तो वे बहुत ही आत्मविश्वास का अर्जन कर पाएँगे। अब हम कुछ सरल कार्यों (task) को देखेंगे जिसमें इस कौशल की जरूरत पड़ती है।

कार्य 1 : (Task 1)

यहाँ एक लेबल दिया गया है, जिसे आप अपनी इतिहास की कॉपी पर चिपकाना चाहते हैं इसे भरिए।

नाम :

कक्षा :

स्कूल :

विषय :

अब R.K. प्राइमरी स्कूल की एक छात्रा के लेबल पर नज़र डालिए।

नाम : सुप्रिया श्रीधर

कक्षा : तीसरी बी

स्कूल : R.K. Primary School

विषय : इतिहास

सुप्रिया एक छोटी लड़की है। उसके पिताजी का नाम श्रीधर है वह R.K. Primary School की तीसरी 'बी' कक्षा में पढ़ती है। इतिहास उसके विषयों में से एक है।

अब अपने पड़ोसी की कॉपी के लेबल पर नज़र डालिए और उसके बारे में चार वाक्य लिखिए।

कार्य 2 : (Task 2)

राकेश सिन्हा 12 वर्ष का है। उसक जन्म 10 मई, 1983 को हुआ था। उसके पिता रमेश सिन्हा एक डॉक्टर हैं। वे मेघराज सेठी मार्ग, नं. 10, बम्बई में रहते हैं। राकेश आदर्श विद्याशरन में पढ़ता है। वह क्रिकेट व शतरंज खेलता है। चित्रकला और (Stamp collection) टिकट एकत्रित करने में उसकी रुचि है। राकेश लोकल चिल्ड्रन क्लब में शामिल होना चाहता है। क्या निम्नलिखित आवेदन पत्र को भरने में आप उसकी सहायता कर सकते है?

दि अन्धेरी चिल्ड्रन्स क्लब

1. नाम
2. उम्र
3. जन्मतिथि
4. पिता का नाम
5. पिता का व्यवसाय
6. घर का पता
7. स्कूल का नाम
8. खेल
9. रुचियाँ

कार्य 3 : (Task 3)

जॉन स्मिथ को उनके जन्मदिन पर निम्नलिखित तार मिला। इसके बारे में तीन वाक्य लिखें।

सेवा में,

जॉन स्मिथ

7, कस्तूरबा मार्ग,

नई दिल्ली – 110028

संदेश : जन्मदिन मुबारक

प्रेषक : अहमद खान

20, जवाहरलाल नेहरू रोड

मद्रास – 600017

1.2.2 सूचना हस्तातंरण

सूचना हस्तातंरण से आपका क्या अर्थ है? सामान्यतः इसका अर्थ है – सूचना का एक रूप से दूसरे रूप में हस्तातंरण उदाहरण के तौर पर ग्राफ के आधार पर गद्यांश लिखना या किसी दिए गए आँकड़ों के आधार पर तालिका या सारिणी बनाना। जीवन के हर स्तर पर हम इस कौशल का प्रयोग करते है। जहाँ गैर मौखिक सम्प्रेषण जैसे सारिणी या पार्ट का मौखिक सम्प्रेषण (गद्यांश या रिपोर्ट) में परिवर्तन होने से सम्मिश्रण कौशल विकसित होता है, वहीं इसकी विपरीत प्रक्रिया सीखने वाले की समझ के कौशल को विकसित करने में सहायता प्रदान करती है। यह एक महत्त्वपूर्ण अध्ययन कौशल है, जो बच्चों के विभिन्न विषयों जैसे मैथ्मैटिक्स (गणित), विज्ञान, इतिहास आदि के अध्ययन में उपयोगी सिद्ध होगा। दरअसल, फार्म भरना भी एक प्रकार का सूचना हस्तातंरण है।

कार्य 1 : (Task 1)

दीपिका के स्कूल का निम्नलिखित विवरण पढ़ें।

मैं गांधी विद्यालय में पढ़ती हूँ। मेरे स्कूल के सामने एक बहुत बड़ा पार्क है मेरे स्कूल के पीछे एक सामूहिक खेल का मैदान है मेरे स्कूल की बाईं तरफ प्रसिद्ध सुपरमार्किट कोटागिरि है, मेरे स्कूल की दाईं तरफ सेंट जोसफ चर्च है।

अब यहाँ स्कूल का रेखाचित्र दिया गया है।

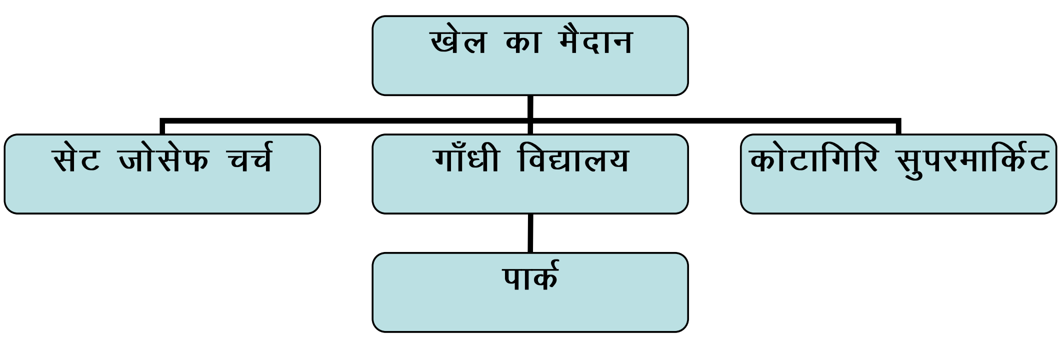

अब, सुरेश चौधरी के घर के आसपास की व्यवस्था देखिए, और उस पर एक गद्यांश लिखिए।

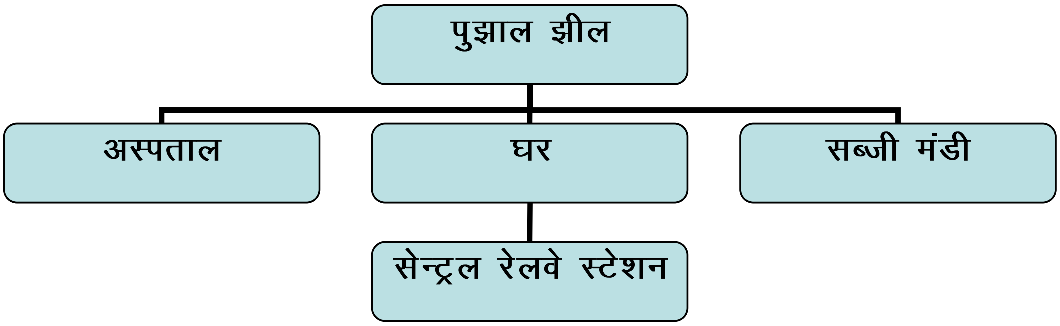

कार्य 2 : (Task 2)

निम्नलिखित बॉक्स को देखिए और कॉफी बनाने के विधि का वर्णन कीजिए।

एक कप पानी को उबालिए	कॉफी मिलाइए	दूध मिलाइए	स्वादानुसार चीनी मिलाइए

कार्य 3 : (Task 3)

होटल द्वारका के मैन्यू कार्ड को पढ़िए –

इडली	–	3.00 रु.
रवा डोसा	–	6.00 रु.
मसाला डोसा	–	7.00 रु.
पुरी पोटैटो	–	5.00 रु.
पोंगल	–	4.00 रु.
समोसा	–	2.50 रु.
बड़ा	–	4.00 रु.
कॉफी	–	3.50 रु.
चाय	–	2.00 रु.

राजीव मेनन ने निम्नलिखित चीज़ों का आर्डर दिया –

1 प्लेट इडली	:	3.00 रु.
1 प्लेट बड़ा	:	4.00 रु.
1 चाय का कप	:	2.00 रु.

उसके दोस्त किशोर और रहीम कुछ अलग चीज़ें खाना चाहते हैं, कोई भी नाश्ते के लिए 10 से अधिक रु. खर्च करना नहीं चाहते हैं। क्या आप उनके लिए आर्डर लिख सकते हैं।

अपनी प्रगति को जानिए 1

1. उन विभिन्न फार्मों की सूची तैयार कीजिए जो बच्चे अपने स्कूली जीवन में भरते हैं।

____

____

____

2. अपने शिष्यों की विज्ञान/इतिहास/गणित की किताब का जिक्र कीजिए। उनमें से किसी भी सारिणी/ग्राफ/चित्र का चयन कीजिए और एक हस्तातंरण अभ्यास की कार्यशैली तैयार कीजिए।

____

____

____

1.2.3 सम्मिश्रण

चित्र हमेशा से ही अच्छे अंग्रेजी शिक्षकों के बीच विख्यात रहे हैं, एन्ड्रयू राइट भाषा सिखाने में चित्रों की भूमिका की सूची देते हैं।

1. चित्र बच्चों (विद्यार्थियों) को प्रेरित करते हैं। वे उन्हें ध्यान देने तथा भाग लेने हेतु प्रेरित करते हैं।
2. चित्र वास्तविक जीवन को कक्षा में लेकर आते हैं तथा भाषा सीखने के लिए एक संदर्भ प्रस्तुत करते हैं।
3. चित्रों पर विभिन्न प्रतिक्रियाएँ संभव हैं ; उनका वस्तुनिष्ठ रूप में वर्णन किया जा सकता है या आत्मनिष्ठ रूप से/तरीके से प्रतिक्रिया किया अथवा समझा जा सकता है।
4. चित्र उद्दीपन दे सकते हैं और सूचना प्रदान करते हैं, जिनका इस्तेमाल वार्तालाप, कथा वाचन (story-telling) और चर्चा के संदर्भ में किया जा सकता है।

चित्रों को तैयार करना व व्यवस्थित करना आसान है। वे रुचिपरक होती हैं और भाषा के अर्थपूर्ण व विशुद्ध प्रयोग का अवसर प्रदान करती हैं।

चित्र बच्चों के साथ सभी स्तरों पर प्रयोग किए जा सकते हैं – नवसिखुए से लेकर , बच्चों से वयस्क तक तक। एक बार यदि अध्यापक चित्र का संग्रह कर ले और समझ ले कि उनका कैसे प्रयोग करना है, तो उसे तैयारी के लिए बहुत कम समय की आवश्यकता होगी। एक बार यदि अध्यापक चित्रों का एक बैंक (Picture bank) बना ले तो वह आवश्यकतानुसार उनमें वृद्धि कर सकता है। भारत जैसे विकासशील देश जहाँ आधुनिक उच्च तकनीक से बने शैक्षिक उपकरण व्यावहारिक नहीं है, वहाँ चित्र एक आर्थिक और रुचिपरक साधन प्रस्तुत करते हैं। अब हम कुछ ऐसे कार्यों पर नज़र डालेंगे जहाँ चित्र लेखन कौशल को विकसित करने में प्रयोग किए जा सकते हैं।

कार्य 1 : (Task 1)

यह कार्य छोटे बच्चों/नवसिखुए के लिए उपयुक्त है। बच्चों को चित्रों का मिश्रण दिया जा सकता है जो अपने आपमें कहानी कहता हो। फिर हम प्रत्येक चित्र से मिलता वाक्य लिख सकते हैं। अब हम बच्चों को चित्रों व शब्दों का मिलान करने को कह सकते हैं और फिर सही क्रम में कहानी का पुनःनिर्माण करने को कह सकते हैं। उदाहरण जैसे –

(क) चोर कार चलाकर दूर चले गए।

(ख) वह स्ट्रेचर पर लेटा।

(ग) एक चोर ने बैंक से 10,000/– रु. चुराए।

(घ) अस्पताल का वार्ड ब्वाय उसे ऑपरेशन थियेटर में लेकर गया।

(ड़) पुलिस चोर के पीछे भागा।

(च) वह उसे अस्पताल में ढूँढ़ने गया पर वह ढूँढ़ नहीं पाया।

(छ) वह अस्पताल के पिछले दरवाजे से भाग गया।

कार्य 2 : (Task 2)

यह कार्य विभिन्न स्तरों पर प्रयुक्त किया जाता है। हमें यहाँ ऐसे चित्रों की जरूरत है जिसमें कई चीज़ें गलत हों।

उदाहरणतः एक आदमी ने एक पैर में जूता पहना और दूसरे पैर में चप्पल पहनी। एक औरत ने कंधे वाला बैग ले रखा है, जिसमें कोई पट्टी नहीं है। वहाँ एक घड़ी है, जिसमें कोई सुई नहीं है। वहाँ एक सूचना है, जो उल्टी लगी है।

बच्चों को चित्रों को ध्यानपूर्वक देखना है और गलतियों को पहचानना है।

कार्य 3 : (Task 3)

आजकल बच्चे (क्यों, यहाँ तक वयस्क भी) कॉमिक्स पढ़ना पसंद करते हैं। हम एक कॉमिक्स की कहानी ले जा सकते हैं और उसमें से शब्द मिटाकर बच्चों को स्वयं से कहानी सुनाने के लिए कह सकते हैं। यदि आप कार्य को सरल रखना चाहते हैं, तो आप शब्दों को लिखा रहने दे सकते हैं और बच्चों को कहानी को कथावाचन रूप में दुबारा लिखने को कह सकते हैं।

कार्य 4 : (Task 4)

एक रुचिपरक चित्र अखबार व पत्रिका से बच्चों को दिया जा सकता है। और उन्हें इससे कहानी बनाने को कहा जा सकता है। बाद में वे अपनी कहानी की तुलना मौलिक रिर्पोट से कर सकते हैं।

1.2.4 डायरियाँ

डायरी एक निजी लेखा–जोखा होती है। जिस तरह हम सामान्यतः अंग्रेजी लिखते हैं, डायरी लिखने का तरीका उससे भिन्न होता है। हमें पूरे वाक्य लिखने की जरूरत नहीं होती। और न ही हमें वाक्यों की निरन्तरता के प्रति चितिंत होना पड़ता है। विचार एवं भावनाएँ प्रायः असबंधित रूप से अभिव्यक्त होते हैं, जैसे–जैसे वे मानस से गुजरते हैं।

डायरी की भाषा तार की भाषा के समान होती है।

कार्य 1 : (Task 1)

नीचे एक पन्ना शीला की डायरी से दिया गया है।

7 बजे उठी – मम्मी घर पर नहीं – दादी ने कहा कि वह अस्पताल गयी है। मैं चिंतित हूँ। पिताजी 8 बजे घर आते हैं– मुझे स्कूल छोड़ते हैं। मैं अस्पताल जाना चाहती हूँ– पिताजी ना कहते हैं – शाम को पिताजी मुझे स्कूल से लेते हैं– हम दोनों खुश होते हैं– मुझे दो 5 Star देते हैं– हम सीधे अस्पताल जाते हैं– माँ को देखकर कितना अच्छा लगता है– वहाँ मेरा छोटा भाई है। बहुत मुलायम और लाड़ला– बिल्कुल एक गुड़िया की तरह। मैं उसे जो जो कहकर पुकारने वाली हूँ। वो मुझे अक्का पुकारेगा – आज मेरे जीवन का सबसे खुशी का दिन है।

निरन्तर गद्यांश के रूप में इस डायरी को दुबारा लिखे।

कार्य 2 : (Task 2)

जिस दिन आपका परिणाम निकला था और आपको पता चला था कि आप अगली कक्षा में पहुँच गये हैं, उस दिन की डायरी लिखिए।

कार्य 3 : (Task 3)

आपके हेडमास्टर अपने दैनिक क्रियाकलाप के बारे में डायरी लिखते हैं। वे आपके स्कूल के वार्षिक दिवस समारोह के दिन क्या लिखेंगे।

आप इस तरह शुरू कर सकते हैं

3 pm मेहमानों के लिए चाय

3.30 pm

4 pm

अपनी प्रगति को जानिए 2

1. अंग्रेजी की कक्षा में चित्रों का प्रयोग करने का क्या लाभ है?

____

____

____

2. डायरी लिखना तार लिखने से भिन्न कैसे है?

____

____

____

3. किसी भी चित्र का चयन करें और सोचें कि उसे सम्मिश्रण सिखाने हेतु कैसे प्रयोग करें?

____

————————————————————————————————————

————————————————————————————————————

4. अपने छात्रों को एक डायरी बनाने को कहें जिसमें वो अपने अंग्रेजी कक्षा के सम्बन्ध में प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करेंगे। उन्हें सप्ताह के अंत में एकत्रित कीजिए। वे आपको आपके बारे में शिक्षक के बारे में क्या बताते हैं?

————————————————————————————————————

————————————————————————————————————

————————————————————————————————————

1.2.5 संवाद

संवाद अंग्रेजी के मौखिक रूप से सम्बन्धित है। अंग्रेजी के मौखिक रूप का निरीक्षण करना बहुत कठिन है, इसलिए इन्हें अंग्रेजी के सम्मिश्रण पाठ्यक्रम में एक भाग के रूप में सम्मिलित किया जाता है। संवाद इतने सरल हो सकते हैं जितने कि दिन प्रतिदिन की बातचीत। वे बहुत ही कल्पनात्मक व कलात्मक हो सकते हैं। जैसे कि साहित्यिक लेख– मुख्य उपन्यासों में। प्राथमिक व माध्यमिक स्तरों पर सरल संवादों पर ही ध्यान केन्द्रित कर सकते हैं।

संवाद को क्या प्राकृतिक बनाता है – जो हमारे दिन प्रतिदिन की बातचीत के तरीके के समान है।

(क) संवाद में जरूरी नहीं कि पूर्ण वाक्य हो।

(ख) यह बहुत है कि यदि सरल शब्दावली का उपयोग किया जाए।

(ग) इसके बहुत से संक्षिप्त चिह्न प्रयोग किये जाते है, उदाहरणतः Can't, don't, etc.

(घ) बातचीत के हाव–भाव शामिल किए जा सकते हैं। उदाहरणतः tummy, oops, wow, dad, etc.

कार्य 1 : (Task 1)

नीचे एक माता और पुत्र के बीच अपूर्ण वार्तालाप दी गई है। रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए व संवाद को पूरा कीजिए।

पुत्र : माँ, मेरी कक्षा घूमने के लिए शिमला जा रही है।
माता :
पुत्र : मई में, गर्मियों की छुट्टियों के दौरान
माता :
पुत्र : दस दिन के लिए। दो अध्यापक हमारे साथ जा रहे हैं।
माता :
पुत्र : ज्यादा नहीं – सिर्फ 500 रु. प्रति व्यक्ति। माँ, क्या मैं जा सकता हूँ?
माता :
पुत्र : धन्यवाद माँ। तुम कितनी प्यारी हो, है ना माँ।

कार्य 2 : (Task 2)

नीचे अहमद और शरीफ के बीच की गई टेलीफोनिक वार्तालाप दी गई है। पूरे वार्तालाप की पुनःरचना कीजिए।

अहमद :

शरीफ :

अहमद : और तुम्हे पता है, आज गणित के अध्यापक भी छुट्‌टी पर थे।

शरीफ : तुम्हे दो पीरियड खाली मिले? इसका मतलब यह कि मेरा ज्यादा नहीं छूटा।

अहमद : ओह, हमारा समय बहुत अच्छा बीता। मैंने कितना चाहा था कि तुम आज स्कूल आते। तुम और तुम्हारा बुखार।

शरीफ :

अहमद :

कार्य 3 : (Task 3)

कल्पना कीजिए कि आप अपने स्कूल की ओर जा रहे हैं। एक अनजान व्यक्ति आप से रेलवे स्टेशन का रास्ता पूछता है। अपने व अनजान व्यक्ति के बीच हुए संवाद को लिखिए।

कार्य 4 : (Task 4)

सामूहिक सम्मिश्रण – एक चित्र को इस तरह से प्रदर्शित किया जाए ताकि पूरी कक्षा उसे देख सके। प्रत्येक समूह इसका अध्ययन करे और फिर 5 मिनट का नाटक बनाए जो कि चित्र के साथ समाप्त हो। फिर वे नाटक को पूरी कक्षा के सामने प्रस्तुत करे। दूसरे अन्य समूह नाटक देखें और क्योंकि उसी चित्र का निरूपण किया जाता है, बच्चों की रुचि नाटक में बनी रहती है।

1.2.6 पत्र

हम सभी विभिन्न कारणवश पत्र लिखते हैं। पत्र हमें उन लोगों से सम्प्रेषण करने का सामर्थ्य प्रदान करते हैं, जो हमसे दूर हैं। कुछ उद्देश्य जिनके लिए हम पत्र लिखते हैं, वे हैं : सूचना देने हेतु, निमंत्रण देने हेतु, जाँच करने हेतु, शिकायत करने हेतु, बधाई देने हेतु, सहानुभूति जताने हेतु आदि प्रत्येक पत्र में एक लेखक, एक पाठक व एक परिस्थिति होती है। पत्र दो प्रकार के होते हैं : औपचारिक पत्र मुख्यतः अपरिचितों के बीच व्यावसायिक उद्देश्य से लिखे जाते हैं। अनौपचारिक पत्र के अन्तर्गत सभी दोस्तों परिवार के सदस्यों और सम्बन्धियों के बीच पत्र व्यवहार आता है।

पत्र के महत्त्वपूर्ण भाग :

लेखक का पता, दिनांक, प्राप्तकर्त्ता का पता, सेल्युटेशन (प्रणाम), पत्र का प्रधान अंश (letter of the body), भेजने वाले का नाम, हस्ताक्षर और लेखक का पूरा नाम हस्ताक्षर के नीचे।

एक अनौपचारिक पत्र के मुख्य भाग :

लेखक का पता, दिनांक, सेल्युटेशन (प्रणाम), पत्र का प्रधान अंश, (subscription) भेजने वाले का नाम, हस्ताक्षर।

अब हम पत्र लेखन के कुछ रुचिपूर्ण कार्यों पर नज़र डालेंगे।

कार्य 1 : (Task 1)

एक पेन फ्रेंड को चित्र पोस्ट कार्ड पर पत्र

दिनांक :	
प्रिय जेनी, मेरा नाम रानी है, क्या तुम मेरी पेन फ्रेंड बनोगी? मेरी आयु 10 वर्ष है। मैं कक्षा 5 में पढ़ती हूँ। मेरा एक भाई है। मेरे पिताजी एक इंजीनियर है और मेरी माँ एक शिक्षिका है। मुझे तैराकी व साइकिल चलाना पसंद है। कृपया मुझे अपने बारे में लिखें। तुम्हारी स्नेही रानी	सुश्री जेनी गिलपिन 7, मेफिल्ड रोड़, इडिनबर्ग, ग्रेट ब्रिटेन

यह रानी का उसकी पेन फ्रेंड जेनी को पहला पत्र है। अब ऐसा ही पत्र अपने पेन फ्रेंड को लिखिए।

कार्य 2 : (Task 2)

पत्रों का मिश्रण

आशा के द्वारा अपनी माँ को लिखे गए इस पत्र को पढ़िए। आशा अपने हॉस्टल के जीवन का विवरण लिख रही है। पर गद्यांश मिश्रित रूप में है। उन्हें सही क्रम में लगाइए।

रात को हमें खाने में चपाती और दूध का एक गिलास मिलता है। हम रात को दस बजे तक पढ़ते हैं। फिर लाइट बंद करनी होती है। आप जानते हैं न, ये मेरे लिए कितना कठिन है। मैं घर पर देर रात तक कितनी सारी फिल्में देखती थी।

हम चार हॉस्टल में एक ही कमरे में साथ रहते हैं। सबके पास एक चारपाई, एक मेज़, एक डेस्क और एक अलमारी है। शर्मीला (कलकता से), सपना (दिल्ली से) और नंदिता (केरल से) मेरे साथ कमरे में रहती है। मैं कुछ बंगाली और मलयालम भी सीख रही हूँ। हम रात को देर तक बैठते हैं, और बातें करते हैं। हम सब कुछ एक साथ ही करते हैं।

प्रिय, माँ, उम्मीद करती हूँ कि आपके साथ सब कुछ ठीक है। आपने मेरे हॉस्टल के बारे में पूछा था। अब मैं आपको अपने विवरण से आपको बोर करूँगी (उबाऊ)।

क्या आप विश्वास कर सकती हैं, आपकी प्रिय बेटी सुबह पाँच बजे उठती है? हाँ, हॉस्टल ने मुझे बहुत बदल दिया है। अब 6 बजे तक बिस्तर पर कॉफी नहीं मिलती, पर पागलों की तरह स्नानघर की तरफ भागती हूँ। अगर हम 8 बजे तक भोजनकक्ष में नहीं पहुँचते, तो कोई नाश्ता नहीं। ऐसा मत सोचना कि आपकी बेटी पीड़ा से गुज़र रही है। मुझे आपको अपने दोस्तों के बारे में जरूर बताना चाहिए।

कार्य 3 : (Task 3)

सुरेश ने अपने हेडमास्टर को एक पत्र लिखा। जब उसके हेडमास्टर ने वह पत्र पढ़ा तो बहुत गुस्सा हुए। क्यों? क्या आप इसको सही करने में सुरेश की मदद कर सकते हैं?

मेरे प्रिय हेडमास्टर,

आशा है आप ठीक होंगे। मैं बहुत अच्छा महसूस नहीं कर रहा हूँ। मुझे बुखार है। माफ कीजिए, मैं आज स्कूल नहीं आ सकता। कृपा करके मुझे माफ करें। क्या, मैं आज एक छुट्टी ले सकता हूँ।

कार्य 4 : (Task 4)

अंतरिक्ष से एक पत्र

यह पत्र मार्स की एक लड़की का अपने पृथ्वी के दोस्त राजेश को लिखा गया है।

5, सेन्टर स्ट्रीट

रेड कॉलोनी

मार्स (मंगल)

प्रिय राजेश,

आपके पत्रों और तस्वीरों के लिए धन्यवाद। उन्हें देखकर बहुत अच्छा लगा। आप कितने अलग दिखते हैं। आपको मेरे बारे में जानना चाहते थे। मेरा पूरा नाम बीपेनटेनिया है। मेरे बाल लाल रंग के है और चेहरा हरे रंग का। क्या आपको पता है कि मुझे अपने स्कूल की सौंदर्य प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार मिला है।

आप अपने दो हाथों से कार्य को कैसे संभालते हैं? हम सबके पास चार हाथ और चार आँखें होती हैं– हम चारों दिशाओं में एक ही समय पर देख सकते हैं। हम प्रचुर मात्रा में फल और फूल खाते हैं। हम सिर्फ दूध पीते हैं।

हम मार्टिना बोलते हैं। हमारे गाने सुन्दर हैं। नववर्ष के दिन, हम सारे दिन गाते और नाचते हैं। हम उपहारों का भी आदान–प्रदान करते हैं।

कृपा करके जल्द ही दुबारा लिखना और अपने बारे में और भी बताना।

प्यार के साथ

बीपेनटेनिया

अपनी प्रगति को जाँचिए – 3

1. कम से कम पाँच संदर्भ सोचिए जिनका स्कूलों में मुख्यतः सम्प्रेषण हेतु प्रयोग किया जाता है, उदाहरणतः एक अध्यापक एक बच्चे की प्रगति के बारे में चर्चा कर रहा है।

————————————————————————————————

____

____

2. कम से कम, पाँच ऐसे अवसर ढूँढ़िए जिनमें विद्यार्थियों को पत्र लिखने की जरूरत होती है, उदाहरणतः छुट्टी के लिए एक पत्र।

____

____

____

3. प्रत्येक पर एक कार्य की रूपरेखा तैयार कीजिए –

(क) संवाद सिखाना

(ख) पत्र लेखन सिखाना

____

____

____

1.2.7 गद्यांश / निबंध

गद्यांश पत्र, निबंध, रिपोर्ट आदि के निरन्तर लेखन का एक भाग है। इसलिए यह आवश्यक है कि हम अपने शिष्यों को अच्छा गद्यांश लिखना सिखाएँ। अच्छे लिखे हुए गद्यांश की निम्न विशेषताएँ हैं–

(क) **इसमें एकबद्धता होती है** : प्रत्येक गद्यांश एक निश्चित विचार से सम्बन्धित होता है। सामान्यतः प्रत्येक गद्यांश का एक विषय–वाक्य होता है, उदाहरणतः वह वाक्य जिसमें गद्यांश का मुख्य विचार होता है।

(ख) **गद्यांश पूर्णतः व्यवस्थित होता है** : उसकी निश्चित योजना होती है, गद्यांश को संगठित करने के विभिन्न प्रकार होते हैं, उदाहरणतः – किसी विचार को उदाहरणीकृत करना, वाचन अर्थात् घटनाओं का क्रमानुसार संगठन करना, तुलना करना – अन्तर बतलाना आदि।

(ग) **गद्यांश में संयुक्तता होती है** : प्रत्येक वाक्य तार्किक रूप से अपने पहले वाले वाक्य से सम्बन्धित होता है और अगले वाक्य का अदांजा देता है।

जब हम बच्चों को गद्यांश लेखन सिखाते हैं, ये तथ्य उन्हें अच्छी तरह समझा देने चाहिए।

कार्य 1 : (Task 1)

बच्चों को शुरुआती स्तर पर गद्यांश का एक प्रारूप प्रदान करें और बच्चों को लगभग उसकी वैसी ही नकल करने को कहें।

किरन का पेन्सिल का डिब्बा खो गया है और उसने निम्नलिखित नोटिस लगाया–

मेरा पेन्सिल का डब्बा लाल रंग का है। इसके ऊपर मिक्की माऊस का चित्र है। इसमें दो पेन्सिलें रखी हुई हैं। एक पेन्सिल का रंग काला है और दूसरी का नीला। उसके अन्दर एक गुलाबी रंग की रबड़ भी है। सुपरमैन का एक चित्र डिब्बे के अन्दर है। मैंने दो रुपये का सिक्का भी उसमें रखा था।

अब एक ऐसा ही गद्यांश अपने स्कूल बैग के बारे में लिखिए –

कार्य 2 : (Task 2)

नीचे दिए गए गद्य (passage) में, दो गद्यांशों (Paragraph) का मिश्रण दिया गया है। क्या आप उनको अलग कर सकते है?

एक बार एक शहर में एक सियार रहता था। एक दिन एक राजा ने एक बूढ़े आदमी को छोटा सा आम का पेड़ लगाते हुए देखा। उसने उससे पूछा – ''तुम्हें इस पेड़ से कोई फल कब मिलेगा?'' सेन्ट (संत) फ्रांसिस शहर का अवलोकन करने आए और वे सियार को देखना चाहते थे। राजा हँसा और बोला ''जितने में उस पेड़ पर फल लगेंगे उससे पहले तुम मर जाओगे।''

लोगों ने उसे बताया कि वो मारा जाएगा। लेकिन संत ने नहीं सुना। बूढ़ा आदमी हँसा और बोला ''हाँ, पर दूसरे लोग तो फल खा लें। अभी मैं उन पेड़ों के फल खाता हूँ जो मेरे परदादा ने उगाए थे। वह वन में चला गया। जब सियार उसकी तरफ भागा, उसने बोला ''इधर आओ–सियार भाई।'' राजा बहुत शर्मिंदा हुआ। क्रूर सियार ने अपना मुँह बद किया और उसके पैरों में बैठ गया।

कार्य 3 : (Task 3)

निम्नलिखित संकेतों का एक गद्यांश लिखने हेतु प्रयोग कीजिए।

मोहनदास कर्मचन्द गाँधी – जन्म 1869 पोरबन्दर – पिता कर्मचन्द गाँधी – माता पुतली बाई – वकालत पढ़ने इंग्लैंड गये – वकील के रूप में साऊथ अफ्रीका में काम किया – भारत आए – स्वाधीनता आन्दोलन में भाग लिया – सत्याग्रह व अहिंसा में विश्वास रखते थे – भारत के लिए 1947 में स्वतन्त्रता जीती – हमेशा सत्य बोलते थे – सादा जीवन जीने का प्रयास किया – हिन्दु–मुस्लिम एकता के लिए लड़े – 1947 में गोडसे द्वारा मारे गए – राष्ट्रपिता व महात्मा के रूप में याद रखे गये।

कार्य 4 : (Task 4)

एक पत्रिका से कोई भी रुचिपरक चित्र चुनिए। बच्चों से कहिए कि चित्र का वर्णन करते हुए एक गद्यांश लिखिए।

1.2.8 रिपोर्ट्स

एक रिपोर्ट एक घटना या अनुभव का वर्णन देती है। रिपोर्ट विभिन्न प्रकार की होती है : समाचार पत्र रिपोर्ट, वैज्ञानिक रिपोर्ट, या व्यापारिक रिपोर्ट। नीचे रिपोर्ट की मुख्य विशेषताएँ दी गयी हैं–

1. रिपोर्ट एक सार होता है।
2. यह अधिकतर तृतीय पुरुष में लिखी जाती है।
3. इसके अन्तर्गत महत्त्वपूर्ण जानकारी ही सम्मिलित होती है – कोई भी विषयान्तरगमन नहीं होता।
4. इसमें भावनाओं की अत्यधिक प्रबलता नहीं होती।
5. विचार तार्किक रूप से व्यवस्थित होते हैं।

कार्य 1 : (Task 1)

मान लिजिए कि आप अपने स्कूल के समाचार पत्र ''स्कूल टाइम्स'' के संपादक हैं। आपको स्वतन्त्रता दिवस समारोह की रिपोर्ट देनी है। निम्नलिखित संकेतों का प्रयोग करके रिपोर्ट लिखिए–

15 अगस्त, 1995 – सुबह 7 बजे – ध्वजारोहरण स्थान के नीचे सभी बच्चे सफेद वर्दी पहनकर इकट्ठे हुए – मुख्य अतिथि, पुलिस कमिश्नर सुबह 7 बजे पहुँचे – झण्डा फहराया गया – सबने ध्वजगान गाया –

''युवकों की भारतमाता के प्रति कर्तव्य'' – स्कूल के प्रधानाचार्य द्वारा धन्यवाद प्रस्तुत किया गया – सभी शिष्यों के लिए चाय।

कार्य 2 : (Task 2)

नितिन ने बेन को टेलिफोन किया पर बेन घर पर नहीं था। उसकी बहन रीटा ने फोन उठाया नितिन और रीटा के बीच निम्नलिखित बातचीत हुई–

रीटा : हैलो, यह 8265279 है।

नितिन : हेलो, रीटा मैं नितिन हूँ। क्या मैं बेन से बात कर सकता हूँ?

रीटा : माफ कीजिए, वह बाहर गया हुआ है। क्या मैं उसके लिए संदेश ले सकती हूं?

नितिन : हाँ। हम आज रात को साथ में पढ़ने की योजना बना रहे थे आपके घर पर, पर मेरी माँ को बुखार है और और मुझे उन्हें डॉ. के पास ले जाना है। क्या आप बेन को बता देंगी कि मैं आज रात को नहीं आ पाऊँगा? उससे कहना कि मैं बहुत सॉरी महसूस कर रहा हूँ।

रीटा : ठीक है, मैं यह उसे बता दूँगी।

नितिन : धन्यवाद, बाय।

अब रीटा बेन के लिए एक संदेश लिखती है। वह नितिन के साथ अपने वार्तालाप का विवरण प्रस्तुत करती है। यह निम्नलिखित रूप से शुरू हुई ''तुम्हारे दोस्त नितिन ने यह कहने के लिए फोन किया था.......

कार्य 3 : (Task 3)

विद्यार्थीगण अपने वरिष्ठ विद्यार्थियों (seniors) के लिए विदाई समारोह के बारे में चर्चा करने के लिए मिले। सम्मेलन में निम्नलिखित विषयों से संबंधित चर्चा की गई–

1. दिनांक और स्थान
2. बजट
3. मैन्यू के चीज़ें
4. वरिष्ठ विद्यार्थियों के लिए उपहार
5. भाषण
6. मनोरंजन

इस बाहरी रूपरेखा का प्रयोग करके, समारोह की एक रिपोर्ट बनाइए, जो कि प्रधानाचार्य के समक्ष प्रस्तुत की जाएगी।

अपनी प्रगति जाँचिए 4

1.3 सारांश

1. लिखना सिखाया जा सकता है, सिखाया जाना चाहिए
2. अपने शिष्यों को यह सिखाना चाहिए कि जीवन में क्या प्रासंगिक है।
3. हमें लेखन के पारंपरिक प्रकारों को सिखाना चाहिए, जैसे कि गद्यांश, निबंध, पत्र, रिपोर्ट आदि।
4. हमें लेखन के गैर पारम्परिक प्रकारों को सिखाना चाहिए, जैसे–डायरी, फार्म भरना, सूचना हस्तातंरण आदि।
5. फार्म भरना एक मूलभूत लेखन कौशल है जो निपुणता की माँग करता है और बच्चों में आत्मविश्वास का विकास करता है।
6. सूचना हस्तांतरण का कौशल बच्चों को अंग्रेजी के अलावा अन्य विषयों का अध्ययन करने में मदद करता है।
7. चित्र विभिन्न प्रकार के लेखन कौशलों का विकास करने हेतु रुचिपूर्ण उद्दीपन प्रस्तुत करते हैं।
8. डायरी लेखन बच्चों को व्याकरणिक निपुणता की चिंता न करते हुए अपनी भावनाओं को स्वतंत्र रूप से व्यक्त करने में मदद करता है।
9. संवाद मौखिक भाषा के परीक्षण का अप्रत्यक्ष तरीका प्रस्तुत करता है।
10. पत्र औपचारिक और अनौपचारिक जीवन में विभिन्न उद्देश्यों हेतु उपयोग होते हैं, प्रत्येक की एक निश्चित रूपरेखा होती है।

लिखना—बातचीत

लिखना एक तरह की बातचीत ही है। लिखते वक्त हम किसी से संवाद कर रहे होते हैं, हालांकि प्रायः वह व्यक्ति हमारे सामने नहीं होता। बहुत—सी बातें हम किसी सूचना, विचार या याद को सुरक्षित रखने के लिए लिखते हैं। यदि मैं अपने आज के अनुभव एक डायरी में लिखूं तो मैं इन अनुभवों को किसी और दिन पढ़ने की आशा में सुरक्षित रख सकूंगा।

अध्यापक की हैसियत से हमें बच्चों को लेखन का परिचय बातचीत के एक रूप में देना चाहिए। स्कूल में दाखिला लेने तक बच्चे कई तरह के लोगों से कई तरह के विषयों पर बात करने की सामर्थ्य हासिल कर चुके होते हैं। उनमें 'श्रोता बुद्धि' (यानी किससे क्या बात करनी है, कैसी करनी है?) का बीज पड़ चुका होता है। यह बुद्धि लिखना सीखने के लिए बहुत उपयोगी है पर इसका प्रयोग बच्चों को अब किसी दूर बैठे 'श्रोता' (या पाठक) के लिए करना होगा। कुछ किस्म के 'श्रोता' (जैसे अध्यापक या दूसरे बच्चे या स्वयं) पास में उपस्थित भी हो सकते हैं। यह अध्यापक पर निर्भर है कि बच्चे लिखने को संबोधन या किसी से कुछ कहने की तरह ले पाते हैं या नहीं।

यह साफ कर देना जरूरी है कि आज लिखना सिखाने के नाम पर जो कुछ हो रहा है हम उससे किसी एकदम भिन्न चीज की चर्चा कर रहे हैं। लाखों बच्चों को लिखना एक यांत्रिक कौशल की तरह सिखाया जा रहा है। शुरु में उनसे अक्षरों की आकृतियों को दर्जनों बार नकल करने के लिए कहा जाता है और अध्यापक उन उतारी हुई आकृतियों को बारीकी से देखता है। इस रीति से पूरी वर्णमाला से निपटने में कई हफ्ते लग जाते हैं। इस लंबी अवधि में लिखना सीखने का कैसा भी उद्देश्य बच्चों की दृष्टि में नहीं रह जाता। बाद में जब उनसे शब्द लिखने या और कुछ दिनों बाद वाक्य बनाने के लिए कहा जाता है तो वे अध्यापक का मुंह यह जानने के लिए ताकते हैं कि वे लिखें क्या? वे लिखने को अपनी कोई बात कहने के माध्यम के रूप में नहीं ले पाते। वे उसे एक कवायद या कर्मकांड के रूप में देखते हैं जिसे उन्होंने अध्यापक से सीखा है।

अब यदि हम इस स्थिति से हटना चाहते हैं तो हमें लेखन को बात के विस्तार की तरह प्रस्तुत करना होगा। अतः अध्याय 'बातें करना' के अंतर्गत दी गई गतिविधियां लिखने की गतिविधियां आयोजित करने के लिए बहुत उपयोगी होंगी। बातचीत हमें किसी श्रोता के सामने चीजों को व्यवस्थित करके सुनाने का मौका देती है। इसी कारण वह लिखना सिखाने के लिए इतनी उपयोगी है।

बात और लेखन के बीच

बच्चों को लिखना सिखाने की शुरुआत करने के पूर्व यह पक्का कर लीजिए कि वे सब अपनी जिंदगी और आसपास हो रही चीजों के बारे में आत्मविश्वास के साथ बात करने लगे हों। इसका मतलब यह है कि :

1. उनमें अपने अनुभव और विचार दूसरों को बताने की इच्छा हो, और
2. अपना अनुभव या दृष्टिकोण क्रमबद्ध पेश करने की सामर्थ्य हो।

ये बच्चे लिखना सीखने के लिए तैयार हैं। लेकिन शब्द और वाक्य लिखने के पहले उन्हें और बहुत कुछ करना होगा।

किसी भी भाषा को लिपिबद्ध करने के लिए काग़ज़ पर जटिल आकृतियाँ बनानी होती हैं। अक्षरों की छोटी छोटी आकृतियों के बारीक भेद देख पाना और याद रखना जरूरी होता है। लिखने के लिए यह भी जरूरी है कि अमूर्त प्रतीकों के जरिए अपने विचार और भाव व्यक्त करना आता हो। वर्णमाला के अक्षर अमूर्त प्रतीक होते हैं। वे अमूर्त इसलिए हैं कि उनकी आकृति और उनसे जुड़ी ध्वनियों के बीच कोई समरूपता नहीं है। उदाहरण के लिए 'अ' अक्षर की आकृति का 'अ' की ध्वनि से कोई तार्किक संबंध नहीं है। बस हम उसे 'अ' के रूप में स्वीकार करके चलते हैं। जो बच्चा हिंदी लिखना सीखना चाहता है उसे 'अ' को 'अ' रूप में स्वीकार करना होगा और उसका उपयोग उचित जगह पर करना सीखना होगा। उसे इस तरह के कई प्रतीकों का आदी बनना पड़ेगा। अमूर्त प्रतीकों के जरिए अपनी बात कहना ही तो लिखने का कौशल है।

ऊपर दी गई क्षमताओं का विकास एक दिन में नहीं हो सकता। इनका विकास करने का सबसे अच्छा तरीका बच्चों को ड्राइंग और रंगीन चित्र बनाने का नियमित अवसर देना है। सारे बच्चों के लिए ड्राइंग का कागज और रंग खरीदने लायक पैसा कम ही स्कूलों के पास होगा। यदि नीचे दी गई सामग्री का उपयोग किया जाए तो शायद बहुत सारे स्कूल चित्रकला का इंतजाम कर सकें।

- कोयले के टुकड़े, चाक, बत्ती गेरू और गौरा पत्थरा;
- रंगों के अन्य स्रोत जो स्थानीय रूप से उपलब्ध हों (जैसे नवरात्र के अवसर पर लड़कियां ईंट को पीसकर लाल रंग बनाती हैं, पलाश के फूलों से पीला रंग बनाया जा सकता है।);
- पुराने अखबार, इस्तेमाल किया हुआ कागज, पुरानी कॉपियां या कोई अन्य कागज;
- प्लास्टिक के कप या डिब्बे।

इनमें से अधिकांश चीजों का संग्रह अध्यापक धीरे धीरे कुछ वर्षों के दौरान कर सकता है। इस सूची में जो एक चीज शामिल नहीं की गई है वह है ब्रश। यदि बच्चे सूखे रंगों का प्रयोग करें तो ब्रश की कोई जरूरत नहीं है। पर यदि अध्यापक चाहता है कि बच्चे रंगों को पानी की मदद से मिलाएं तो उसे मोटे ब्रश प्राप्त करने होंगे। बहुत छोटे बच्चों के लिए रूई की सहायता से ब्रश बनाए जा सकते हैं, पर ऐसे ब्रशों को चलाना और उनकी देखरेख करना कठिन है। दूसरी तरफ यदि ठीक तरह के ब्रश एक बार खरीद लिए जाएं और उन्हें हर बार इस्तेमाल करके सावधानी से धो लिया जाए तो

तस्वीरें बनाने के लिए तमाम व्यवस्था कौन करेगा?
बच्चों को कागज कौन देगा, रंग कौन मिलाएगा, जब रंगीन पानी से भरा गिलास लुढ़क जाए तो फर्श कौन साफ करेगा? ये सारे काम खुद करने वाला और बच्चों से कोई मदद न लेने वाला अध्यापक संभव है, जल्दी ही थक जाए और कुद निराशा महसूस करने लगे। हो सकता है, वह चित्रकला को बंद कर देने का दुखद निर्णय ले बैठे। इस संभावना को दूर करने के लिए हरेक अध्यापक को यह निश्चय कर लेना चाहिए कि कागज फैलाने, रंगों में पानी मिलाने, चित्र बन जाने पर उन्हें इकट्ठा करने और सारे ब्रश धो के रखने के काम में वह हरेक बच्चे की मदद लेगा। यह प्रशिक्षण बच्चों की शिक्षा का ही एक अंग है।

वे लंबे समय तक चलेंगे।

बच्चे अपने चित्रों में बनाएंगे क्या? संवाद और अभिव्यक्ति की इच्छा के विकास में इस प्रश्न का केन्द्रीय महत्व है। इस मामले में भी आज की स्थिति को समझकर उससे हटना है। ऐसे अधिकांश स्कूलों में जहां चित्रकारी होती है, बच्चों को कमल का फूल, पतंग, केला या ऐसा ही कोई अन्य रूढ़ विषय चित्र

बनाने के लिए दे दिया जाता है। कमल का फूल बनाना कोई गलत काम नहीं है, गलत यह है कि पांच वर्ष के बच्चे को अध्यापक बताए कि उसे क्या बनाना चाहिए।

अध्यापक को अच्छी तरह मालूम होता है कि कक्षा में हर समय उसी की चलती है। वह जो भी कहेगा, बच्चे उसे एक आदेश की तरह लेंगे (चाहे वे आदेश का पालन करें या न करें)। इसलिए यदि वह बच्चे से एक निश्चित चीज, जैसे केला, बनाने को कहे तो बच्चा इसे एक आदेश मानेगा। इस आदेश से वह समझेगा कि :

- अध्यापक को यह मालूम है कि मुझे अपने चित्रों में क्या बनाना है;
- चित्रकारी मेरे लिए स्वयं की अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं है;
- मेरा बनाया केला अध्यापक को भी केले के रूप में मान्य हो, तभी मेरी सफलता है।

नर्सरी और प्राइमरी स्कूलों में यह एक आम दृश्य होता है कि बच्चे पतली पेंसिलों को बड़ी मुश्किल से पकड़कर अध्यापक के आदेश का पालन करने के लिए कमल का फूल या केला बना रहे हैं और उसे संतोषपूर्वक बना पाने की असमर्थता के कारण बुरी तरह निराश हो रहे हैं। प्राइमरी स्कूलों में ब्रश भले न हों, पर बहुतेरे स्कूलों की यह मांग रहती है कि उनमें रबड़ अवश्य होने चाहिए। रबड़ को बच्चे परिपूर्णता हासिल करने के औजार की तरह इस्तेमाल करते हैं, वे एक बार केला बनाते हैं, फिर उसे मिटाते हैं, क्योंकि उन्हें लगता है कि वह ठीक नहीं बना उसे वे फिर बनाते हैं और फिर मिटाते हैं– जब तक कागज फट नहीं जाता और अध्यापक झुंझला नहीं जाता। इस प्रक्रिया में उंगलियों के संचालन का अभ्यास हो जाता है (जो निश्चय ही लिखने की दिशा में एक कदम है) पर अपनी कोई बात दूसरों तक पहुंचाने का संतोष नहीं मिल पाता। इस कारण पूरी गतिविधि फिजूल और नुकसानदेह बन जाती है।

चित्रकारी बच्चों के समग्र विकास में, और विशेषकर भाषा के प्रयोग और लेखन में, योग दे सकती है, बशर्तें कि बच्चे को चित्र माध्यम में पैठने को पूरी तरह आजाद छोड़ दिया जाए। यदि आप तीन–चार वर्ष के बच्चों के साथ काम कर रहे हैं तो एक अध्यापक के रूप में आपका मुख्य जिम्मा कागज और रंग उपलब्ध कराना और फिर बच्चे का काम पूरा होने तक धीरज रखना है। हमारे देश में अध्यापक से निर्देश लेने की परंपरा रही है, इसलिए बहुत से बच्चे आपसे पूछेंगे कि वे क्या बनाएं या कैसे बनाएं। **अध्यापक से निर्देश मांगने की जगह स्वयं अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए चित्र माध्यम का आनंदपूर्वक उपयोग करने की आदत आसानी से नहीं पड़ेगी।** ऐसी आदत तभी पड़ सकती है जब अध्यापक सब्र रखे, प्रोत्साहन दे और अपना लक्ष्य जानता हो।

रंगों के साथ चित्रकारी हाथों का संचालन विकसित करने का एकमात्र साधन नहीं है। कई अन्य गतिविधियां इस उद्देश्य में सहयोग दे सकती हैं, जैसे एक बर्तन से दूसरे बर्तन में पानी उंड़ेलना, बीजों (खासकर दानों, जैसे राजमा, चना, लोबिया) को अलग अलग करना, चीजें उठाना, उन्हें वापस रखना, चीजों को छूकर उनके आकार का अनुभव करना। कई लोग सोचते हैं कि ऐसी गतिविधियां तो अधिकांश घरों में प्रायः होती ही होंगी। दुर्भाग्यवश यह सब घरों में होता है। कई घरों में (और इनमें गरीब और मध्यवर्गीय दोनों किस्म के घर शामिल हैं) बच्चों को चीजें छूने की मनाही रहती है। ऐसी चीज जो टूट सकती है, बच्चों की पहुंच से दूर रखी जाती है। इस तरह बच्चे किसी चीज को सावधानीपूर्वक उठाने, रखने के अनुभव से वंचित रह जाते हैं। बहुत बड़ी संख्या में बच्चे ऐसे बुनियादी अनुभव नहीं कर पाते जो उनके हाथों को हो चुकने चाहिए थे। इस अभाव का असर लिखने के कौशल पर भले ही अप्रत्यक्ष रूप से पड़े, पड़ता अवश्य है। जो अध्यापक इस अभाव को दूर कर सकने वाली गतिविधियां आयोजित करने की जहमत नहीं उठाता, उसे

लिखने का कौशल सिखाने में गंभीर दिक्कतों का सामना करना पड़ सकता है। चित्रकारी इन दिक्कतों को दूर करने का एक उम्दा साधन है।

लिखने की शुरुआत

यह निर्णय हर अध्यापक को स्वयं लेना होगा कि वह किस उम्र या अवसर से लिखना सिखाने की शुरुआत करे। निर्णय का आधार बच्चों की प्रगति की समीक्षा ही हो सकती है। यह भी देख लीजिए कि बच्चों ने चित्रकारी के जरिए हाथों और उंगलियों के संचालन में पर्याप्त लचीलापन और नियंत्रण हासिल कर लिया है या नहीं। जो बच्चे किताबों या पढ़ने की अन्य किसी सामग्री के संपर्क में रहे हैं, संभव है, वे खुद ही लिखने के अवसरों की मांग करें। इससे अध्यापक का काम आसान हो जाएगा। **जब बच्चे स्वयं कोई मांग करते हैं तो यह इस बात का पक्का संकेत है कि वे उस काम को करना चाहते हैं।** हो सकता है कि वह काम बहुत कठिन सिद्ध हो और इसलिए वे अपनी मांग कुछ समय बाद वापस ले लें, पर वह फिर कुछ दिन बाद अवश्य उठेगी। बच्चे कई कौशलों पर ठीक इसी तरह अधिकार प्राप्त करते हैं। और लिखना कोई अलग चीज नहीं है।

जब आप लिखने का शिक्षण शुरू करने का निर्णय लें तो सबसे पहले बच्चों से पूछें कि वे आपसे क्या लिखवाना चाहेंगे? यदि आप 'लिखना' क्रिया का इस्तेमाल अपनी बातचीत में करते रहे हैं तो उन्हें आपकी बात समझने में कोई दिक्कत नहीं होगी। पर यदि उन्हें यह नहीं मालूम है कि आप क्या चाहते हैं तो आपको कुछ अलग ढंग अपनाना पड़ेगा। आप उनसे कुछ चीजों के नाम बताने को कहें– जैसे उनकी पसंद के जानवर, या उनकी पसंद की खाने की चीजें, चलने वाली चीजें, ऐसी चीजे जिनसे उन्हें डर लगता है, आदि। बच्चों को बताइए कि आप हर बच्चे की कापी में या फर्श पर एक शब्द लिखेंगे, अतः हर बच्चा आपको कोई भिन्न शब्द बताए। बच्चों से कहिए कि वे इस शब्द को उसके ठीक नीचे उतारें या उसी पर ट्रेस करें।

लिखना सीखने के लिए फर्श एक बढ़िया साधन है। आप उस पर बड़े–बड़े अक्षरों में लिख सकते हैं। फर्श पर लिखना सस्ता भी है क्योंकि आपको सिर्फ चाक या कोयला या कोई स्थानीय रंग खरीदना होगा। परेशानी सिर्फ यह है कि फर्श को बाद में धोना पड़ेगा। इस काम में यदि आप बच्चों को भागीदार बना सकें तो लिखना सीखने के लिए उनकी प्रेरणा दूनी हो जाएगी। कुछ माता–पिता फर्श की धुलाई में बच्चों की साझेदारी से नाराज हो सकते हैं। यह अध्यापक को ही सोचना है कि वो उनकी नाराजगी से कैसे पेश आए।

लिखना शुरू करने के लिए ये एकमात्र तरीके नहीं हैं। बच्चों के साथ काम करने वाले लोगों ने कई अन्य विधियों के बारे में सुना होगा। सबसे प्रचलित विधि वर्णमाला के अक्षर लिखना सिखाने की है। चाहे हम ब्लैकबोर्ड पर बड़े आकार में वर्णमाला लिखें या गत्ते के अक्षर काटें या बच्चों से प्राइमर की नकल करने को कहें, एक बात हमें अवश्य याद रखनी चाहिए– यह कि **वर्णमाला में कोई अर्थ नहीं होता।** इसलिए वर्णमाला पर अत्यधिक जोर देना लेखन को सार्थक संवाद का माध्यम समझने से बच्चों को निरुत्साहित कर सकता है। पर जब एक बार अध्यापक शब्दों और अर्थ के बीच कई मजबूत पुल बना चुका हो तो वर्णमाला का परिचय बहुत उपयोगी हो सकता हो सकता है। वर्णमाला कक्षा की एक दीवार पर लटकी रहे या एक लंबी पट्टी के रूप में चिपका दी गई हो तो वह पढ़ना लिखना सीखने की प्रक्रिया में सहायक स्रोत की भूमिका निभा सकती है। **यांत्रिक ढंग से वर्णमाला सिखाने के कई विकल्प हैं।** उदाहरण के लिए आप शब्दों की एक लंबी सूची बनाकर रख लीजिए और उनमें से उन थोड़े से शब्दों को बच्चों के सामने रखिए जिनका शुरू का अक्षर एक हो। बच्चों का ध्यान इस बात की ओर खींचकर उनसे कहिए कि वे ऐसे अन्य अक्षर ढूँढें जो

दिए गए शब्दों में एक से अधिक बार आए हों। हर बार इस गतिविधि के समय पिछली बार के शब्दों को दुहराइए। धीरे धीरे सामान्य व्यवहार के शब्दों का भंडार इस तरह बढ़ने पर आप उन्हें विभिन्न विशेषताओं (जैसे लंबाई, अर्थ आदि) के आधार पर वर्गीकृत कीजिए और एक एक वर्ग के शब्दों को बड़े कागज पर लिखकर दीवार पर चिपका दीजिए। कागज ऐसी जगह चिपकाइए जहाँ से वे सबको साफ दिख सके। यह बात मैं कहने लायक भी न समझता यदि मैं ऐसे कई स्कूलों में न गया होता जहां तस्वीरें या चार्ट बच्चों की पहुंच से बहुत ऊपर टंगे रहते हैं ऐसी सामग्री जो बच्चों से बहुत ऊंचे पर टांगी गई हो, न केवल व्यर्थ जाती है बल्कि बच्चों का अपमान भी करती है।

शुरुआत के बाद

लिखने के शिक्षण की असली चुनौती तब शुरू होती है जब बच्चे लिखने के बुनियादी कौशल में दक्ष हो चुके हों। चुनौती इन दो बातों का विकास करने की हैः

1. श्रोता बुद्धि
2. अपनी बात पहुंचाने यानी संप्रेषण की इच्छा

इन दो उद्देश्यों को पाने के लिए अध्यापक को हर छोटी गतिविधि का आयोजन करते समय दूरगामी परिप्रेक्ष्य सामने रखना होगा। यहां एक बार फिर याद रखना जरूरी है कि श्रोता–बुद्धि और संप्रेषण की इच्छा का संबंध लिखने और बातचीत दोनों से है। इसलिए बातचीत की गतिविधियों का लाभ लेखन को मिलेगा और लेखन की गतिविधियों का लाभ बातचीत को।

श्रोता बुद्धि के लिए जरूरी है कि लिखते वक्त हमारे मन में कोई निश्चित व्यक्ति हो। संप्रेषण की इच्छा के लिए जरूरी है कि लिखने का कोई निश्चित उद्देश्य हमारे सामने हो। बच्चों का लेखन–चाहे वह शब्दों में हो, वाक्यों या छोटी कहानी में हो– प्रायः अध्यापक के लिए होता है। श्रोता बुद्धि के विस्तार के लिए अध्यापक अलग अलग गतिविधियों में अलग अलग 'श्रोता' (या पाठक) सुझा सकता है, जैसे अगली सीट पर बैठा बच्चा, कक्षा का कोई अन्य सदस्य, किसी दूसरी कक्षा के बच्चे माता–पिता। आधी छुट्टी में स्कूल आने वाला कुत्ता, बस, पड़ोसी गांव या शहर के बच्चे– इस तरह की कल्पनाशील संभावनाएं लिखने के अभ्यास में जान डाल सकती हैं। बच्चे जेसे जैसे बड़े होंगे, उनकी श्रोता–बुद्धि का विस्तार होगा और उसमें समाज के विभिन्न काम धंधों में लगे लोग शामिल होते जाएंगे।

अध्यापक को भाषा के उन विशेष विन्यासों को पहचानने की कोशिश करनी चाहिए जिनका प्रयोग बच्चा किसी निश्चित पाठक तक पहुंचने के लिए कर रहा है। इस तरह के प्रयोगों को बढ़ावा देना अध्यापक की एक विशेष जिम्मेदारी है। उदाहरण के लिए यदि हम बच्चों से यह बताने को कहें कि फलां कुत्ता उन्हें क्यों अच्छा लगता है तो उन्हें कोई ऐसी बात कहने के लिए प्रोत्साहित करना जरूरी है जो कुत्ते की समझ में आ सके। कुत्ते से कहीं जाने वाली बात की विषयवस्तु और शैली किसी दोस्त से कही जा सकने वाली बात से भिन्न होगी। कुत्ते से हम कह सकते हैं, 'रोटी खा लो।' दोस्त से हम कहेंगे, चलो, अब खाना खा लें। किसी निश्चित श्रोता या पाठक के लिए विषयवस्तु का चुनाव शब्दों, मुहावरों और वाक्य की संरचना पर असर डालता है। पर हमें शब्दों और संरचनाओं को अलग से सिखाने की जरूरत नहीं है। जब बच्चों को तरह तरह के पाठकों के लिए लिखने का मौका मिलेगा तो वे अपने शब्दों और संरचनाओं की अर्थवत्ता स्वयं समझने लगेंगे। कहने के लिए बच्चे के पास कुछ है या नहीं, यह बात बच्चे के व्यक्तित्व के कई पहलुओं पर निर्भर है। सबसे महत्वपूर्ण पहलू है अपने दुष्टिकोण में विश्वास के विकास की संभावना बहुत कम है। ऐसा बच्चा कुछ कहने के लिए उत्साहित महसूस करे यह भी जरा मुश्किल है। जब ऐसे बच्चे से कुछ कहने

या लिखने के लिए कहा जाता है तो प्रायः उसका उत्तर होगा कि 'मुझे कुछ नहीं कहना है।' बच्चा ठीक ये शब्द भले न कहे, पर वह इस बात को व्यक्त कर देगा कि उसके पास कहने को कुछ नहीं है। यदि आप ऐसे बच्चों के साथ काम कर रहे हों तो आपके सामने दोगुनी चुनौती है क्योंकि आपको सबसे पहले उनके आत्मविश्वास की–दुनिया के प्रति अपने नजरिए की वैधता की पुनर्रचना करनी होगी।

अध्यापक की प्रतिक्रिया

एक बार बच्चे लिखना सीख लें, इसके बाद उनकी प्रगति बहुत कुछ अध्यापक की प्रतिक्रियाओं पर निर्भर होती है। हमारे देश के बहुत–से प्राइमरी स्कूलों में अध्यापक की प्रतिक्रिया के तौर पर बच्चे को सिर्फ अपनी व्याकरण या हिज्जे की गलतियों के सुधार मिलते हैं। बच्चों की कापियां लाल स्याही से किए गए सुधारों से रंगी रहती हैं। दूसरी तरफ जब बच्चा हर चीज ठीक लिखकर लाता है तो अध्यापक केवल सही या चिह्न बनाकर दस्तखत कर देता है। ये दोनों ही प्रतिक्रियाएं अधूरी और हानिप्रद हैं। बच्चे की गलतियां सुधारने या सही का चिह्न लगाने के अलावा अध्यापक को बच्चे के लेखन की प्रतिक्रिया में कुछ न कुछ स्वयं भी लिखना चाहिए। उसे पढ़कर क्या आपको किसी बात की याद आई? यदि बच्चे का लिखा अच्छा है तो क्या? इस विषय पर और कुछ क्या लिखा जा सकता था? क्या किसी ने एकदम भिन्न ढंग से लिखा है? लेखन पर अपनी प्रतिक्रिया देने के ऐसे सैकड़ों तरीके हो सकते हैं। जिस तरह बच्चे से बात करते समय आप उसकी बात को विस्तार देते हैं, इसी तरह बच्चे का लेखन पढ़कर आपको उसे विस्तार देना है। बच्चे की कापी पर एक–दो वाक्य लिखकर आप उसे इस बात का प्रमाण देंगे कि आप लेखन को एक यांत्रिक क्रिया नहीं, एक तरह का संवाद मानते हैं। आप भले व्याकरण का अभ्यास देख रहे हों (और यह तो आपको अक्सर करना होगा), **आप कोई न कोई दिलचस्प और व्यक्तिगत बात संक्षेप में लिख सकते हैं। यह बात बच्चे के लिए आपके हस्ताक्षर से ज्यादा महत्वपूर्ण होगी।**

गलतियां सुधारने के लिए उन पर चिह्न लगाना काफी नहीं है। यदि आप गलतियों को सिर्फ पहचान कर उन पर लाल स्याही से निशान बना देते हैं तो आप बच्चे की कमजोरी के उदाहरणों को ही उजागर करते हैं। ज्यादा आवश्यक यह है कि जहां बच्चे को सफलता मिली है वहां उसे पहचानें और जहां गलती हुई है उसका विकल्प दें। गलती को पहचानने और ठीक करने में आप बच्चे की सक्रिय मदद भी ले सकते हैं। यदि आपको किसी शब्द के हिज्जे ठीक करने हैं तो सही हिज्जे लिखकर उस शब्द को तीन तरह के हिज्जों में लिख दीजिए और बच्चे से कहिए कि सही हिज्जे पहचानें यदि आप गलतियां पकड़ने में बच्चे को सक्रिय बनाते हैं तो उसमें अपने लेखन को समीक्षा की दृष्टि से देखने की क्षमता विकसित होगी।

कुछ गतिविधियां

एक

जानी–पहचानी चीजें

घर में रोज काम आने वाली चीजों और अन्य जानी–पहचानी चीजों की चर्चा बच्चों से कीजिए। बच्चों से कहिए कि बर्तन, कपड़े और गाड़ियां जैसे समूह–नामों के अंतर्गत आने वाली अलग अलग चीजों के नाम बताएं, जैसे बर्तन के अंतर्गत चम्मच, देगची, पतीली आदि। एक समूह में आने वाली चीजों की सूची बोर्ड पर बनाइए।

बच्चों को दो समूहों में बैठाइए। पहले समूह का हर बच्चा बोर्ड पर लिखी सूची में से कोई एक नाम अपनी कापी पर उतारेगा, जैसे कोई बच्चा लिखेगा–चम्मच, कोई लिखेगा–कड़ाही। दूसरे समूह के बच्चे एक एक करके कोई एक चीज, जिसका नाम बोर्ड पर दिया है, पहले समूह से मांगेगे। जिस भी बच्चे ने उस चीज का नाम अपनी कापी में नोट किया है, वह उसे मांगने वाले बच्चे के पास जाकर चीज का नाम लिखने में मदद करेगा।

दो

नामों का संग्रह

आप जहां कहीं भी रहते हैं वहां तरह तरह के नाम आपको दुकानों, बसों या मील के पत्थरों और दीवारों पर मिल जाएंगे। गांवों में दीवारों पर लिखे नारे या पोस्टर और विज्ञापनों में लिखी जानकारी भी काम आ सकती है।

बच्चों से कहिए कि वे घर से स्कूल के रास्ते में दिखने वाले नामों या संदेशों की सूची बनाएं। सारे नामों को ब्लैकबोर्ड पर लिख कर एक एक कर बच्चों से उनकी व्याख्या (यानी वह कहां लिखा है, उसका अर्थ क्या है) करवाइए।

तीन

शब्दपूर्ति

बच्चों के जोड़े बना दीजिए। एक बच्चा कोई शब्द लिखना शुरू करेगा, और दूसरा बच्चा उसे पूरा करेगा। वे तब तक अपनी बारी लेते जाएंगे जब तक दोनों 10 शब्द सफलतापूर्वक पूरे नहीं लिख लेते।

चार

सिर्फ एक शब्द

पांच पांच बच्चों के समूह बना दीजिए। हर समूह के पास एक कागज या कापी और एक पैंसिल होगी। हर टोली में एक बच्चे को 'नेता, यानी शुरू करने वाला नियुक्त कर दीजिए।

नेता अपने मन में कोई वाक्य सोचेगा पर कागज पर वह सिर्फ एक शब्द लिख कर कागज और पैंसिल अगले बच्चे को थमा देगा। यह बच्चा भी सिर्फ एक शब्द जोड़ेगा। यह शब्द ऐसा होना चाहिए जो पिछले शब्द से शुरू हुए वाक्य को आगे बढ़ाता हो। इस तरह कागज टोली में घूमता रहेगा जब तक वाक्य पूरा न हो जाए।

टोली का कोई भी सदस्य यह दावा कर सकता है कि वाक्य बीमार पड़ गया है, अतः उसे छोड़ दिया जाए। यदि बाकी बच्चे इस दावे से सहमत हो तो कागज नेता को वापस दे दिया जाएगा और वह एक नए वाक्य का पहला शब्द लिखेगा।

पांच

नक्शा बनाना

बच्चों से पूछिए कि वे घर कैसे पहुंचते हैं पहले उन्हें यह बताइए कि आप स्वयं कैसे घर पहुंचते हैं– रास्ते में पड़ने वाली जगहों और चीजों का संक्षेप में विवरण दीजिए।

जब सभी बच्चों को अपने घर का रास्ता बताने का मौका मिल चुका हो तब उनसे कहिए कि जो रास्ता उन्होंने अभी बताया है उसे एक नक्शा बनाकर दिखाएं। स्वयं अपने घर का रास्ता ब्लैकबोर्ड पर बनाकर दिखाइए। बच्चे जब अपने नक्शे बनाने में व्यस्त हो तो उनके पास जाकर नक्शे में दिखाई गई किसी एक चीज जैसे पेड़, दुकान, डाक का डिब्बा, का नाम नक्शे में लिख दीजिए। बच्चों से यह नाम नक्शे के नीचे उतारने के लिए कहिए।

अगली बार यह गतिविधि किसी और जगह जाने के रास्ते को लेकर कीजिए, जैसे मेरे दोस्त का घर, सब्जी मंडी, अस्पताल।

हर बार नक्शे में लिखने के लिए शब्दों की संख्या बढ़ाइए।

छह

इर्दगिर्द की जगहें

यह पिछली गतिविधि का विस्तार है लेकिन इसमें बच्चे अपने आसपास की जगहों के नक्शे बनाएंगे, न कि वहां जाने के रास्ते के।

उदाहरणतया

स्कूल का पिछवाड़ा

कक्षा का कमरा

पास स्थित तालाब या नदी

नक्शे में दिखाई गई किसी एक चीज का नाम उचित जगह पर लिख दीजिए। बच्चे से यही नक्शा फिर बनाने को कहिए और इस बार उसी से कहिए कि वह उस चीज को दिखाने की जगह उसका नाम नक्शे में लिखे।

सात

वहां पहुंचना

बच्चों से कहिए कि अपने बड़ों से आसपास के गांवों और शहरों के नाम पूछ कर आएं। इन नामों की सूची बोर्ड पर बनाइए और बच्चों से कहिए कि ये नाम उतार लें।

अब इन नामों को दिशा के अनुसार रखकर बोर्ड पर एक सरल नक्शा बनाइए। नाम बच्चों में बांटकर बच्चों को नक्शे के अनुसार बैठाइए। दिशा और दूरी को लेकर एक संक्षिप्त संवाद रचिए।

उदाहरणतया

'मैं झांसी जा रहा हूं।'

'झांसी कहां है?'

'उत्तर में।'

'कितनी दूर...'

दूरी और दिशा से संबंधित शब्द लिखना सिखाइए।

आठ

तस्वीर का वर्णन

'बात करना' अध्याय में दी गई आठवीं गतिविधि देखिए और उसे कुछ बड़े बच्चों के बीच आयोजित कीजिए। प्रश्नों के जवाब बताने की जगह लिखने को कहिए।

विज्ञापनों, पत्रिकाओं आदि के साथ साथ बच्चों द्वारा स्वयं बनाई गई तस्वीरें इस्तेमाल कीजिए। पहले पूछिए कि चित्र में क्या दिखाया गया है, फिर और जटिल प्रश्नों की तरफ़ जाइए।

नौ

आवाज़ों की सूची

पहली बार इस गतिविधि को आयोजित करते समय चार–पांच बड़े बच्चों को शामिल कर लीजिए। ये बच्चे 'रिकार्डर' का काम करेंगे।

बच्चों को पांच या छह–छह की टोलियों में बांट दीजिए। हर टोली को अपने सदस्यों द्वारा पहचानी गई सारी आवाजों की सूची बनानी है। हर टोली थोड़ा चल–फिर सकती है और बारी बारी से कुछ मिनट के लिए दरवाजे पर खड़े होकर या स्कूल के पीछे जाकर वहां होती हुई आवाजें सुन सकती है। जैसे ही कोई सदस्य एक नई आवाज पहचाने, वह रिकार्डर से उसे दर्ज करने को कहे। आवाजें कुछ भी हो सकती हैं, जैसे दरवाजे की चूं, पत्तियों का हिलना आदि।

सारी टोलियों के वापस आने पर हर टोली का रिकार्डर अपनी सूची पढ़कर सुनाएगा। जिस सदस्य ने जो आवाजें सूची में शामिल कराई हो, उन्हें वह सूची में पहचाने और अलग कागज पर उतारे।

दस

कविता बनाना

पांच पांच की टोलियां बनाइए। हर टोली को एक कविता की चार पंक्तियां दे दीजिए और कहिए कि टोली के सदस्य चार पंक्तियां और जोड़ें। हर टोली सोचने–बहस करने को पंद्रह बीस मिनट के लिए कुछ दूर एकांत में जा सकती है।

सबक–VII
इम्तहान/आकलन

पाठ 1. Handbook NCERT (आकलन) Hindi – किस बारे में आकलन – आकलन कब किया जाना चाहिए – आकलन कैसे (आकलन के चरण) – प्राथमिक कक्षाओं में आकलन – आकलन के बिंदु – आकलन के तरीके – कुछ गतिविधियाँ – आकलन रिपोर्ट का नमूना।

पाठ 2. मूल्यांकन (एन.सी.एफ.) : मूल्यांकन का प्रयोजन क्या नहीं है – आकलन का मकसद – शिक्षण के क्रम में ही आकलन – क्या अंकों में नहीं जाँचा जा सकता – आकलन की रूपरेखा और उसका संचालन – स्वआकलन और पृष्ठपोषण – नयी सोच की ज़रूरत।

पाठ 3. मूल्यांकन क्यों? : छात्र का मूल्यांकन और समाज – मूल्यांकन के दूसरे उद्देश्य – अध्यापक द्वारा मूल्यांकन – सहायता और प्रोत्साहन – मूल्यांकन से अपेक्षाएँ।

शादी तय करने के लिए आये दो परिवार उदास बैठे थे। एक मित्र ने आकर यह देखा, और पूछा क्या बात हुई? यह शादी नहीं हो सकती, बताया गया। क्यों? लड़का–लड़की में कोई नुक्स है? जन्म–पत्री नहीं मिलती? जवाब आया, नहीं वो सब ठीक ठाक है। फिर क्या? क्या दान–दहेज में कोई अड़चन है? जवाब आया, नहीं, दोनों परिवार दहेज के खिलाफ हैं। फिर बात क्या है? जवाब आया, दोनों बी.ए. पास है, मगर लड़की फस्ट डिविज़न है, लड़का थर्ड।

बात असल में मज़ाक की नहीं है। पास, फेल कम्पार्टमेंट, फस्ट, सेकंड, थर्ड डिविजन, ये पूरे जीवन भर के लिए छापे लग जाते हैं। दस या बारह साल की पढ़ाई के बाद एक बच्चा तीन घंटे के लिए एक परीक्षा में कुछ प्रश्नों के जवाब लिखता है, और उन जवाबों पर उसे कुछ नम्बर दिये जाते हैं– जो जीवन भर के उसका दिमागी दर्जा तय कर देते हैं। जाहिर है, किसी बच्चे की काबिलियत मापने का यह एक भयानक तरीका है, और लगभग सभी इसकी भयानकता के खिलाफ हैं। हाल में ऐसी बातचीत है कि नम्बर के बजाये 5 या 7 ग्रेड दिये जाएंगे। ठीक है। इससे भयानकता कुछ कम ज़रूर होगी। मगर खत्म नहीं होगी – तीन डिविज़नों की जगह, पाँच या सात डिविज़न हो जाएँगे।

इस भयानकता से घबराकर कुछ शिक्षाविद् इस बात की वकालत करने लगे हैं कि परीक्षाएँ ही नहीं ली जाएँ, जाँच का कोई दर्जेवार पैमाना ही न हो। यह बात दिल को ज़रूर अच्छी लगती है, मगर कुछ सोचने के बाद दिमाग इसे मानने से हिचकिचाता है। इतनी भयानकता के बावजूद, लगभग हज़ार वर्षों से, धरती के लगभग सभी मुल्कों में, इंसान अपने प्यारे बच्चों को इस भयानकता में झोंकने के लिए मजबूर पाते हैं– इस बात की कोई गहरी वजह ज़रूर होगी।

क्या वजह है? जाँच/परीक्षाएँ क्यों होनी चाहिए? परीक्षा किसकी होती है – बच्चों की, टीचरों की, हेडमास्टरों की, एन.सी.ई.आर.टी/एस.सी.ई.आर.टी. की, शिक्षा बोर्डों की, शिक्षा मंत्री की, प्रदेश की जनता की, देश की?

इन सब की? समाज शिक्षा में अपना पैसा लगाता है, जैसा चिकित्सा में, यातायात में, सेना में, खेलों में, आदि। बेशक, समाज चाहेगा कि यह पैसे बेहतर से बेहतर तरीके से इस्तेमाल किये जाएँ। इसमें किसकों एतराज़ हो सकता है? लेकिन, क्या मौजूदा परीक्षण/आकलन यह जाँच ठीक से कर रहा है? लगभग सभी मानेंगे कि सुधार की गुँजाइश है। शिक्षा प्रणाली को थर्ड–डिविज़न दिया जाएगा।

तो क्या होने चाहिए बेहतर इम्तहान/आकलन के तरीके? जिससे बच्चे बेहतर तरीके से पढ़–लिख पाएँ और जीवन भर के बदनामी के बोझ से भी निजात पाएँ? इन सवालों के कुछ जवाब हासिल हैं। पढ़ के देखो।

आकलन (NCERT Handbook)

प्रस्तावना

हम सभी बच्चों के बारे में चिंतित हैं और इसीलिए हम सबका सरोकार इस बात से है कि हर स्कूल एक ऐसी जगह बने जहाँ हर बच्चे को सीखने के मौके मिलें। बच्चों की शिक्षा से जुड़े सभी लोग, विशेषकर अध्यापक इस संबंध में अपने आपको बहुत ही जिम्मेदार मानते हैं। ऐसा उनकी इच्छाओं से जाहिर होता है कि वे सभी बच्चों को उनके गुण और रुचियों के विकास में मदद करने के लिए तत्पर हैं। वे उन्हें विश्वास के साथ अपनी ज़िंदगी का सामना करने के लिए तैयार करना चाहते हैं। अध्यापकों का काफ़ी समय तो इसी बात का पता लगाने में निकल जाता है कि बच्चे स्कूल में कैसा कर पा रहे हैं। बहुत से अध्यापक आकलन को अपने स्कूल की रोज़मर्रा की महत्त्वपूर्ण गतिविधि के रूप में देखते हैं। अध्यापक विद्यालय में दैनिक आधार पर जो कुछ भी करते हैं, बच्चों का आकलन उनका एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा बन गया है। ऐसा क्यों है?

अध्यापक इसके लिए बहुत से कारण बताते हैं– एक महत्वपूर्ण कारण यह जानना है कि बच्चों को जो कुछ भी सीखना चाहिए, क्या वे सीख पा रहे हैं? दूसरी वजह एक अवधि विशेष में बच्चों की प्रगति के बारे में भी जानकारी प्राप्त करना है। जो भी हो तीसरी वजह, जिसकों सिर्फ़ अध्यापक ही नहीं बल्कि हम सभी बहुत ही महत्त्वपूर्ण मानते हैं, वह यह पता लगाना है कि बच्चे की भिन्न–भिन्न विषय/क्षेत्रों में क्या उपलब्धियाँ रहीं। ऐसा शायद इसलिए कि हम बच्चों को 'अच्छी क्वालिटी' (गुणवत्ता) वाली शिक्षा देना चाहते हैं और महसूस करते हैं कि ऐसा तभी संभव हो सकता है जब टेस्ट और परीक्षाओं के ज़रिए पढ़ाए गए विषयों में बच्चों की उपलब्धियों का मूल्यांकन किया जाए। परीक्षणों (टेस्टों) का अपना एक उद्देश्य है पर यदि हम वास्तव में बच्चों को बेहतर तरीके से सीखने में मदद करना चाहते हैं तो हमें यह बात खास तौर से समझने की ज़रूरत है कि टेस्ट/परीक्षाओं में बच्चे द्वारा प्राप्त किए गए अंक और ग्रेड बच्चों की प्रगति या सीखने के बारे में क्या कुछ विशेष बता पाते हैं।

आकलन–किसलिए?

आइए, नीचे दिए गए उदाहरण पर नज़र डालते हैं, एक अध्यापक होने के नाते अपने विद्यालय में इस तरह के हालातों से आपका बहुत बार सामना हुआ होगा।

एक प्राथमिक विद्यालय में कक्षा चार के बच्चों को पर्यावरण अध्ययन के अंतर्गत उनकी पाठ्यपुस्तक के जल से संबंधित अध्याय पर आधारित एक टेस्ट दिया गया। तीस बच्चों में से अधिकतर बच्चों ने 10 में से 6 अंक प्राप्त किए हैं। दो बच्चे जिनमें से मैथिली के आठ और रमन के 10 में से 3 अंक आए हैं। अध्यापक ने कक्षा में जब अंक बताए, सभी बच्चे रमन के अंक सुनकर हँसे और उसका मज़ाक भी बनाया क्योंकि उसके अंक सबसे कम थे। उस दिन के बाद से रमन ने कभी नहीं चाहा कि वह स्कूल जाए। उसके माता–पिता के लिए उसे स्कूल जाने के लिए तैयार करना, मनाना बहुत ही कठिन था। ये अंक अध्यापक, माता–पिता या मैथिली और रमन की शिक्षा से सरोकार रखनेवाले किसी को भी क्या बताना चाहते हैं? क्या ये अंक यह बता पाएँगे कि दोनों बच्चों ने क्या और कैसे सीखा और वे दोनों क्या–क्या कर सकते हैं? क्या ये अंक अध्यापकों को बता पाएँगे कि मैथिली और रमन की ज़रूरतों के आधार पर उनके लिए अध्यापन और सीखने की प्रक्रिया में कैसे सुधार लाया जाए?

क्या ये अंक मैथिली और रमन दोनों बच्चों को उनके सीखने के संबंध में किसी तरह का संकेत दे पाएँगे कि आगे किस तरह का सुधार लाया जा सके? बच्चों द्वारा प्राप्त किए गए अंक क्या किसी भी तरह से उनके माता–पिता या समुदाय के सदस्यों को उनकी प्रगति और सीखने के बारे में कोई उपयोगी रिपोर्ट या पृष्ठपोषण दे पाएँगे कि दोनों बच्चों में से कौन क्या जानता है?

दुर्भाग्य से हो क्या रहा है कि इस तरह के मूल्यांकन से कुछ बच्चों को असुरक्षा, तनाव, चिंता और अपमान जैसी स्थितियों का सामना करना पड़ता है जैसा कि रमन के साथ भी हुआ। मूल्यांकन से सिर्फ़ यही पता लगता है कि बच्चे क्या नहीं जानते बजाए इसके कि बच्चे क्या जानते हैं और क्या कर सकते हैं? इस तरह का मूल्यांकन पाठ्यपुस्तकों में पढ़ाई गई विषय वस्तु और रटंत प्रणाली द्वारा प्राप्त की गई जानकारी/ज्ञान का आकलन करने तक ही केंद्रित है। अधिकांशतः यह बच्चों में तुलना करने जैसे भाव रखता है और अवांछनीय प्रतिस्पर्धा को जन्म देता है, यहाँ तक कि मात्र आधे अंक के लिए भी क्या अध्यापक होने के नाते हम चाहते हैं कि सभी बच्चे सीखें? यदि ऐसा है तो आकलन के ज़रिए हम उनमें क्या खोजते हैं?

आप इस सच्चाई को तो ज़रूर स्वीकार करेंगे कि इस तरह की स्थितियाँ विद्यालयों में अकसर देखी जाती हैं। स्थितियाँ कुछ महत्त्वपूर्ण सवालों की तरफ़ हमारा ध्यान खींचती हैं– हम वास्तव में किस चीज का आकलन कर रहे हैं? क्या टेस्टों/परीक्षाओं के अतिरिक्त बच्चों का आकलन करने के कुछ और तरीके भी हो सकते हैं? क्या अंकों और ग्रेड के रूप में रिपोर्ट करना पर्याप्त है? आकलन संबंधी सूचनाएँ किस तरह की मदद करती हैं? हम अपने काम को कठिन बनाए बगैर बच्चों को सीखने के बारे में सूचनाएँ किस तरह की इकट्ठी कर सकते हैं? आखिरी सवाल बहुत ही महत्त्वपूर्ण है क्योंकि पूरे देश भर में अध्यापक रोज़ाना ही बहुत–सी समस्याओं का सामना करते हैं जैसे– विद्यार्थियों की अधिक संख्या, एक साथ दो–तीन या कभी–कभी तो इससे भी अधिक कक्षाओं को एक साथ बैठाकर पढ़ाना, भरी कक्षाएँ और विद्यालय में सुविधाओं का अभाव। इसके साथ–साथ उन्हें ऐसे बच्चों को पढ़ाना होता है जो भिन्न–भिन्न पृष्ठभूमि से आते हैं, भिन्न–भिन्न भाषाएँ बोलते हैं और जिनकी विशेष आवश्यकताएँ भी होती हैं। अध्यापकों और उन सभी में, जो चाहते हैं कि बच्चे अपनी अधिकतम योग्यता के अनुसार सीखें, अधिक समय, धैर्य और समझ की ज़रूरत है। इस तरह की स्थितियों में अध्यापकों की मदद किस तरह से की जा सकती है।

- सभी बच्चे सीख सकते हैं यदि उन्हें अपनी ही गति से सीखने दिया जाए और सीखने के अपने ही तरीकों का अनुसरण करने दिया जाए,
- बच्चे स्वाभाविक तौर पर खेल के माध्यम से सीखते हैं। वे एक–दूसरे से बहुत अच्छी तरह सीखते हैं जब वे वास्तव में किसी काम को करने की प्रक्रिया से जुड़े होते हैं,
- सीखना एक सतत प्रक्रिया है इसलिए 'सीखना' सिर्फ़ विद्यालय में ही नहीं होता। अतः कक्षा में सीखने की प्रक्रिया को घर में जो कुछ भी हो रहा है उससे जोड़ा जाना जरूरी है,
- बच्चे अपने ज्ञान का निर्माण स्वतः करते हैं और केवल तभी नहीं सीखते, जब शिक्षक पढ़ाते हैं। प्राथमिक स्तर पर बच्चे ठोस अनुभवों, खेल, खोजबीन, बहुत–सी चीज़ों के साथ परीक्षण और बहुत–सी गतिविधियों को वास्तविक रूप से करते हुए बेहतर और अधिक आसानी से सीखते हैं,
- बच्चों के सीखने की दिशा एक सीधी रेखा में नहीं चलती, वह घुमावदार है यानी कि वे पहले सीखी गई अवधारणाओं तक पुनः पहुँचते हैं और इससे उनकी समझ बेहतर ही होती है,

- सीखने के कार्य से जुड़ी हुई है, बच्चों द्वारा अवलोकित और महसूस किए गए तथ्यों से जुड़ाव बना पाने की प्रक्रिया। जो कुछ भी नया सीखा जा रहा है वह दिए जा रहे तथ्यों और सूचनाओं पर ही आधारित नहीं होता पर उन सबसे भी जुड़ा हुआ होता है और उस सबसे जोड़ा जा सकता है जो विद्यालय, घर या कहीं भी हासिल किया गया होगा। इसलिए सीखना सीधी रेखा में कभी भी नहीं हो सकता है।

- सीखना 'समग्रता' में ही संभव है न कि तब जब ज्ञान को छोटे–छोटे टुकड़ों में तोड़ा या विषयों में बाँटा जाए। इसलिए सीखने के लिए समेकित विधि ही बेहतर है,

- यह देखा जाता है कि प्राथमिक स्तर पर बच्चे एक–दूसरे के साथ अंतःक्रिया (खेलते–कूदते, हँसते–गाते) करते हुए बेहतर तरीके से सीख पाते हैं,

- सीखने के दौरान बच्चे बहुत–सी गलतियाँ भी करते हैं जो उनके सीखने की प्रक्रिया का अभिन्न अंग हैं। गलतियाँ करके ही वे सीखते हैं।

बच्चों का आकलन क्यों किया जाना चाहिए?

हम सभी बच्चों के सीखने और अच्छी शिक्षा पाने को लेकर चिंतित है, प्राथमिक कक्षाओं में आकलन क्यों किया जाना चाहिए इसके बहुत से कारण हैं। हम कुछ मुख्य कार्यों में नज़र डालते हैं। इनमें से कुछ आप पहले से ही जानते होंगे और कुछ तो सीखने–सिखाने की प्रक्रिया के दौरान इस्तेमाल भी करते होंगे। कुछ महत्वपूर्ण कार्य हैं–

- भिन्न–भिन्न विषयों में समय की एक अवधि विशेष में बच्चे की प्रगति और उसमें आनेवाले परिवर्तनों का पता लगाना,

- बच्चे की व्यक्तिगत और विशेष ज़रूरतों को पहचानना,

- अधिक उपयुक्त तरीकों के आधार पर अध्यापन और सीखने की स्थितियों की योजना बनाना,

- कोई बच्ची भी क्या कर सकती है और क्या नहीं, उसकी किन चीज़ों में विशेष रुचि है, वह क्या करना चाहती है और क्या नहीं, इन सबके प्रति समझ बनाने और महसूस करने में बच्ची की मदद करना,

- बच्ची को 'कुछ प्राप्त कर पाने'/पूर्णता की भावना के विकास के लिए प्रोत्साहित करना,

- कक्षा में चल रही सीखने–सिखाने की प्रक्रिया को बेहतर बनाना,

- बच्ची की प्रगति के प्रमाण तय कर पाना जिन्हें अभिभावकों और दूसरों तक संप्रेषित किया जा सके,

- बच्ची के आकलन के प्रति व्याप्त भय को दूर करना और उन्हें स्व–आकलन के लिए प्रोत्साहित करना,

- प्रत्येक बच्चों के सीखने और विकास में मदद करना और सुधार की संभावनाएँ खोजना।

दो कक्षाओं की तस्वीर

अध्यापक केंद्रित कक्षा	बाल केंद्रित कक्षा
• अध्यापक निर्देश देते हैं और बच्चों से अपेक्षा करते हैं कि बच्चे आज्ञा का पालन करें और अनुशासन में रहें,	• अध्यापक सीखने के अवसर प्रदान करते हैं और सीखने को दिशा देते हैं, • बच्चे तरह–तरह की गतिविधियों और कार्यकलापों में क्रियाशील होकर जुड़े रहते हैं,
• अध्यापक के पढ़ाने के दौरान बच्चे सुनते हैं, • अध्यापक पाठ्यपुस्तक पढ़ते हैं, श्यामपट्ट पर प्रश्न और उत्तर लिखते हैं। एक समय वह भी होता है जब एक बच्ची ज़ोर–ज़ोर से पढ़ती है, बाकी सुनते हैं,	• अध्यापक बच्चों के लिए ऐसी अधिगम स्थितियाँ उत्पन्न करते हैं जहाँ बच्चों को अवलोकन करने, खोजबीन करने, प्रश्न करने, अनुभव लेने और विभिन्न अवधारणाओं के प्रति अपनी समझ बनाने के अवसर मिलते हैं,
• पाठ्यपुस्तक में दिए गए तथ्यों या अध्यापक द्वारा बताए गए तथ्यों को याद करते हैं, • कक्षा में अध्यापक का नियंत्रण रहता है। बच्चों की भागीदारी बहुत कम होती है,	• बच्चे स्वयं ही ज्ञान का निर्माण करते हैं जो उनके विद्यालय में या विद्यालय के बाहर प्राप्त अनुभवों पर आधारित होता है, • बच्चे व्यक्तिगत रूप से भी कार्य करते हैं और समूह में भी वे चर्चा करते हैं, अनुभव बाँटते हैं, सहयोग करते हैं और एक–दूसरे के विचारों का आदर करते हैं,
• बच्चे आमतौर पर अकेले (स्वयं में) ही सीखते हैं,	• समय सारणी में लचीलापन होता है और बच्चे क्या करना चाहते हैं, उन पर निर्भर करता है,
• समय सारणी में लचीलेपन का अभाव होता है, • बैठने की व्यवस्था भी पहले से ही तय होती है,	• गतिविधि के अनुसार बैठने की व्यवस्था में परिवर्तन होता रहता है, • तरह–तरह की सामग्री, उपकरण कक्षा में उपलब्ध रहते हैं और बच्चे इनका इस्तेमाल करते हैं,
• सामग्री केवल प्रदर्शन के लिए होती है, • बच्चों में हमेशा उकताहट और अरुचि का भाव व्याप्त रहता है।	• किसी भी व्यक्ति के बाहर से आने पर बच्चों के लिए व्यवधान उपस्थित नहीं होता, चूँकि बच्चे काम में संलग्न रहते हैं अतः अध्यापिका ही बाहर आ जाती है।

किसका / किस बारे में आकलन किया जाना चाहिए?

आकलन के संबंध में उठाए गए सवालों जैसे– 'बच्चों का आकलन क्यों किया जाना चाहिए' के बाद स्वाभाविक है कि बहुत से अध्यापक सवाल करें ....

आकलन किस बारे में किया जाना चाहिए? हमें अपने आप से सवाल करने की ज़रूरत है कि आखिर वह है क्या जिसकी हमें बच्चों का आकलन करते समय तलाश रहती है। चूँकि शिक्षा बच्चे के कुल समग्र विकास से जुड़ी हुई है (जैसे– शारीरिक, सामाजिक, भावात्मक और संज्ञानात्मक)। इसलिए यह ज़रूरी है कि सभी पहलुओं का आकलन किया जाए, सिर्फ अकादमिक उपलब्धियों का नहीं, जो वर्तमान में विद्यालयों में इस्तेमाल की जा रही आकलन पद्धतियों का मुख्य केंद्र है। इस प्रकार यह बहुत आवश्यक हो जाता है कि विद्यालय और कक्षा के बाहर और भीरत होनेवाली सभी गतिविधियों, जिनमें बच्चे की भागीदारी रहती है, का आकलन किया जाना चाहिए यह आकलन की सारगर्भित प्रक्रिया होगी। आकलन की प्रक्रिया को सूचना और पृष्ठपोषण (feedback) देने का ज़रिया बनाना होगा कि विद्यालय और अध्यापक शिक्षा देने की प्रक्रिया में किस सीमा तक सफल हो पाए हैं। बच्चे के अधिगम की पूरी तस्वीर समझने के लिए आकलन द्वारा निम्नलिखित बिंदुओं को उभारना होगा–

- भिन्न–भिन्न विषयों/क्षेत्रों में बच्चों का सीखना और प्रदर्शन,
- बच्चों के कौशल, रुचियाँ, रुझान और अभिप्रेरणा कुछ और पहलू हैं,
- एक निश्चित अवधि में बच्चों के सीखने और व्यवहार में होनेवाले परिवर्तन,
- विद्यालय के भीतर और बाहर मौजूद भिन्न–भिन्न स्थितियों और अवसरों के प्रति बच्चों की प्रतिक्रिया।

आकलन कब किया जाना चाहिए?

हममें से बहुतों द्वारा पूछा गया एक बहुत ही अहम सवाल 'आकलन किस बात का किया जाए' से जुड़ा हुआ एक ही सवाल है– बच्चों के सीखने की प्रक्रिया और प्रगति को कब और कैसे आँका जाए? सीखने के परिणामों का आकलन अध्यापन अधिगम प्रक्रिया के साथ सतत रूप से जुड़ा हुआ है। समग्र रूप से आकलन करने के लिए, सीखने के सभी पहलुओं को अपेक्षित पहचान देनी होगी। इस तरह से तो प्रत्येक बच्चे का प्रोफ़ाइल बनाना ज़रूरी हो जाता है। हालाँकि तरीके और पद्धतियाँ तो भिन्न–भिन्न होंगी ही। जब अध्यापक नियमित रूप से बच्चों की प्रगति पर बराबर नज़र बनाए हुए हों तो उस पर प्रतिक्रिया करने, पृष्ठपोषण देने और सुधार संबंधी तरीकों को अपनाने के लिए कुछ अवधियाँ तो तय करनी होंगी। इसके लिए ज़रूरी है कि व्यावहारिक अवधियाँ तय की जाएँ और उनका अनुसरण किया जाए। हालाँकि कक्षा में अनौपचारिक रूप से अवलोकन की प्रक्रिया तो चलती ही रहनी चाहिए। हर पंद्रह दिन में एक बार पीछे मुड़कर देख लेना (बच्चे के शुरुआती दौर को) और पारदर्शिक समीक्षा भी कर लेना ज़रूरी होगा इससे बच्चों के सीखने को उन्नत और सुदृढ़ किया जा सकता है। अतः आकलन–

- *दिन–प्रतिदिन के आधार पर*– बच्चों के साथ सतत रूप से अन्तःक्रिया करना और सतत् रूप से उनका कक्षा और कक्षा के भीतर और बाहर आकलन करना।
- *सावधिक*–हर तीन या चार महीने में एक बार अध्यापक बच्चों के कामों की जाँच करें और एकत्र की गई सूचनाओं के आधार पर उन्हें अपनी राय बताएँ। यह किसी प्रकार की जाँच के रूप में नहीं होना चाहिए।

आकलन कैसे किया जाए?

विभिन्न चरण और विधियाँ जो कि चक्रीय एवं क्रमिक हैं विस्तार से आगे दिए गए चित्र में दिखाई गई हैं।

पहला चरण

भिन्न–भिन्न स्रोतों और विधियों द्वारा सूचना और प्रमाण जुटाना

यदि हम सभी यह स्वीकार करते हैं और मानते भी हैं कि सभी बच्चे अपनी ही शैली से सीखते हैं और वे सिर्फ़ स्कूल में ही नहीं सीखते तब हमें बच्चों का आकलन करते समय दो चीज़ों पर तो काम करना ही होगा– पहला, तरह–तरह के स्रोतों से जानकारी इकट्ठी करना, दूसरा, तरह–तरह की गतिविधियों, अनुभवों और अधिगम कार्यकलापों से जुड़े बच्चे क्या वास्तव में सीख रहे हैं, यह जानने और समझने के लिए आकलन की बहुत–सी विधियाँ इस्तेमाल में लाना।

सूचनाओं के स्रोत

आज भी यही देखने में आता है कि अध्यापक ही सूचनाओं का मुख्य स्रोत है और यही वह व्यक्ति है जो बच्चों के सीखने का आकलन भी करता है। जो भी हो, चूँकि आकलन सीखने की प्रक्रिया का ही हिस्सा है, बच्चे स्वयं भी अपने अधिगम और प्रगति का आकलन करने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अध्यापक बच्चों की स्वयं का आकलन करने में मदद कर सकते हैं।

बच्चों से क्या अपेक्षा की जा रही है, इसकी बेहतर समझ विकसित करने में मदद की जा सकती है, अपने काम और प्रदर्शन को आलोचनात्मक नज़रिए से देखने के लिए अनुभव प्रदान किए जा सकते हैं। बच्चों से यह भी कहा जा सकता है कि वे अपने उन कामों का चयन करें जो उनकी नज़र में सर्वोत्तम हैं और यह भी बताएँ कि उन्होंने उनका चयन क्यों किया। बच्चों के अतिरिक्त क्या कोई और भी है जिनसे बच्चों के आकलन के संबंध में सूचनाएँ ली जा सकती हैं? बच्चों के विकास के दूसरे पहलुओं की पूरी तस्वीर स्पष्ट करने के लिए इन्हें भी आकलन की प्रक्रिया में शामिल किया जा सकता है। वे कौन हो सकते हैं? अध्यापक और भी बहुत से व्यक्तियों के साथ बातचीत कर उन्हें आकलन की प्रक्रिया में शामिल कर सकते हैं, वे व्यक्ति हो सकते हैं–

- माता–पिता/अभिभावक
- बच्चों के मित्र/सहपाठी
- दूसरे अध्यापक
- समुदाय के लोग

अब अगला सवाल यह उठता है कि भिन्न–भिन्न स्रोतों से सूचना इकट्ठी कैसे की जाए?

आकलन के तरीके

किसी भी तरीके को चुनने से पहले प्राप्त की जानेवाली ज़रूरी सूचनाओं के लिए आकलन के प्रकार का निर्धारण आवश्यक है। आकलन करने के चार मूलभूत तरीके हैं–

- *व्यक्तिगत आकलन*– एक बच्चे को केंद्र में रखते हुए किया गया आकलन जब वह कोई गतिविधि/कार्य करता है और उसे पूर्ण करता है।
- *सामूहिक आकलन*– किसी कार्य को पूर्ण करने के उद्देश्य से बच्चों द्वारा, सामूहिक रूप से कार्य करते समय सीखने और प्रगति का आकलन सामूहिक आकलन है। आकलन का यह तरीका बच्चों के सामूहिक कौशलों, सहयोग द्वारा सीखने की प्रक्रिया तथा बच्चों के व्यवहार से संबंधित अन्य मूल्यों के आकलन के लिए बहुत उपयुक्त पाया गया है।
- *स्व–आकलन*–बच्चे द्वारा स्वयं के सीखने तथा ज्ञान, कौशल, प्रक्रियाओं, रुचि, व्यवहार आदि में प्रगति के स्व–आकलन से संबंधित है।

- *सहपाठियों द्वारा आकलन*– एक बच्चे द्वारा दूसरे बच्चे का आकलन, इसे दो बच्चों की जोड़ी या समूह में करवाया जा सकता है।

सभी स्कूलों में अध्यापकों द्वारा तैयार किए गए उपकरणों/तकनीकों के इस्तेमाल का ही प्रचलन है। इसमें पेपर, पैंसिल, टेस्ट/कार्यकलाप, लिखित और मौखिक परीक्षाएँ, तस्वीर आधारित सवाल, कृत्रिम (सिमुलेटेड) कार्यकलाप और विद्यार्थियों के साथ वार्तालाप/संवाद शामिल हैं। अध्यापकों द्वारा बच्चों के सीखने की प्रगति का आकलन करने के लिए छोटे–छोटे क्लास टेस्टों का इस्तेमाल एक आसान और शीघ्रगामी तरीके के रूप में किया जाता है।

सामान्यतः एक अवधि विशेष में पढ़ाई गई निर्धारित विषय वस्तु के आधार पर सत्र या माह के अंत में ये टेस्ट करवाए जाते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि ये उपयोगी होते हैं परंतु इनका इस्तेमाल बहुत सावधानी के साथ किया जाना चाहिए। इस तरह के परीक्षणों में पूछे जानेवाले सवालों की प्रकृति ऐसी न हो कि उनसे पूर्व–निर्धारित उत्तर ही निकल कर आते हों अपितु इन प्रश्नों की शब्द संरचना इस तरह की हो कि बच्चों को अपने विचार और भाव तरह–तरह से अभिव्यक्त करने की पूरी गुंजाइश हो। टेस्ट में दी जानेवाली प्रविष्टियाँ/प्रश्न कुछ इस प्रकार के हों कि वे चिंतन और विश्लेषण पर बल दें न कि पाठ्यपुस्तकों में दी गई सामग्री को याद करके पुनः लिख देने पर। क्या आपने कभी सोचा है कि तरह–तरह की विधियों का इस्तेमाल क्यों करना चाहिए? ऐसा इस वजह से किया जाता है–

- भिन्न–भिन्न विषयों, क्षेत्रों और विकास के भिन्न–भिन्न पहलुओं में सीखने का आकलन किया जाता है,
- बच्चे एक विधि की तुलना में किसी दूसरी विधि के प्रति बेहतर तरीके से प्रतिक्रिया करते हैं,
- बच्चों के सीखने के संबंध में अध्यापकों की समझ बनाने में हर विधि का अपनी ही तरह से योगदान रहता है।

विकास के भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में बच्चों की प्रगति और अधिगम के बारे में सूचनाएँ और प्रमाण जुटाने के लिए आकलन का कोई भी एक उपकरण या विधि अपने आप में पर्याप्त नहीं है। पढ़ाते समय आपने ज़रूर महसूस किया होगा कि विद्यार्थियों का अवलोकन करके, उन्हें सुनकर, उनके अभिभावकों, दोस्तों और दूसरे अध्यापकों के साथ उनके बारे में अनौपचारिक तरीके से चर्चा करके, उनके लिखित कार्य (कक्षा तथा गृहकार्य दोनों ही), बच्चों द्वारा लिखे गए लेखों और उनके स्व–आकलन के आधार पर बहुत कुछ समझा जा सकता है।

चार्ट में दर्शाए गए साधनों के अतिरिक्त तस्वीरों और ऑडियो–विजुअल रिकॉर्डिंग का भी इस्तेमाल किया जा सकता है। ये बच्चों के कार्य करते समय के अनुभवों का ही नहीं बल्कि कार्यपूर्ति का प्रलेखन प्रदान करते हैं। इसमें एक समयावधि में प्रक्रिया को ध्यान में रखते हुए आकलन किया जाता है। दोनों ही घटनाओं की सटीक पुनरावृत्ति तथा बच्चे के सोचने तथा संवाद के तरीकों को सही ढंग से परखने में सहायक है। बच्चों और अभिवावकों दोनों के साथ अनुभव बाँटने में भी इनसे मदद मिलती है। आकलन के ये तरीके महँगे हैं, इनके लिए तकनीकी विशेषज्ञों की आवश्यकता पड़ती है, समय अधिक लगता है तथा विश्लेषण अधिक समय की माँग करता है। इसलिए इनके इस्तेमाल में बहुत सावधानी की आवश्यकता है।

चित्र : सीखने और आँकने (आकलन) का चक्र

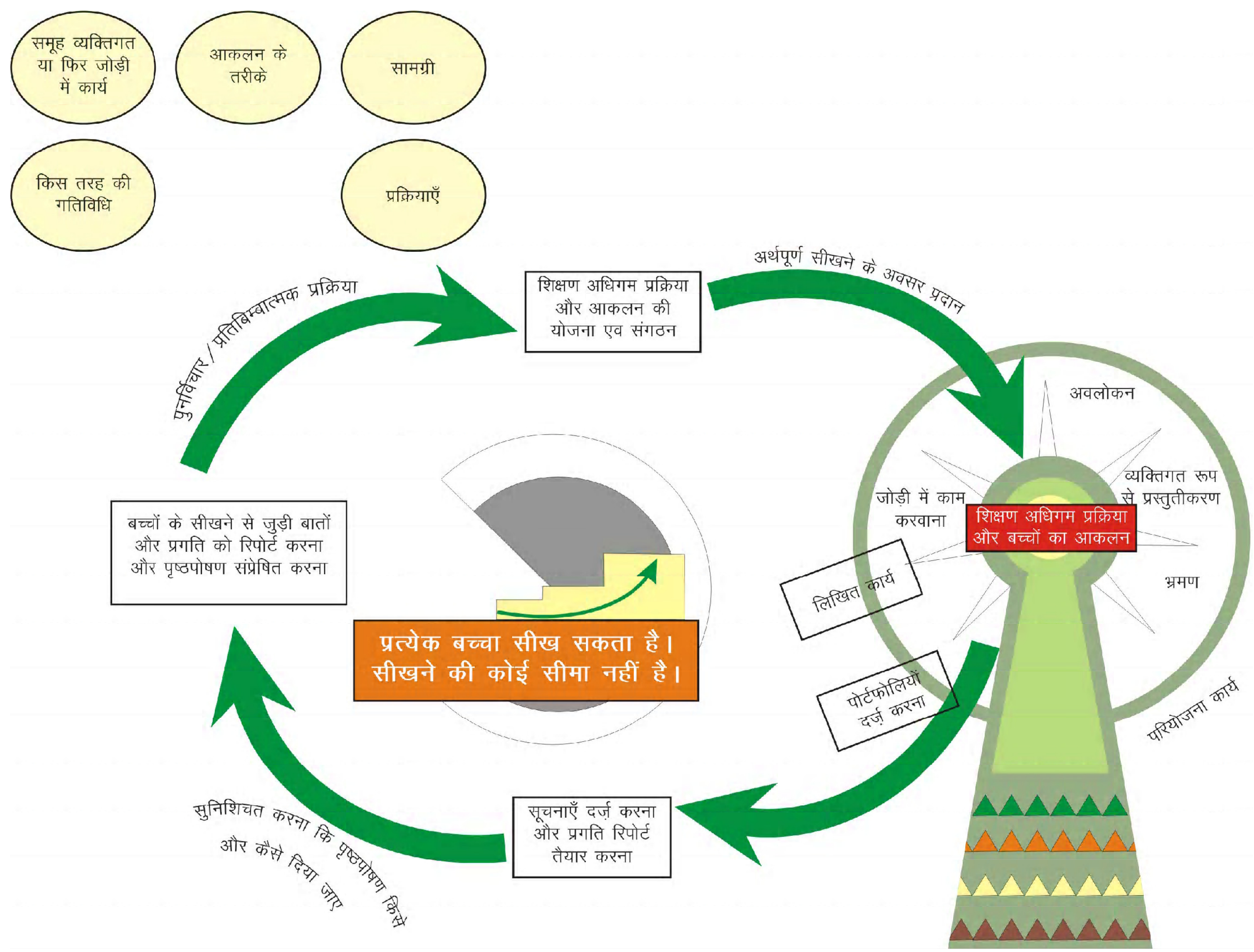

दूसरा चरण

सूचनाओं को दर्ज़ करना या सूचनाओं की रिकॉर्डिंग करना

पूरे देश के सभी विद्यालयों में रिपोर्ट कार्ड का इस्तेमाल रिकॉर्डिंग का सर्वाधिक प्रचलित तरीका है। अधिकतर रिपोर्ट कार्डों में बच्चों द्वारा टेस्ट/परीक्षाओं में प्राप्त किए अंकों और ग्रेडों (श्रेणियों) के रूप में सूचनाएँ दर्ज़ होती हैं। अंकों और ग्रेडों की उपयोगिता तथा निहितार्थ के बारे में पहले ही चर्चा की जा चुकी है। महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि दर्ज़ करने (रिकॉर्ड रखने) की प्रक्रिया में सुधार लाने के लिए क्या किया जा सकता है। कक्षा में किया गया वार्तालाप बच्चे के व्यवहार तथा सीखने का अवलोकन करने के लिए अनेकानेक अवसर प्रदान करता है। जैसा कि आप जानते हैं कक्षा में नित्य शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया के दौरान अनौपचारिक रूप से कुछ अवलोकन किए जा सकते हैं। दिन–प्रतिदिन के अवलोकनों को अगर दर्ज़ नहीं किया जाए तो शीघ्र ही उनके भूलने की आशंका रहती है। बच्चों के कार्यों/गतिविधियों के कई अवलोकन सुनियोजित होते हैं। इस प्रकार के अवलोकन किसी उद्देश्य से योजनाबद्ध होते हैं और इसीलिए स्वरूप में औपचारिक होते हैं।

सूचना दर्ज़ करने की प्रक्रिया को और अधिक प्रभावशाली कैसे बनाया जाए

- बच्चों का अवलोकन करना और तुरंत मुख्य बिंदुओं को या फिर देखे जा रहे परिवर्तन को डायरी, रजिस्टर, नोटबुक आदि में दर्ज़ कर लेना,
- किसी गतिविधि को करने के दौरान या फिर जब गतिविधि पूरी हो जाए, बच्चे का आकलन करना,
- बच्चे द्वारा किए गए काम का या उससे जुड़ी रुचिकर घटना का गुणात्मक उल्लेख यानी कि विस्तार से लिखने के लिए विशेष प्रयास करना,
- बच्चे का प्रोफ़ाइल तैयार करना,
- पोर्टफोलियों में बच्चों के काम के नमूने रखना,
- अवलोकन करते समय तथा सूचना दर्ज़ करते समय बच्चे से बातचीत करना कि क्या किया जा रहा है और कैसे किया जा रहा है।
- महत्त्वपूर्ण बदलाव, समस्याओं, सकारात्मक बिंदुओं, मजबूतियों और सीखने के साक्ष्यों को नोट करने के लिए विशेष प्रयास करना,
- सूचना दर्ज़ करते समय यदि किसी तरह का संदेह उत्पन्न होता है तो तत्क्षण उसे स्पष्ट कर लेना।

ध्यान रखें, पूर्वाग्रह/त्रुटियाँ, दर्ज़ की जा रही सूचनाओं को प्रभावित करती हैं

बहुधा ऐसा पाया गया है कि बच्चों के सीखने और प्रगति का अवलोकन करते समय कुछ गलतियाँ हो जाती हैं। ये गलतियाँ हमारे पूर्वाग्रहों का परिणाम हो सकती हैं–

- बच्चों की योग्यता, संभाव्यता व कार्य निष्पादन के संबंध में पहले के अनुभव,
- लड़कियों की अपेक्षा लड़कों को अधिक प्रिय मानना किन्हीं परिस्थितियों में स्थिति इसके उलट (विपरीत) भी हो सकती है,
- दूसरे विषय क्षेत्रों में बच्चों के पूर्व निष्पादन के आधार पर उसके द्वारा किए जा रहे कामों के एक ही पहलू पर विशेष ध्यान देना,

- बच्चे की सामाजिक पृष्ठ, जैसे– जाति, वर्ग, समुदाय, भौगोलिक पृष्ठभूमि (स्थान जहाँ वह रहती है) आदि।
- किसी एक विषय और उसके किसी एक क्षेत्र की परीक्षा से जुड़े पूर्व परिणाम,
- एक ही विषय में किसी एक मानदंड से मिलते–जुलते मानदंड के लिए एक से अंक दे देना। नोट– किस बात का अवलोकन किया जा रहा है, इस बात पर ध्यान देना बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

बच्चे के सीखने और प्रगति की पूरी तस्वीर देने के लिए इसके क्षेत्र को विस्तृत करने की आवश्यकता है। रिकॉर्डिंग में बच्चों द्वारा किए कार्यों/प्रदत्त कार्यों में उनकी प्रस्तुति के अवलोकन तथा उन पर की गई टिप्पणियों– बच्चे क्या करते हैं, उनका व्यवहार कैसा है की रेटिंग, बच्चों के दूसरों के साथ व्यवहार की घटनाओं को सम्मिलित करने की आवश्यकता है।

संभावनाओं के विस्तार की ज़रूरत है, जिसके अंतर्गत शामिल हो सकते हैं– अवलोकनों के रिकॉर्ड, किसी कार्यकलाप या प्रदत्त कार्य में बच्चों के प्रदर्शन पर टिप्पणियाँ, बच्चे क्या करते हैं और कैसे करते हैं, के बारे में श्रेणियाँ बनाना, दूसरों के साथ बच्चों के व्यवहार से जुड़ी घटनाएँ और वर्णन। यदि आप कर सकें तो नीचे लिखे बिंदुओं से भी आपको मदद मिलेगी–

- बच्चों का अवलोकन करने के बाद तुरंत ही अवलोकनों को दर्ज़ करें,
- कला और शिल्पकारी, जिनकी बहुत अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता, के क्षेत्र में बच्चों के काम और प्रदर्शन के नमूनों का संग्रह करें,
- गुणात्मक टिप्पणियाँ लिखने के बारे में विचार करें।

यह भी बहुत महत्त्वपूर्ण है कि जिन सूचनाओं का संग्रह किया गया है, उन्हें अच्छी तरह से समझा जाए और उत्तरों की विभिन्नता तथा विविधता को प्रोत्साहित किया जाए और उसकी सराहना की जाए। इस संबंध में बहुत से उदाहरण और दृष्टांत दिए गए हैं।

तीसरा चरण

एकत्रित सूचनाओं से अर्थ निकालना

एक बार सूचनाएँ दर्ज़ कर ली जाएँ फिर तीसरा महत्त्वपूर्ण पहलू या अगला चरण है– उपलब्ध साक्ष्यों की मदद से एक समझ बना पाना कि क्या सूचनाएँ इकट्ठा की गईं और दर्ज़ की गईं और फिर बच्चे के सीखने तथा प्रगति के बारे में निष्कर्ष निकालना। 'बच्चे की प्रगति कैसी है' और बच्चे की मदद के लिए क्या किया जाना चाहिए, यह समझने के लिए रिकॉर्डिंग बहुत ज़रूरी है। इसके लिए ज़रूरी है कि बच्चे के संबंध में दर्ज़ किए गए रिकॉर्डों का नियमित रूप से विश्लेषण किया जाए और समीक्षा भी। साथ ही संग्रहीत सूचनाओं के प्रति सावधिक प्रतिक्रिया भी दी जाए। ये सभी प्रक्रियाएँ शिक्षक को भी बहुत तरह से मदद करेंगी जैसे– अपनी शिक्षण पद्धतियों, कक्षा प्रबंध सभी शिक्षण शास्त्रीय पहलुओं के साथ–साथ सामग्री का प्रयोग जैसे प्रक्रियाओं के प्रति चिंतन करना और शिक्षार्थी के लाभार्थ, इन सभी में आवश्यक सुधार करना। इस स्रोत पुस्तक के बाद के अध्यायों में प्रत्येक विषय क्षेत्र के लिए संकेतक दिए गए हैं। ये संकेतक प्रत्येक कक्षा/स्तर के लिए दिए गए हैं। ये संकेतक यूँ ही नहीं बना लिए गए हैं अपितु राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 पर आधारित एनसीईआरटी द्वारा प्राथमिक स्तर के लिए बनाए गए पाठ्यक्रम में दिए गए प्रत्येक अधिगम क्षेत्र के लिए सीखने के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर बनाए गए हैं। इन संकेतकों को संदर्भ बिंदु के रूप में प्रस्तुत किया गया है। *आप अपने राज्य के पाठ्यक्रम और स्थानीय ज़रूरतों के अनुसार इन्हें ज्यों का त्यों आवश्यक परिवर्तनों के साथ इस्तेमाल कर सकते हैं।*

संकेतक महत्त्वपूर्ण क्यों हैं?

दिए गए संकेतक अध्यापक की कई तरह से मदद कर सकते हैं–

- सीखने की निरंतरता को ध्यान में रखते हुए बच्चों के सीखने की बेहतर समझ और उसे केंद्र में रखना,
- पर्यवेक्षण, अधिगम और प्रगति को रिपोर्ट करने के लिए एक रूपरेखा प्रदान करते हैं,
- अभिभावकों, बच्चों और कई दूसरों के लिए भी बच्चों की प्रगति को आसान तरीके से समझने के लिए संदर्भ बिंदु की तरह कार्य करते हैं।

यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है कि सूचनाएँ जो एकत्रित की गई हैं, आँकड़ों और प्रमाणों के संग्रह के बाद भी सूचनाओं का संग्रह करना जारी रहना चाहिए। इन संकेतकों के आधार पर गुणात्मक टिप्पणियाँ भी तैयार की जा सकती हैं– एक दिए गए उत्तर के प्रति यह कितना उपयुक्त है– स्वीकार्य, महत्त्वपूर्ण और रुचिकर। बहुधा यह देखा जाता है कि शिक्षार्थी को 'अ' या 'ब' के द्वारा उसके उत्तर/प्रतिक्रिया को चिह्नित किया जाता है शिक्षार्थी के साथ किसी भी तरह की अंतःक्रिया किए बगैर यह बहुत ही आवश्यक विधियों में प्रयोग करें।

- सूचना एकत्र करने की प्रक्रिया सतत रहे और सूचनाओं को दर्ज़ भी करते चलें।
- प्रत्येक बच्चे को प्रतिक्रिया करने, सीखने और अपना ही समय लेने को महत्त्व दें,
- एक सतत प्रक्रिया के रूप में रिपोर्टिंग भी करें और प्रत्येक बच्चे की प्रतिक्रिया/उत्तर के प्रति सरोकार रखें,
- पृष्ठपोषण दें, जो सकारात्मक क्रियाओं के लिए संभावनाएँ जुटाएँ और बच्चे को बेहतर करने के लिए मदद दें।

अब तक जिस नज़रिए की चर्चा की गई है उसके तहत आगे दिए गए अध्याय भिन्न–भिन्न विषय क्षेत्रों में बच्चों का आकलन करने में मदद करेंगे। महत्त्वपूर्ण है कि उत्तरों को सही और गलत के आधार पर अंक या ग्रेड देने से आगे भी कहीं हमको सोचना होगा क्योंकि आकलन संबंधी आँकड़ों का उद्देश्य अध्यापन अधिगम पद्धतियों और प्रक्रियाओं को सुदृढ़ करना है। अध्यापकों को एक समझ बनाने में भी मदद मिलेगी कि बच्चे ने अपनी व्याख्या देने के संदर्भ में जो भी किया है, वह क्यों किया है। इस स्रोत पुस्तक में इन पहलुओं पर विस्तार से उदाहरण देकर चर्चा की गई है। व्याख्या करने के बाद ज़रूरत है योजना बनाने की कि कैसे और किसे आकलन संबंधी पृष्ठपोषण दिया जाना है।

आकलन संबंधी सूचनाओं का इस्तेमाल कैसे किया जा सकता है–
रिपोर्टिंग और पृष्ठपोषण देना

सीखने की प्रक्रिया के दौरान जब आकलन साथ–साथ चल रहा होता है तब अध्यापकों के पास बच्चों के बारे में बहुत–सी सूचनाएँ जुट जाती हैं। सूचनाएँ दर्ज़ कर लेने के बाद उनका विश्लेषण कर लेने के बाद इनका क्या किया जाए, यह जान लेना भी ज़रूरी होगा। इस बात से आप सहमत होंगे कि सामान्यतः सभी विद्यालयों में विद्यार्थियों के सीखने और प्रगति के आकलन से जुड़ी सूचनाएँ बच्चे और विद्यार्थी दोनों को ही एक रिपोर्ट कार्ड के माध्यम से दी जाती हैं। ये रिपोर्ट कार्ड एक प्रकार से भिन्न–भिन्न विषयों में बच्चों के प्रदर्शन और निष्पादन की एक तस्वीर विद्यालयी सत्र में आयोजित टेस्टों, परीक्षाओं में प्राप्त अंकों और ग्रेडों के आधार पर प्रस्तुत करते हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि अध्यापकों द्वारा विद्यार्थियों का जो आकलन किया जाता है और इस संबंध में वे जो भी रिकॉर्ड रखते हैं, वे सभी अध्यापकों को मदद करते हैं–

- यह समझने में कि बच्चे किस तरह और कितना सीख पा रहे हैं,
- स्वयं की शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को उन्नत करने में,
- प्रत्येक बच्चे की सीखने की प्रक्रिया को समुन्नत करने के उद्देश्य से उन्हें और अधिक अर्थपूर्ण अवसर तथा अनुभव प्रदान करने की दिशा में।

उपर्युक्त संदर्भ में रिपोर्टिंग रचनात्मक, संप्रेषणीय तथा इस तरह से प्रस्तुत की जानी चाहिए जिससे कि संबंधित व्यक्ति उसे सरलतापूर्वक समझ सके। यह तभी संभव है जब अध्यापक विद्यार्थी के संबंध में उन सभी सूचनाओं को प्रतिबिंबित करें जो उन्होंने अपने दिन–प्रतिदिन के अनुभव के आधार पर हासिल की हैं और सीखने के क्षेत्र विशेष के संकेतकों के आधार पर प्राप्त की हैं।

अध्यापक द्वारा

दैनिक अथवा सावधिक रूप से किया जानेवाला आकलन आपके लिए तभी मददगार है, जब आप–

- निश्चित अवधि के भीतर (हर तीन महीने के भीतर) निरंतरता को आधार बनाते हुए पोर्टफ़ोलियो तथा दूसरे रिकॉर्डों का आकलन करें,
- बच्चे से जुड़ी महत्त्वपूर्ण रुचिकर घटनाओं का पुनरवलोकन करें तथा बच्चे के व्यक्तित्व के और भी पहलुओं का आकलन करें,
- बच्चे के संबंध में पहले से अर्जित की गई सूचनाओं से तुलना करें,
- सुनिश्चित करें कि एक बार जिस समस्या का सामना किया गया है, उसकी पुनरावृत्ति न हो,
- समस्याओं/कठिनाइयों को किस तरह से सुलझाया गया है, उन तरीकों को समझा जाए,
- आकलन करें कि बच्चे ने किसी प्रकार की प्रगति की है अथवा नहीं। यदि किसी प्रकार की कमी रह जाती है तो उन पर सीखने–सिखानेवालों की प्रक्रिया के दौरान ही ध्यान दिया जाए।

अध्यापक की प्रतिबिंबात्मक टिप्पणी प्रगति पत्रक बनाने में मदद करेगी। प्रगति पत्रक एक निश्चित अवधि में बच्चे की प्रगति से संबंधित स्पष्ट तस्वीर प्रदान करने में सहायक सिद्ध होगा। इसी स्थिति में अध्यापक द्वारा बच्चों के सीखने की दिशा को अर्थपूर्ण बनाया जा सकता है और समझ तथा कौशल प्राप्ति के निम्न स्तर से उच्च एवं जटिल स्तर की ओर पहुँचाया जा सकता है। इस तरह से हमें इस बात की समझ बनाने में भी मदद मिलती है कि बच्चों को सीखने की प्रक्रिया में क्या–क्या कठिनाइयाँ आ रही हैं और इन कठिनाइयों तथा अंतरों का समाधान किस तरह से ढूँढ़ा जा सकता है। पृष्ठपोषण ही वह माध्यम है जिसके जरिए शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में परिवर्तन लाया जा सकता है।

पृष्ठपोषण के संबंध में महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि अध्यापक द्वारा दी जानेवाली रिपोर्ट में क्या–क्या होना चाहिए। इस रिपोर्ट द्वारा एक निश्चित अवधि में की गई प्रगति का संपूर्ण ब्यौरा होना चाहिए। बच्चे द्वारा की गई प्रगति का उल्लेख किस तरह से किया जा सकता है? आइए, हम इस पर विचार करते हैं कि कौन–कौन सी सूचनाएँ शामिल की जानी चाहिए।

रिपोर्ट– बच्चे द्वारा की जा रही प्रगति को मापना

- विषय क्षेत्रों में ए.बी.सी. ग्रेड देना। ये ग्रेड बच्चे के अधिगम तथा प्रदर्शन के उस विस्तार की ओर ध्यान दिलाएँगे, जो तीन स्तरीय सूची द्वारा दर्शाया जाता है,
- बच्चे द्वारा किए गए कामों का संग्रह और उनका प्रदर्शन बच्चे की सीखने के प्रति समझ बनाने में मददगार होगा,
- बच्चे के व्यक्तित्व के भिन्न–भिन्न पहलुओं पर ध्यान केंद्रित करके,
- ग्रेड के साथ–साथ बच्चे के सीखने के तरीकों के बारे में गुणात्मक कथन देकर,
- बच्चे द्वारा किए गए कामों के उदाहरण प्रस्तुत करके,
- बच्चे के सीखने की प्रक्रिया के मजबूत पक्ष को और अधिक उभारकर तथा उन पहलुओं पर विशेष ध्यान देकर जहाँ पुनर्बलन की ज़रूरत है।

रिपोर्ट तैयार करते समय अध्यापक के लिए ज़रूरी है कि वह बच्चे और माता–पिता के साथ पृष्ठपोषण संप्रेषित करे। यह पहलू बहुत ही महत्त्वपूर्ण है और बहुत ही सावधानीपूर्वक रचनात्मक तथा सकारात्मक तरीके से प्रेषित किया जाना चाहिए।

बच्चे को संप्रेषित करना

दिन–प्रतिदिन के अध्यापन में जब बच्चे बहुत–सी गतिविधियों में संलग्न होते हैं, अध्यापक अनौपचारिक रूप से पृष्ठपोषण देते चलते हैं। बच्चे अध्यापकों, दूसरे बच्चों या समूहदार/जोड़ीदार की कार्य प्रणाली का अवलोकन करते समय स्वयं की गलतियाँ भी दूर कर लेते हैं और समुन्नत भी करते चलते हैं। सीखने के संदर्भ में स्थिति समस्याजनक तब हो जाती है जब रिपोर्ट केवल यह दर्शाती है कि बच्चे सही तरह से कर नहीं पाते, यानी कि उनकी अक्षमताओं ओर असफलताओं का ही चित्रांकन किया जाता है। इस तरह की रिपोर्ट बच्चों को निरुत्साहित करती है। अध्यापक को चाहिए कि वह–

- प्रत्येक बच्चे से उसके काम के बारे में बातचीत करे, कौन–कौन सा काम अच्छी तरह से किया गया है, कौन–सा नहीं और कहाँ–कहाँ सुधार की ज़रूरत है,
- बच्चे और अध्यापक दोनों मिलकर इस बात की पहचान करें कि बच्चों को किस तरह की मदद की ज़रूरत है,
- बच्चे को अपना–अपना पोर्टफोलियो देखने तथा वर्तमान में (हाल ही में) किए गए कामों की तुलना पुराने काम से करने के लिए प्रोत्साहित किया जाए,
- काम करने की प्रक्रिया के दौरान या बाद में भी सकारात्मक रचनात्मक टिप्पणियाँ देनी ज़रूरी हैं।

सबसे महत्त्वपूर्ण बात जिसे पृष्ठपोषण के माध्यम से सबसे अधिक प्रोत्साहित किया जाना चाहिए वह यह है कि स्वयं की तुलना अपने पिछले कार्यों की प्रगति से करें न कि दूसरे के कार्यों से। उदाहरण के तौर पर ''कल एक सप्ताह पहले तक मैं क्या कर पा रही थी और आज मेरा स्तर कहाँ है?'' बच्चों के बीच तुलना करना किसी भी मायने में हितकारी नहीं है। आम तौर पर इससे कुछ इस तरह की धारणा जन्म लेती है 'मैं तो एकदम बेकार। मैं तो किसी भी काम की नहीं।' स्थिति इससे भिन्न भी है, यदि किसी बच्चे ने उच्चतम अंक प्राप्त किए हैं या बहुत अच्छा प्रदर्शन किया है, तो उस पर विद्यालय एवं घर दोनों ही स्थलों पर उस स्थिति को बनाए रखने का दबाव बना रहता है।

अभिभावकों के साथ बाँटना

सामान्यतः सभी अभिभावकों को यह जानने में रुचि रहती है कि उनकी बच्ची विद्यालय में कैसा कर रही है, उसने क्या–क्या सीखा है, दूसरे बच्चे किस तरह का प्रदर्शन कर रहे हैं एक निश्चित समयावधि के भीतर उनके बच्चे की क्या प्रगति है। आम तौर पर अध्यापक यह महसूस करते हैं कि उन्होंने अभिभावकों को उनके बच्चों की प्रगति के बारे में भली–भाँति संप्रेषित कर दिया है ''अच्छा कर सकती है, 'अच्छा', 'खराब', अधिक प्रयास करने की ज़रूरत है,'' किसी भी अभिभावक के लिए इन टिप्पणियों की क्या सार्थकता है? क्या इस तरह की टिप्पणियाँ किसी तरह की स्पष्ट सूचना प्रदान कर सकती हैं कि उनकी बच्ची क्या कर सकती है और क्या सीख चुकी है। यह सुझाव दिया जाता है कि आप आसानी से समझी जानेवाली भाषा में पृष्ठपोषण दें–

- बच्ची क्या–क्या कर सकती है, क्या करना चाह रही है और क्या करने में उसे कठिनाई होती है,
- बच्चे को क्या–क्या करना पसंद है और क्या नहीं,
- बच्चों द्वारा किए गए कामों के नमूने गुणात्मक कथन, मात्रात्मक पृष्ठपोषण के साथ प्रस्तुत किए जा सकते हैं,
- बच्चों ने किस तरह से सीखा (प्रक्रिया) और सीखने में कहाँ–कहाँ कठिनाई का सामना किया,
- बच्चों के कार्यों की चर्चा अभिभावकों से करना जो उनकी सफलता और सुधार के क्षेत्रों को दिखाने में मदद करें,
- कठिनाई अनुभव करने पर काम पूरा कर सके या नहीं,
- सहयोग, उत्तरदायित्व, संवेदनशीलता, रुचि आदि पहलुओं पर बात करनी ज़रूरी होगी,
- अभिभावकों के साथ चर्चा करना कि (अ) बच्चों की किस तरह से मदद कर सकते हैं, (ब) घर पर उन्होंने किस तरह का अवलोकन किया है।

आप बच्चे की उन्नति/प्रगति को ग्राफ (लेखा चित्र) के माध्यम से भी प्रस्तुत कर सकते हैं, जिसे समझना बच्चों और अभिभावकों दोनों के लिए सरल होगा।

बच्चों के अधिगम तथा प्रगति के संबंध में एकत्रित की गई सूचनाएँ तथा पृष्ठपोषण अंततः समग्र शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को समुन्नत करेगी और बेहतर तरीके से सीखने के लिए प्रोत्साहित करेगी। यहाँ अध्यापकों द्वारा पुनर्विचार करने व प्रतिबिंबित करने की ज़रूरत है। आकलन का चक्र प्रभावशाली, उपयोगी रूप से चलता रहे, इसके लिए ज़रूरी है कि वे अपनी शिक्षण अधिगम प्रणाली, सहायक शिक्षण सामग्री, गतिविधियों के आयोजन/नियोजन और दूसरे बहुत से पहलुओं पर पुनर्विचार करें।

टीचर्स रिलेक्शन – बच्चों के अधिगम को समुन्नत करना

कुछ महत्त्वपूर्ण सवाल जो आपको पुनर्विचार करने तथा दूसरों के साथ चर्चा करने में मदद करेंगे–

- क्या मेरे बच्चे पूरी तरह से गतिविधियों में संलग्न हैं और ठीक तरह से सीख पा रहे हैं? यदि नहीं तो वे किस स्तर पर हैं?
- क्या मैं बच्चों की भिन्न–भिन्न ज़रूरतों को समझ सकती हूँ? यदि हाँ तो उन ज़रूरतों की समझ के आधार पर मैं क्या करनेवाली हूँ?

- क्या कुछ ऐसे बच्चे भी हैं, जो पहले स्तर तक पहुँचने में भी कठिनाई अनुभव कर रहे हैं? उन्हें प्रेरित तथा उत्साहित करने के लिए मुझे क्या करना चाहिए?
- बच्चों को एक स्तर से अगले स्तर तक ले जाने के लिए मुझे अपनी अध्यापन अधिगम प्रक्रिया को उन्नत करने के लिए क्या करना चाहिए?
- मैं बच्चों को स्व आकलन के लिए किस तरह प्रेरित कर सकती हूँ?
- मुझे किन–किन क्षेत्रों में कठिनाइयाँ आती हैं– (बच्चों का समूह बनाने में, बच्चों की उम्र और स्तर के अनुसार गतिविधियों का चयन करने में, सामग्री की कमी व अनुपयुक्तता पर),
- मुझे और भी किस तरह की सहायता की ज़रूरत है? मुझे कौन इस तरह की मदद दे सकता/सकती है? (शिक्षा के क्षेत्र से जुड़े लोग, अभिभावक, समुदाय, अन्य अध्यापक),
- बेहतर अध्यापन अधिगम अभ्यासों के लिए और क्या–क्या प्रयास किए जा सकते हैं?

यह संभव है – आप ऐसा कर सकते हैं

आकलन एक बहुत रुचिकर तथा लाभदायी उपयोगी प्रक्रिया बन सकती है। इसका साक्षात् अनुभव करने के लिए हमें ध्यान रखना होगा–

- हम बच्चों का आकलन क्यों कर रहे हैं, इस बात में स्पष्टता हो,
- बच्चों पर किसी तरह का ठप्पा नहीं लगाना होगा, जैसे– मंद, निकृष्ट, बुद्धिमान, व्यवधान पहुँचानेवाले और बच्चों की आपस की तुलना से भी बचना होगा,
- विषयों तथा अन्य क्षेत्रों में बच्चों के सीखने संबंधी प्रगति के बारे में सूचनाएँ इकट्ठी करने के लिए विविध प्रकार के तरीकों का इस्तेमाल करना होगा,
- सतत रूप से सूचनाओं का संग्रहण और उन्हें दर्ज़ करना,
- प्रत्येक बच्चे के सीखने के तरीके, उसकी गति और उत्तर देने की शैली को महत्त्व देना होगा,
- सतत आधार पर रिपोर्ट देना और प्रत्येक बच्चे की प्रतिक्रिया के प्रति संवेदनशील रहना होगा,
- नकारात्मक टिप्पणियों से बचना होगा। आकलन व पृष्ठपोषण के समय तकनीकी शब्दावली का उपयोग किया जा सकता है,
- सरल व स्पष्ट भाषा में पृष्ठपोषण देना जो बच्चे को सकारात्मक दिशा की और प्रवृत्त करने में मदद करे,

मूल्यांकन (एन.सी.एफ.)

मूल्यांकन का यह प्रयोजन नहीं है :

- बच्चों को डर के दबाव में अध्ययन के लिए प्रेरित करना।
- बच्चों को नाम देना जैसे 'धीमी गति से सीखने वाला', 'होशियार', 'समस्यात्मक विद्यार्थी'। ऐसे विभाजन अधिगम की सारी जिम्मेदारी विद्यार्थी पर डाल देते हैं और शिक्षाशास्त्र की भूमिका पर से ध्यान हटा देते हैं।
- उन बच्चों को पहचानना जिन्हें उपचारात्मक शिक्षण की आवश्यकता है (इसमें औपचारिक आकलन की प्रतीक्षा किए बिना शिक्षक, शिक्षण के दौरान ही शिक्षाशास्त्रीय योजना और व्यक्तिगत ध्यान देकर यह कर सकता है)।
- अधिगम की कठिनाइयों और समस्या क्षेत्रों की पहचान करना – अवधारणात्मक कठिनाइयों के व्यापक सूचक मूल्यांकन और परीक्षा से पता किए जा सकते हैं। निदान के लिए परीक्षा के विशेष औजारों की और प्रशिक्षण की ज़रूरत होती है। यह ज़रूरत साक्षरता और संख्यनन के आधारभूत क्षेत्रों के लिए है न कि विषयों के लिए।

3.11 आकलन और मूल्यांकन

भारतीय शिक्षा में मूल्यांकन शब्द परीक्षा, तनाव और दुश्चिंता से जुड़ा हुआ है। पाठ्यचर्या की परिभाषा और नवीनीकरण के सभी प्रयास विफल हो जाते हैं, अगर वे स्कूली शिक्षा प्रणाली में जड़ें जमाए मूल्यांकन और परीक्षा तंत्र के अवरोध से नहीं जूझ सकते। हमें परीक्षा के उन दुष्प्रभावों की चिंता है जो सीखने–सिखाने की प्रक्रिया को सार्थक बनाने और बच्चों के लिए आनंददायी बनाने के प्रयासों पर पड़ते हैं। वर्तमान में बोर्ड की परीक्षाएँ स्कूली वर्षों में होने वाले हर आकलन और हर तरह के परीक्षण को नकारात्मक रूप से ही प्रभावित करती हैं। इसमें शाला पूर्व–स्तर में होने वाला आकलन और परीक्षण भी शामिल है।

एक अच्छी मूल्यांकन और परीक्षा पद्धति सीखने की प्रक्रिया का अभिन्न अंग बन सकती है जिसमें शिक्षार्थी और शिक्षा तंत्र दोनों को ही विवेचनात्मक और आलोचनात्मक प्रतिपुष्टि से फायदा हो सकता है। यह भाग मूल्यांकन और आकलन को संबोधित करते हुए शुरू होता है क्योंकि ये सीखने–सिखाने की प्रक्रिया के लिए पाठ्यचर्या के भाग की तरह प्रासंगिक होते हैं। परीक्षा तंत्र और खासकर बोर्ड की परीक्षाओं से जुड़े मुद्दों को अध्याय 5 में अलग से संबोधित किया गया है।

3.11.1 आकलन का उद्देश्य

शिक्षा का सरोकार एक सार्थक व उत्पादक जीवन की तैयारी से होता है और मूल्यांकन आलोचनात्मक प्रतिपुष्टि देने का तरीका होना चाहिए। यह प्रतिपुष्टि इस बात की होती है कि हम ऐसी शिक्षा लागू करने में किस हद तक सफलता प्राप्त कर पाएँ। इस परिप्रेक्ष्य से देखें तो वर्तमान में चल रही मूल्यांकन की प्रक्रियाएँ जो केवल कुछ ही योग्यताओं को मापती और आकलित करती हैं बिलकुल ही अपर्याप्त हैं और शिक्षा के उद्देश्यों की ओर प्रगति की संपूर्ण तस्वीर नहीं खींचती हैं।

लेकिन मूल्यांकन का यह सीमित प्रायोजन भी, अकादमिक और शैक्षिक विकास पर प्रतिपुष्टि देने वाला, तभी बन सकता है जब शिक्षक पढ़ाने से पहले ही न केवल आकलन के तरीकों की तैयारी करें बल्कि

मूल्यांकन के मानकों और उसके लिए प्रयुक्त होने वाले औजारों की भी तैयारी करें। विद्यार्थियों की उपलब्धि की गुणवत्ता की जाँच के अलावा एक अध्यापक को विभिन्न विषयों में उनकी उपलब्धि की जानकारी इकट्ठा कर, उसका विश्लेषण कर और उसकी व्याख्या करनी होगी। तभी अध्यापक विभिन्न क्षेत्रों में विद्यार्थियों के अधिगम की सीमा की एक समझ बना पाएँगे। आकलन का प्रायोजन निश्चय ही सीखने–सिखाने की प्रक्रियाओं एवं सामग्री का सुधार करना है और उन लक्ष्यों पर पुनिर्विचार करना है जो स्कूल के विभिन्न चरणों के लिए तय किए गए हैं। यह पुनर्विचार और सुधार इस आधार पर किया जा सकता है कि शिक्षार्थियों की क्षमता किस हद तक विकसित हुई। यह कहने की ज़रूरत नहीं होनी चाहिए कि यहाँ इस आकलन का मतलब विद्यार्थियों का नियमित परीक्षण कतई नहीं है। बल्कि, दैनिक गतिविधियाँ और अभ्यास के उपयोग से अधिगम का बहुत ही अच्छा आकलन हो सकता है।

सुनियोजित आकलन और नियमित प्रगति रपट शिक्षार्थियों को उनके काम की प्रतिपुष्टि देते हैं और साथ ही वे मानक भी स्थापित करते हैं जिनको पाने के लिए विद्यार्थी प्रयासरत रहते हैं। वे अभिभावकों को उनके बच्चों के अधिगम की गुणवत्ता और उनके विकास के बारे में भी जानकारी देते हैं। ऐसा आकलन प्रतियोगिता को प्रोत्साहन देने का तरीका बिल्कुल नहीं है; अगर कोई शिक्षा में गुणवत्ता चाहता है तो बच्चों का विभाजन कर उन्हें ऐसी श्रेणियों में डालना जिससे उनमें हीन भावना आ जाए तो बिल्कुल नहीं होना चाहिए। अंतिम बिंदु है कि विश्वसनीय आकलन एक रपट देता है, या अध्यापन के एक कोर्स के खत्म होने का प्रमाण देता है या जिससे दूसरे स्कूलों, शैक्षिक संस्थानों, समुदाय और भावी मालिकों (रोज़गार देने वालों) को अधिगम की गुणवत्ता और सीमा के बारे में जानकारी मिल जाती है।

दक्षताएँ : दक्षताएँ शिक्षण और उससे संबंधित आकलन का ध्यान पाठ्यपुस्तक एवं तथ्ययुक्त विषयवस्तु से दूर ले जाने का एक प्रयास है। परन्तु अधिगम के न्यूनतम स्तर के उपागम में दक्षताओं को विस्तृत उप–दक्षताओं और उप–कौशलों में तोड़ा गया है, यह मानकर कि इनका कुल योग दक्षता है। परन्तु अक्सर व्यवहार और प्रस्तुति पर ध्यान देने से अवधारणाओं के लिए तो जगह ही नहीं बचती। उप–कौशलों के इस तार्किक, लेकिन यांत्रिक सूचीकरण से और उनकी उपलब्धि के लिए बनाई गई सख्त समय–सारणी से, कहीं भी न यह झलकता है कि अधिगम एवं दक्षताओं के उपयोग में खुद में ही लचीलापन हो सकता है, और न ही यह झलकता है कि जिस चक्र में दक्षताएं सीखी जाती हैं, ज़रूरी नहीं है कि वे निर्धारित समय और गति के अनुसार से ही सीखी जाएंगी। यह सरोकर भी कहीं प्रतिबिंबत नहीं होता कि समग्र, दरअसल विभिन्न भागों के जोड़ से ज्यादा भी हो सकता है।

इस विस्तृत सूची के लिए अधिगम और परीक्षण के विषयों की सूची बनाना और पूर्व निर्धारित अधिगम के परिणामों के लिए पढ़ाना बिलकुल ही अव्यावहारिक है और शिक्षाशास्त्रीय नज़र से अविश्वसनीय भी है।

यह धारणा प्रचलित है कि मूल्यांकन से उन ज़रूरतों को पहचानने में मदद मिलती है, जिन ज़रूरतों को उपचारात्मक शिक्षण से पूरा किया जाता है। इस धारणा ने पाठ्यचर्या की योजना बनाने में बड़ी समस्याएँ पैदा की है। इस 'उपचारात्मक' शब्द को उन विशिष्ट/विशेष कार्यक्रमों तक सीमित रखने की ज़रूरत है जो उन बच्चों की क्षमता विकास में मदद करते हैं जिनको पठन/साक्षरता (पठन में असफलता जिससे बाद में बोध पर फर्क पड़ता है) या अंकज्ञान (खासकर गणित के संकेतों वाले पहलू, स्थानीय मान और संगणना संबंधी) में समस्याएँ आती हैं। शिक्षकों को अच्छे निदानकारी परीक्षणों के लिए विशिष्ट प्रशिक्षण की ज़रूरत है, जो उन्हें उपचार के प्रयासों में मदद करेगा। ठीक इसी तरह, निदानात्मक कार्य के लिए भी विशिष्ट रूप से विकसित सामग्री और नियोजन की ज़रूरत है, ताकि शिक्षक प्रत्येक बच्चे के साथ अलग से काम कर

पाएँ। इस उपचारात्मक काम की शुरुआत उन चीज़ों से होगी जो बच्चे को पहले से आती है और उन चीज़ों तक जाएगी जिन्हें बच्चे को सीखने की ज़रूरत है। यह आकलन और सतर्क अवलोकन की सतत प्रक्रिया के द्वारा ही संभव है। शब्दों का बिना सोचे–विचारे किया गया उपयोग, प्रभावशाली शिक्षाशास्त्र की आम समस्याओं से हमारा ध्यान हटा देता है और अधिगम एवं असफलता की ज़िम्मेदारी पूरी तरह से बच्चे पर डाल देता है।

3.11.2 शिक्षार्थियों का आकलन

बच्चे की अधिगम की गुणवत्ता और विस्तार पर लिखी गई एक सार्थक रपट को समावेशी होना चाहिए। हमें एक ऐसी पाठ्यचर्या की आवश्यकता है जिसमें सृजनात्मकता, नवप्रवर्तकता और बालक का संपूर्ण विकास हो। तो ऐसे में पाठ्यपुस्तक आधारित अधिगम और रटे हुए तथ्यों को जाँचने वाले परीक्षण, दोनों ही बेकार हैं। हमें मूल्यांकन और प्रतिपुष्टि को पुनः परिभाषित करने और उनके नए मानक ढूँढने की ज़रूरत है। विशिष्ट विषयों में शिक्षार्थियों की उपलब्धि का बड़े आराम से परीक्षण हो जाता है। उसके अलावा हमें आकलन में सीखने के प्रति अभिवृत्तियों, रुचि और स्वयं सीखने की क्षमता को भी शामिल करना होगा।

3.11.3 शिक्षण के क्रम में आकलन

प्रगति–पत्र (रिपोर्ट कार्ड) तैयार करने से शिक्षक को अपने प्रत्येक विद्यार्थी के बारे में यह सोचने का मौका मिलता है कि उसने सत्र के दौरान क्या सीखा और किस क्षेत्र में उसको ज्यादा मेहनत करने की ज़रूरत है। ऐसे रिपोर्ट कार्ड को लिख पाने के लिए शिक्षक को प्रत्येक विद्यार्थी के बारे में सोचना होगा और इसीलिए रोज़मर्रा के शिक्षण के दौरान उस पर ध्यान देना होगा। इसके लिए विशिष्ट परीक्षाओं की ज़रूरत नहीं है। स्वयं सीखने वाली गतिविधियाँ बच्चों में निरंतर चलने वाले अवलोकनात्मक एवं गुणात्मक आकलन का आधार बनती है। अवलोकन के आधार पर रोज़ की दैनंदिनी रखने से निरंतर, सतत एवं व्यापक मूल्यांकन में मदद मिलती है। एक शिक्षक की साप्ताहिक डायरी से लिया गया अंश– ''किरण को अपने काम में मज़ा आया। उसको वे किताबें फौरन पसंद आईं जो छोटी थीं और जिनमें जानकारी थी। वह कहता है कि उसे साफ और सादी भाषा पसंद है। तथ्यों को लिखते हुए वह अक्सर संक्षिप्त उत्तर लिखता है। उसका कहना है कि इससे वह चीज़ों को आसानी से समझ पाता है। उसे व्यावहारिक तरीका पसंद है।'' इसी तरह विभिन्न स्तर पर बच्चों के काम और उनके बारे में लिखने से शिक्षार्थी और शिक्षक को उसके अधिगम की प्रगति का व्यवस्थित रिकार्ड मिल जाता है।

यह विश्वास कि आकलन से सीखने में आने वाली कठिनाइयों का पता लगना ही चाहिए ताकि उनका उपचार हो सके अक्सर बहुत ही अव्यावहारिक हो जाता है और यह शिक्षाशास्त्रीय प्रयास की ठोस समझ पर आधारित नहीं होता। अवधारणात्मक विकास से जुड़ी समस्याएँ पहचाने जाने के लिए औपचारिक परीक्षण का इंतज़ार नहीं कर सकतीं। पढ़ाने के क्रम के दौरान ही एक शिक्षक ऐसी समस्याओं से अवगत हो सकता है।

3.11.4 पाठ्यचर्या के वे क्षेत्र जो अंकों के लिए जाँचे नहीं जा सकते

पाठ्यचर्या के सभी विषय परीक्षा द्वारा नहीं जाँचे जा सकते; बल्कि ऐसा करना तो पाठ्यचर्या के उन क्षेत्रों के सीखने की प्रकृति के विपरीत होगा। इनमें काम, स्वास्थ्य, योग, शारीरिक शिक्षा, संगीत एवं कला शामिल हैं। यद्यपि शारीरिक शिक्षा और योग के कौशल आधारित पक्षों का परीक्षण किया जा सकता है परन्तु स्वास्थ्य से जुड़े पक्षों को सतत और गुणात्मक आकलन की ज़रूरत होती है। वर्तमान में इन्हें पाठ्यचर्या में कम महत्व देने का चलन है। इन क्षेत्रों के लिए न ही पर्याप्त सामग्री उपलब्ध करवाई जाती है, और न ही

पाठ्यचर्या के लिए ढंग से योजना बनाई जाती है और आगे बढ़ें तो इन विषयों को दिए गए समय को 'विशेष पढ़ाई' के लिए हमेशा बलिदान कर दिया जाता है। पाठ्यचर्या के इन भागों के साथ यह बहुत ही बड़ा समझौता है, जबकि इन भागों की गहरी शैक्षिक महत्ता और संभावनाएँ होती हैं।

'अंक' बिना दिए भी बच्चों का इन क्षेत्रों में विकास के लिए आकलन किया जा सकता है। भागीदारी, रुचि, और जुड़ाव तथा जिस स्तर तक क्षमताओं एवं कौशलों का विकास हुआ, ये कुछ सूचक हैं जिनके आधार पर शिक्षक यह समझ बना सकते हैं कि बच्चों को इन गतिविधियों से कितना फायदा हुआ है। बच्चों को अगर अपने अधिगम के बारे में खुद बताने के लिए कहा जाए तो उससे भी शिक्षकों में बच्चों की शैक्षिक उन्नति संबंधी अंतर्दृष्टि विकसित होगी और पाठ्यचर्या एवं शिक्षाशास्त्रीय सुधार करने के आधार मिलेंगे।

3.11.5 आकलन की रूपरेखा और उसका संचालन

आकलन और परीक्षाओं को विश्वसनीय होना चाहिए, एवं अधिगम को मापने के वैध तरीकों पर आधारित होना चाहिए।

प्रश्न उठाना

एक लौह प्रगलन प्लांट आरंभ करने से पहले कौनसी चार बातें ध्यान में रखने की ज़रूरत होती है?

के स्थन पर

यदि एक उद्योगपति एक लौह प्रगलन प्लांट लगाना चाहता है तो वह किस स्थान पर चुनाव करे और क्यों?

चिड़िया की चोंच का आकार अनुकूलन में किस प्रकार से सहायता देता है।

के स्थान पर

अपने पड़ोस में दिखने वाली साधारण चिड़िया की चोंच का चित्र बनाओ। उसकी चोंच के आधार पर वर्णित करो कि उसकी भोजन की आदतें क्या होगी और तुम्हारे पड़ोस में उसे वैसा भोजन कहाँ मिल पाएगा?

जब तक परीक्षाएँ बच्चों की पाठ्यपुस्तकीय ज्ञान को याद करने की क्षमताओं का परीक्षण करती रहेंगी, तब तक पाठ्यचर्या को सीखने की तरफ मोड़ने के सभी प्रयास विफल होते रहेंगे। पहला बिंदु यह है कि ज्ञान–आधारित विषय क्षेत्रों में परीक्षाएँ ये समझ पाएँ कि बच्चों ने क्या सीखा और उस ज्ञान को समस्या सुलझाने और व्यवहार में लाने की उनकी क्षमता को जाँच पाएँ। इसके अलावा, परीक्षाएँ यह भी जाँचने में सक्षम होनी चाहिए कि विद्यार्थियों की सोचने की प्रक्रियाएँ कैसी हैं तथा यह पता लगा पाएँ कि क्या शिक्षार्थी ने यह सीखा कि जानकारी कहाँ मिलती है, उस जानकारी का इस्तेमाल कैसे करते हैं और उसका विश्लेषण और मूल्यांकन कैसे करते हैं।

आकलन के लिए जो प्रश्न निर्धारित किए जाते हैं उन्हें किताब में दी गई जानकारी से आगे बढ़ाने की ज़रूरत है। कितनी ही बार बच्चों का अधिगम इसलिए बहुत ही सीमित रह जाता है क्योंकि शिक्षक उन उत्तरों को स्वीकार नहीं करते जो कुंजियों में दिए गए उत्तरों से भिन्न होते हैं।

ऐसे प्रश्नों को भी इस्तेमाल करना चाहिए जिनका कोई एक उत्तर नहीं होता और जो बच्चों के सामने चुनौती पेश करते हैं। अच्छे प्रश्न और परीक्षा–पत्र बनाना भी एक कला है और शिक्षकों को ऐसे प्रश्न बनाने पर बल देने की ज़रूरत है। शिक्षकों की अच्छे प्रश्न बनाने की क्षमता और रुचि को बढ़ावा देने के लिए ज़िला या राज्य के स्तर पर प्रतियोगिताएँ की जा सकती हैं। सारे प्रश्न–पत्र कठिनाई की ऐसी रूपरेखा लिए हुए

होने चाहिए कि सभी बच्चे सफलता के स्तर को अनुभव कर पाएँ और उत्तर देने एवं समस्या सुलझाने की क्षमता में आत्मविश्वास विकसित कर पाएँ।

खुली–पुस्तक परीक्षा–पत्र बनाना भी एक चुनौती है जिसे स्कूल के प्रत्येक स्तर के पाठ्यचर्या प्रयासों में शामिल करना चाहिए। लेकिन ऐसा करने के लिए अध्यापकों और प्रश्न–पत्र बनाने वालों से यह अपेक्षा होगी कि वे व्याख्या करने और अधिगम के व्यावहारीय पहलू पर ज्यादा ज़ोर दें न कि किताब में दिए गए तर्क और तथ्यों पर। इस तरह के कई सफल उदाहरण हमारे पास मौजूद हैं कि ऐसी परीक्षाएँ बड़े स्तर पर आयोजित की जा सकती हैं और शिक्षक खुद ऐसी परीक्षाओं के परिणामों का नियमन कर सकते हैं और उन पर ऐसे नियमन के लिए भरोसा किया जा सकता है। इसीलिए, परियोजनाओं और प्रयोगशाला के काम के आकलन को भी और विश्वसनीय और पुख्ता बनाया जा सकता है।

यह ज़रूरी है कि जाँचे गए उत्तर वापिस मिलने पर बच्चे अपने उत्तरों को दोबारा लिखें और शिक्षक उन पर पुनर्विचार करें ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि बच्चों ने कुछ सीखा और ऐसी कठिन परीक्षा देने से उन्हें कोई लाभ हुआ।

स्पर्धा प्रोत्साहन तो देती है लेकिन वह प्रेरणा का आंतरिक रूप न होकर बाह्य रूप ही होता है। निश्चय ही इसे स्थापित करना और संचालित करना बड़ा आसान होता है इसीलिए शिक्षक और स्कूली व्यवस्थाएँ उत्कृष्टता की प्रेरणा को पोषण देने के लिए अक्सर इसका सहारा ले लेती हैं। स्कूल पूर्व–प्राथमिक स्तर से ही बच्चों को प्रथम, द्वितीय की श्रेणियों में बाँटने लगते हैं, जिससे उनमें स्पर्धा की भावना आत्मसात हो। इस तरह की प्रतियोगी प्रेरणा के अधिगम पर कई नकारात्मक प्रभाव हो सकते हैं; अक्सर प्रभाव बनाने के लिए सतही स्तर पर सीखना भर पर्याप्त होता है। समय के साथ–साथ बच्चे अपनी रुचि के अनुसार पहल करने की क्षमता खो देते हैं और इस प्रक्रिया में वे क्षेत्र जिनमें पाठ्यचर्या में 'अंक' नहीं दिए जाते उपेक्षित हो जाते हैं। इसका कक्षा की संस्कृति पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है, क्योंकि बच्चे व्यक्तिवादी बनते हैं और सामूहिक कार्य करने की क्षमता खो बैठते हैं। 'परीक्षा' को बिल्कुल असंगत महत्व दिया जाता है और उन पर अनावश्यक ध्यान केंद्रित किया जाता है, जिसमें अक्सर गोपनीयता और निरीक्षण की सख्त व्यवस्था की जाती है। माध्यमिक कक्षाओं तक तो इनके शारीरिक और मनोवैज्ञानिक प्रभाव आसानी से नहीं दिखते हैं लेकिन यह बच्चों में बेहद तनाव को जन्म देता है जिससे वह बहुत जल्दी उत्तेजित होने की हालत में पहुंच जाते हैं। स्कूल और शिक्षकों को अपने आप से पूछने की ज़रूरत है कि क्या इस तरह के व्यवहारों से सच में बहुत ज्यादा लाभ होता है और अधिगम को दरअसल किस हद तक अंक देने और श्रेणीकृत करने की ज़रूरत है।

3.11.6 स्व–आकलन और प्रतिपुष्टि

आकलन की भूमिका उस प्रगति को समझने की होती है जो शिक्षार्थी और शिक्षक निर्धारित लक्ष्यों की दिशा में करते हैं। और इस प्रक्रिया को बेहतर बनाने के लिए उसकी समीक्षा भी करते हैं। प्रतिपुष्टि पाने के ऐसे अवसर हमेशा उपलब्ध होने चाहिए जो प्रदर्शन को दोहराने व सुधारने की दिशा में ले जाएँ, परीक्षाओं व मूल्यांकन के भय का इस्तेमाल किए बिना पढ़ने की दिशा में प्रेरित करें।

विद्यार्थियों की मौजूदगी में की गई जाँच व सुधार कार्य उन्हें इस तरह की प्रतिपुष्टि देते हैं कि उन्होंने क्या सही किया, क्या गलत और क्यों? बच्चों से इस बारे में जानकारी लेना कि उन्होंने कोई उत्तर क्यों दिया, शिक्षक को लिखित उत्तर से आगे जाने में मदद देता है और बच्चों की सोच से जुड़ने का मौका देता है। ऐसी प्रक्रियाएँ परीक्षाओं के डरावने और निर्णायक गुण को भी दूर कर देती हैं और बच्चों को सक्षम बनाती

हैं कि वह अपनी गलतियों को समझें, उन पर ध्यान दें और उनसे सीखें। कभी–कभी प्रधानाध्यापक यह कह कर एतराज उठाते हैं कि बच्चों की मौजूदगी में की गई जाँच में वस्तुपरकता नहीं आ पाती। वस्तुपरकता के लिए यह सरोकार बिल्कुल अनुचित है जो प्रतियोगी व्यवस्था से उपजता है और जो बच्चों के परीक्षण में विश्वास रखता है। वस्तुपरकता की दृष्टि से यह सरोकार उस मूल्यांकन के लिए भी अनुचित है जो शैक्षिक लक्ष्यों से सुसंगत हो।

न केवल अधिगम के परिणाम बल्कि अधिगम के अनुभवों का भी मूल्यांकन होना चाहिए। शिक्षार्थी बहुत खुशी से अपने अनुभवों की संपूर्णता पर टिप्पणी देते हैं। व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों स्तर के ऐसे अभ्यास बनाए जा सकते हैं जिनसे बच्चे अपने अधिगम का आकलन करने और उस पर चिंतन करने में सक्षम हो पाएँ। इस तरह के अनुभव उन्हें स्व–नियामन की क्षमताएँ भी देते हैं जो 'सीखने के लिए सीखने' की खातिर ज़रूरी होती है। ऐसी जानकारी शिक्षक के लिए भी बहुत मूल्यवान प्रतिपुष्टि होती है जिसका उपयोग अधिगम की पूरी व्यवस्था को बेहतर बनाने में किया जा सकता है।

बच्चों के साथ की गई प्रत्येक कक्षायी अंतःक्रिया की माँग होगी कि बच्चे अपने काम का खुद मूल्यांकन करें और उनसे यह चर्चा भी हो कि किसका परीक्षण किया जाना चाहिए और यह पता करने के क्या तरीके हैं कि क्षमताओं का विकास दरअसल हुआ कि नहीं। बहुत छोटे बच्चे भी इसका सही आकलन कर सकते हैं कि कौन से काम वे कर पाते हैं और कौन से नहीं। अध्यापन की भूमिका यह है कि वह प्रत्येक बच्चे को उसकी क्षमता के अनुसार सीखने के सर्वश्रेष्ठ मौके दे और इस तरह के अनुभव दे कि जिससे संज्ञानात्मक गुणों का विकास हो, शारीरिक कुशलक्षेम सुनिश्चित हो, खेल–कूद संबंधी गुणों का भी विकास हो और सौंदर्यबोध और भावनात्मकता भी विकसित हो।

यह ज़रूरी है कि रपट कार्ड बच्चों और माता पिता के सामने बच्चों के कई क्षेत्रों में विकास पर एक समावेशी और समग्र दृष्टिकोण प्रस्तुत करे। शिक्षक प्रत्येक बच्चे के बारे में ऐसी बातें कह पाएँ जो बताएँ कि उस बालक/शिक्षार्थी पर व्यक्तिगत ध्यान दिया गया है, एक सकारात्मक आत्म छवि को मजबूत करती हो और उनके सामने ऐसे व्यक्तिगत उद्देश्य रख पाती हो जिनको लक्ष्य करते हुए वे काम करें। चाहे अंकों की सूचना दी जा रही हो या श्रेणियों की, शिक्षक के द्वारा दिया गुणात्मक कथन आकलन के समर्थन के लिए बहुत ज़रूरी है। केवल इसी तरह का रिश्ता बनाने के बाद एक शिक्षक विद्यार्थियों को प्रभावित कर सकता है और उनके अधिगम में योगदान दे सकता है। शिक्षा प्रत्येक बच्चे का आकलन करे, इसके अलावा प्रत्येक बच्चा स्वयं का भी आकलन कर सकता है और उस स्व–आकलन को रिपोर्ट कार्ड में शामिल करना चाहिए।

वर्तमान में, कई रिपोर्ट कार्डों में विषय क्षेत्रों पर जानकारी होती है लेकिन बच्चे के विकास के दूसरे पहलुओं पर बताने के लिए कुछ नहीं होता है; जैसे– स्वास्थ्य, शारीरिक कुशलता, खेलों में दक्षता, सामाजिक कौशल, कला और हस्तकला में दक्षता। बच्चों की शिक्षा और उनके विकास के इन पहलुओं पर दिए गए गुणात्मक कथन शैक्षिक सरोकारों का एक समग्र आकलन दे सकेंगे।

3.11.7 वे क्षेत्र जिनके बारे में नए सिरे से सोचने की जरूरत है

पाठ्यचर्या के ऐसे कई क्षेत्र हैं जिनका आकलन किया जा सकता है पर जिनके लिए हमारे पास विश्वसनीय और प्रभावी उपकरण नहीं हैं। इसमें वह अधिगम भी शामिल है जिसके लिए समूहों में काम होता है और नाट्य, काम और हस्तकला के क्षेत्रों का अधिगम भी शामिल है जहाँ कौशल एवं दक्षताएँ लंबे समय में विकसित हो पाती हैं और जिन्हें बहुत सावधानी से किए गए अवलोकन की ज़रूरत होती है।

सतत व समावेशी मूल्यांकन को ही एक सार्थक मूल्यांकन माना गया है। हालांकि इस पर भी सावधानीपूर्वक विचार करने की ज़रूरत है कि इसका प्रभावी उपयोग करने के लिए कब लागू करना है। अगर मूल्यांकन को सार्थक रूप से लागू करना है और उसके आकलन की विश्वसनीयता रखनी है तो ऐसा मूल्यांकन शिक्षकों से बहुत ज्यादा समय देने की मांग करता है तथा यह मांग भी करता है कि वह सावधानी और कुशलता से रिकॉर्ड रखे। अगर यह प्रक्रिया महज बच्चों के बोझ को बढ़ाए और सारी गतिविधियों को आकलन का ज़रिया बना दे और उन्हें शिक्षक की ताकत का अनुभव कराती रहे तो वह शिक्षा के प्रयोजन को ही विफल कर देती है। जब तक व्यवस्था ऐसे आकलन के लिए पर्याप्त रूप से तैयार नहीं है तब तक शिक्षकों के लिए यही बेहतर है कि वे आकलन के सीमित रूपों का ही उपयोग करें। लेकिन उसमें वे आयाम शामिल कर लें जिनसे आकलन सीखने के एक सार्थक दस्तावेज़ के रूप में उभर पाए।

अंततः आकलन में विश्वसनीयता को विकसित करने और बनाए रखने की ज़रूरत है जिससे वे प्रतिपुष्टिकरण की भूमिका को सार्थक रूप से निभाते रहें।

3.11.8 विभिन्न चरणों में आकलन

पूर्व प्राथमिक शिक्षा और प्राथमिक चरण की कक्षा 1 एवं 2 : इस स्तर पर आकलन में विभिन्न क्षेत्रों में बच्चों की गतिविधियों पर दिए गए गुणात्मक कथन होने चाहिए और उनके स्वास्थ्य और शारीरिक विकास का आकलन होना चाहिए। यह आकलन रोज़मर्रा की अंतःक्रियाओं के दौरान किए गए अवलोकनों पर आधारित होने चाहिए। किसी भी कारणवश बच्चों की लिखित या मौखिक परीक्षा नहीं होनी चाहिए।

प्राथमिक चरण की कक्षा 3 से 8 तक : यहाँ कई तरीकों का इस्तेमाल किया जा सकता है जिसमें मौखिक एवं लिखित परीक्षा और अवलोकन शामिल हैं। बच्चों को यह पता होना चाहिए कि उनका आकलन किया जा रहा है पर उसको उनकी शैक्षणिक प्रक्रिया के भाग की तरह प्रस्तुत करना चाहिए न कि डरावनी धमकी की तरह। इस चरण पर उपलब्धि के लिए दिए गए अंक और गुणात्मक कथन उन क्षेत्रों के लिए बहुत ज़रूरी हैं जिन पर ज्यादा ध्यान देने की ज़रूरत है। कक्षा 5 से बच्चों के स्व–मूल्यांकन को रिपोर्ट कार्ड में शामिल किया जा सकता है। बड़ी–बड़ी मासिक और वार्षिक परीक्षाओं की जगह समय समय पर छोटी–छोटी परीक्षाएँ होनी चाहिए। ऐसी परीक्षाएँ जिनमें परीक्षण का आधार मानदण्ड हो। कक्षा 7 से सत्रीय परीक्षाएँ शुरू होनी चाहिए जब बच्चे ज्यादा बड़े हिस्से पढ़ने के लिए मनोवैज्ञानिक रूप से तैयार हों और उत्तरों पर काम करते हुए परीक्षा में कुछ घंटे बिताने लायक हो जाएँ। रिपोर्ट कार्ड में फिर से स्वास्थ्य और पोषण पर सामान्य टिप्पणियाँ देने के साथ–साथ शिक्षार्थी के समग्र विकास पर विशिष्ट टिप्पणियाँ हों और माता–पिता के लिए सुझाव हों।

माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक चरणों में कक्षा 9 से 12 : पाठ्यचर्या के ज्ञान आधारित क्षेत्रों के लिए आकलन, परीक्षाओं, परियोजनाओं की रिपोर्ट पर आधारित हो सकता है और साथ में शिक्षार्थी का स्व–आकलन भी शामिल हो। बाकी विषयों का आकलन अवलोकन एवं स्व–मूल्यांकन द्वारा किया जाना चाहिए।

रिपोर्ट में विद्यार्थियों के विभिन्न कौशलों/ज्ञान के क्षेत्रों और प्रतिशतांकों के बारे में अधिक विश्लेषण हो। यह बच्चों को उन विषयों को समझने में मदद करेगा जिन पर उन्हें ध्यान देना चाहिए और उनके आगे के विकल्प चयन की प्रक्रिया के लिए एक आधार भी देगा।

प्राशिका मूल्यांकन

1. मूल्यांकन या आकलन समग्र होना चाहिए। इसमें सीखने–सिखाने से सम्बंधित हर पहलू शामिल होना चाहिए, न कि मात्र सीखने वाले।

2. मूल्यांकन से हमें शिक्षार्थी व शिक्षक की क्षमताएं व कमज़ोरी दोनों समझने में मदद मिलनी चाहिए और तद्नुसार शिक्षण सामग्री व कार्यक्रम के नियोजन में मदद मिलनी चाहिए।

3. मूल्यांकन ऐसा न हो कि शिक्षार्थी डर जाए। उसे अपने बचाव का पूरा अवसर मिलना चाहिए। मूल्यांकन पीड़ादायक नहीं, खुशनुमा और दोस्ताना प्रक्रिया होनी चाहिए।

4. एकमुश्त सालाना इम्तहान प्रणाली भयावह बन ही जाती है। समय–समय पर विभिन्न सामान्य गतिविधियां, सामूहिक चर्चा, घर पर करने के कार्य आदि मूल्यांकन के आधार बनने चाहिए।

5. मूल्यांकन का मकसद बच्चों को रोकना नहीं होना चाहिए। सतत् मूल्यांकन पाठ्यक्रम में निहित फीडबैक का आधार बन सकता है।

6. बच्चे का मूल्यांकन हमेशा किसी बाहरी कसौटी के आधार पर नहीं किया जाना चाहिए। मूल्यांकन का आधार उसका अपना विगत प्रदर्शन और पूरी कक्षा का प्रदर्शन होना चाहिए।

7. कई बच्चे किसी एक पहलू में 'कमज़ोर' होते हैं मगर हो सकता है कि वे किसी अन्य पहलू में मज़बूत साबित हों। कोई बच्चा/बच्ची अगर समस्याएं सुलझाने में सिद्धहस्त हो सकता/सकती है तो कोई अन्य चित्र बनाने या कहानी कहने में।

8. मूल्यांकन के लिए जो गतिविधियां चुनी जाएं वे आमतौर पर कक्षा में की जाने वाली गतिविधियों से अलग तो हों, मगर उसी स्तर और उसी किस्म की हों।

मूल्यांकन क्यों ?

हृदय कांत दीवान

जिन पहलुओं पर मैं बात करना चाहता हूँ वे इस पुराने प्रश्न से आरम्भ होते हैं कि मूल्याँकन क्यों? इस प्रश्न के कई जाने माने उत्तर हैं। एक उत्तर जो अक्सर दिया जाता है वह भिन्न–भिन्न लोगों और भिन्न–भिन्न उद्‌देश्यों के लिए प्रतिसूचना (फीडबैक) से संबंधित है। उदाहरण के लिए, (i) यह छात्रों को उनके शिक्षण के बारे में इस आशा से प्रतिक्रिया देने से संबंधित हो सकता है कि वे अपने प्रयासों में सुधार लायेंगे, (ii) यह विद्यार्थियों द्वारा सीखने की क्षमता को प्रदर्शित करने की दृष्टि से अध्यापकों द्वारा हो सकता है जिससे कि कक्षा में पढ़ाने में उनके द्वारा प्रयोग में लाई जा रही पद्धति के संबंध में कुछ निष्कर्षों पर पहुँचना संभव हो सके, (iii) यह पाठ्‌यपुस्तकों की प्रकृति और उनकी गुणवत्ता के परीक्षण से संबंधित हो सकता है, अथवा (iv) यह पाठ्‌यक्रम के दायरे और उसकी प्रकृति के बारे में प्रतिसूचनाएं प्राप्त करने से संबंधित हो सकता है। स्पष्टरूप से ये चार पहलू हैं, जिनका अध्ययन मूल्यांकन प्रयास के आधार पर किया जा सकता है। किन्तु कुछ अन्य पहलू भी हैं जिनकी ओर हम इशारा करेंगे। यह स्पष्ट ही है कि यदि उपरोक्त उद्‌देश्यों को समक्ष रखकर साफ साफ उत्तर दिये जायें तो मूल्याँकन पद्धति तथा इसके लिये अपनाये जाने वाले उपकरणों की प्रकृति एवं मूल्याँकन पद्धति से की जाने वाली अपेक्षाएं भिन्न प्रकार की होंगी। इससे यह स्पष्ट हो सकेगी कि छात्रों से जिस प्रकार के फीडबैक की अपेक्षा है, वह शिक्षकों से भिन्न प्रकार की ही होगी। मूल्याँकन से दूसरे आयाम भी हो सकते हैं, जो छात्रों के मूल्याँकन से संबंधित नहीं होंगे औन न ही पठन पाठन सामग्री की समीक्षा से, किन्तु ये पाठ्‌यक्रम की प्रकृति और इसके दायरे से संबंधित होंगे। इस सेमिनार से संदर्भ में यही उचित होगा कि मूल्याँकन पर होने वाली चर्चा को प्रथम दो पहलुओं तक ही सीमित रखा जाये और परीक्षण सहित विभिन्न प्रक्रियाओं से छात्रों के मूल्याँकन के बारे में उभरे बिन्दुओं की ओर ध्यान दिया जाये।

यदि हम पठन पाठन की प्रक्रियाओं पर गहनता से विचार करें तो हमारे समक्ष ऐसे अनेक दूसरे मानदण्ड उपस्थित होंगे जो छात्रों के निष्पादन को प्रभावित करते हैं। ये मानदण्ड नीति तथा संरचना स्तर से संबंध रखते हैं, जिनमें स्थानान्तरण, वेतन ढाँचा, पर्यवेक्षण पद्धति, अध्यापकों के प्रति व्यवस्था में उचित सम्मान तथा प्रशासन की प्रकृति से जनित अन्य पहलू सम्मिलित हैं। इन्हीं में उच्चाधिकारियों का व्यक्तित्व तथा प्रधानाध्यापकों और अध्यापकों के समक्ष उन्हें कैसे देखा जाये, यह भी सम्मिलित है। इन पहलुओं को विस्तार से और सावधानीपूर्वक वर्णित किया जा सकता है। किन्तु वर्तमान सीमित उद्‌देश्य की दृष्टि से इन विभिन्न पहलुओं की ओर इंगित मात्र करना ही पर्याप्त है। जिस प्रश्न का हमें सामना करना है– वह यह है कि छात्रों द्वारा किये गये कार्य का आंकलन करते समय इनमें से किन–किन संबंधों पर हमें अपना ध्यान केन्द्रित करना है। एक विशेष प्रकार की परीक्षा अथवा जाँच के संदर्भ में उपलब्धियों का वर्णन अपेक्षाकृत आसान कार्य है और यह कहना भी आसान है कि एक निश्चित स्थिति में औसतन यह कार्य दूसरों की अपेक्षा बेहतर हो सकता है। किन्तु यह समझना बहुत ही कठिन है कि ऐसा क्यों है? यह और भी दुरूह कार्य है कि इस बारे में एक समझ विकसित करते हुए इसका एक विश्वसनीय सिद्धान्त निर्माण किया जाये जो कि इसके परिणामों की व्याख्या कर सके। यह स्पष्ट है कि जब हम मूल्याँकन के विविध आयामों को महत्व प्रदान करते हैं तो छात्र मूल्याँकन की प्रकृति और इससे जुड़ी सूचनाओं का अंकन कुछ अलग ही प्रकार का होना स्वाभाविक है।

छात्र मूल्यॉंकन एवं समुदाय :

छात्र मूल्यॉंकन का एक उद्‌देश्य, जिस पर हाल ही में चर्चा हुई है, यह है अभिभावकों को इस बात से अवगत कराना कि उनके बच्चे क्या सीख रहे हैं और साथ ही समुदाय को भी यह बताना कि जब बच्चे स्कूल में आते हैं तो कुछ अवश्य सीखते हैं। इससे इस निष्कर्ष पर पहुँचना आसान है कि मूल्यॉंकन का उद्‌देश्य समुदाय (अथवा समाज) तथा अभिभावकों को फीड़बैक (प्रतिसूचना) देना है और उनके समक्ष बच्चों द्वारा किये गये कार्य का प्रस्तुत करना है, जिससे कि वे इसे समझ सकें, स्वीकार कर सकें और यदि आवश्यक समझे तो इसकी समालोचना भी कर सकें। इस प्रक्रिया में यह आशय और विश्वास निहित है। समुदाय तथा अभिभावकगण छात्रों के स्कूल में पठन पाठन के कार्य में यदि सुधार हेतु कुछ सुझाव देना चाहें तो वह भी दे सकते हैं। कई इस प्रकार के मोड्‌यूल्स के उदाहरण भी उपलब्ध हैं जिनके अन्तर्गत समस्त समुदाय की उपस्थिति में छात्रों का मूल्यॉंकन किया जाता है, किन्तु इसके सम्पूर्ण प्रभाव और परिणामों का अध्ययन और विश्लेषण अभी तक नहीं हो पाया है। यह भी बहुत स्पष्ट नहीं है कि क्या इस प्रक्रिया का फोकस समुदाय में इस विश्वास का निर्माण करना होना चाहिए कि छात्रगण स्कूल में सीख रहे हैं अथवा यह प्रदर्शित करना होना चाहिए कि अभी उन्हें लम्बा मार्ग तय करना है। इन दोनों में से एक उद्‌देश्य का चयन समुचित पद्धतियों तथा परिणामों को स्थापित करने में महत्वपूर्ण सिद्ध होगा। समुदाय को इस प्रक्रिया में सम्मिलित करने, उन्हें मूल्यॉंकन का उद्‌देश्य समझने का प्रयास करने और इस बारे में रूचि लेने की दिशा में अधिक बड़े और गम्भीर प्रयास अभी तक नहीं हुए हैं।

यदि परीक्षा संबंधी आज की विशद्‌ प्रक्रिया की ओर देखा जाये तो यह स्वीकार किया जाये पाठ्‌यपुस्तकों, पाठ्‌यक्रम अथवा प्रशासनिक नीति को प्रतिसूचना (फीडबैक) प्रदान करने में इसका कोई उपयोग नहीं है तो यह सुस्पष्ट है कि ऐसी प्रतिसूचना न तो बच्चों के लिए रचनात्मक है और न ही अध्यापकों के लिए। अपितु, यह किसी और के लिए ही है। इस विश्लेषण करना ही होगा। इसी संदर्भ में यह भी महत्वपूर्ण है कि राज्यों तथा वृहद्‌ क्षेत्र में उपयोग की दृष्टि से सामान्यीकरण हेतु इस तथ्य के विविध प्रभावों का अध्ययन किया जाये और इससे सामान्य सार्वभौमिक निष्कर्ष प्राप्त किये जायें।

मूल्यॉंकन के अन्य उद्‌देश्य :

हमारे देश में मूल्यॉंकन एक और उद्‌देश्य की पूर्ति करता है। सामान्यतः अधिकतर छात्रों की श्रेणी (रैंकिंग) तय करने, संस्थाओं का स्तर निर्धारित करने और साथ ही बच्चों को श्रेणीबद्ध करने में मूल्यॉंकन का उपयोग किया जाता है। इससे उनके भविष्य की रूपरेखा तय करने में व्यवस्था को सहायता मिलती है। आरम्भिक शालाओं के स्तर पर भी मूल्यॉंकन संबंधी तथ्यों का उपयोग उन बच्चों को पहचान कर अलग करने में किया जाता है कि जिनका कार्य अच्छा नहीं पाया है। इस समय मेरा तर्क यह नहीं है कि कोई चयन नहीं होना चाहिए और हम बच्चों के कार्य निष्पादन में भेद नहीं कर सकते यद्यपि इसके लिए भी तर्क प्रस्तुत किये जा सकते हैं। मैं केवल इस बात की ओर इंगित कर रहा हूँ कि इसके लिए उपयोग किये जाने वाले मूल्यॉंकन की प्रकृति को निर्मूल किया जाए, क्योंकि यह उस मूल्यॉंकन से सर्वथा भिन्न प्रकृति का है जो एक छात्र विशेष अथवा छात्र समूह का रचनात्मक फीडबैक प्रदान करता है। वैसा मूल्यॉंकन छात्रों को मनोबल बढ़ाता है और उनकी सहायता करता है। परिशोधनात्मक मूल्यॉंकन एक अध्यापक के लिए फीडबैक से कुछ अलग ही प्रकार का होगा जिससे उसे यह पता चल सकेगा कि अपने कक्षा कक्ष में कैसे सुधार लाया जाये। मूल्यॉंकन की हमारी वर्तमान पद्धति इसे पर्याप्त रूप से स्वीकार नहीं करती और जिन विधाओं तथा उपकरणों का उपयोग इस उद्‌देश्य से किया जाना बताया गया है उनकी प्रकृति भी इस उद्‌देश्य की पूर्ति समुचित नहीं है।

यह बात नहीं है कि मूल्याँकन के संबंध में ज्ञान उपलब्ध नहीं है और मैं कुछ नया ही कह रहा हूँ। तथ्य यह है कि मूल्याँकन के संबंध में नये उपकरण निर्माण करने में सहायता प्रदान करते समय हम इन मुद्दों पर विचार नहीं करते। चर्चा केवल वाक्–चातुर्य से परिपूर्ण शब्दावली जैसे आधारभूत मूल्याँकन, साराग्रही मूल्याँकन, समग्र एवं निरन्तर मूल्याँकन इत्यादि के इर्द गिर्द ही घूमती रहती है। यह स्पष्ट है कि निरन्तर और समग्र मूल्याँकन अभ्यास अथवा प्रयास के अन्तर्गत यह समझने पर ध्यान केन्द्रित करना होगा कि बच्चे क्या जानते हैं। यह भी उतना ही आवश्यक है कि जितना कि इस बात कपर ध्यान केन्द्रित करना कि उन्हें अब भी क्या–क्या सीखना और समझना है। विचारों के पारस्परिक आदान प्रदान में वार्तालाप सामान्यतः अंक देने अथवा स्तर निर्धारित करने अपेक्षा ग्रेड देने के महत्व के इर्द गिर्द नही घूमता है। जबकि प्रमुख मुद्दा है सही और गलत उत्तरों के बारे में निर्णय लेना। अधिक से अधिक मूल्याँकन के मुख्य फोकस को एक ऐसे प्रयास के रूप में वर्णित किया जा सकता है जिससे यह महसूस हो सके कि बच्चे का स्थान क्या है? इस प्रकार मूल्याँकन की पद्धति में उत्तरों और प्रतिवचनों के रूप में तथा आकार को ध्यान में रखा जाता। विशेषरूप से ये इस प्रकार के प्रतिमान हैं, जिनके उत्तर अध्यापकों की अपेक्षाओं के अनुरूप नहीं है और जिनमें अन्तराल दृष्टिगोचर होता है, साथ ही प्रभाव की आवश्यकता भी। अतः मैं मूल्याँकन पद्धति की इस प्रकार पुनः समीक्षा करने का सुझाव देता हूँ जिसमें बच्चों द्वारा दिये गये विभिनन प्रश्नों के उत्तरों की विवेचना पर जोर दिया जाये और इन उत्तरों की व्यापकता महसूस करने के लिए उनका सारणीयन किया जाये, साथ ही एक दूसरे से दूरी या विभिन्नता की प्रकृति को भी समझा जाये।

अध्यापक द्वारा मूल्याँकन :

यह मूल्याँकन बहुल श्रेणी अंकन (बेंच मार्किंग), आधार रेखा अथवा परियोजना एवं मूल्याँकन से भिन्न प्रकार का है। इसे अध्यापक की समझ के अनुसार कक्षा कक्ष के अध्यापन–अध्ययन में रोपित करने की आवश्यकता है।

जैसा कि मैंने पहले कहा है, यह स्पष्ट है कि बच्चों के स्तरीकरण के उद्देश्य से अध्यापक को मूल्याँकन नहीं करना चाहिए। बच्चों के प्रयास और उनकी समझ को इस मूल्याँकन के द्वारा आंकने के दो उद्देश्य हैं– (अ) अध्यापकों के स्वयं के कार्य की समीक्षा, तथा (ब) अध्यापन–अध्ययन की पद्धतियों, सामग्री तथा पाठ्यक्रम का मूल्याँकन। इसमें पाठ्यपुस्तकें, पाठ्यक्रम रूपरेखा का अपेक्षित प्रभाव, सुझायी गई प्रविधियाँ आदि सम्मिलित हैं।

इस प्रकार की पद्धति को प्रोत्साहित करने वाली कोई प्रक्रिया अथवा रीति नीति वर्तमान में लागू नहीं है। इसी प्रकार छात्रों से संबंध स्थापित करने वाली प्रक्रिया और अध्यापक द्वारा स्वयं अपने कक्षा कक्ष के अवलोकन तथा अन्तःप्रक्रिया के बारे में आसानी से उपयोग किये जाने वाले विश्लेषणात्मक उपकरण या उपाय भी उपलब्ध नहीं है। केवल मात्र जो एक विधि उपलब्ध है, वह है उसके (अध्यापक के) सम्प्रेषण, श्यामपट्ट पर उसके द्वारा लिखे हुए तथ्य, उसके द्वारा अध्यापन योजना का अनुगमन एवं विषय प्रवेश तथा समापन का उसका तरीका आदि तथ्यों का किसी अन्य के द्वारा अध्ययन– परीक्षण। इसमें किसी भी स्तर पर बच्चे सम्मिलित नहीं है और चर्चा में उनके द्वारा कुछ जोड़े जाने की भी आवश्यकता नहीं है। इस अध्ययन में जिन मानदण्डों का पालन करना होगा वे बच्चों की सहभागिता, सहभागिता की प्रकृति, उनके द्वारा सीखने का दायरा और उनमें विविध क्षमता का विकास करना इत्यादि बिन्दुओं पर आधारित होंगे। इसकी तैयारी अपर्याप्त है और उपुयक्त मोड्यूल जो सादा और उपयोगी है अस्तित्व में नहीं है।

बच्चों की सहायता तथा प्रोत्साहन :

जो छात्र पिछड़ रहे हैं उन्हें सहायता देने हेतु कई सुझाव दिये गये हैं। इससे शिक्षक को इस बात की प्रेरणा मिलती है कि जब भी बच्चों में से कुछ पीछे रह जाते हैं तो ऐसे बच्चों को सहायता दी जाये, जिससे कि अन्य बच्चों की तुलना में उनकी दूरी कम हो सके। किन्तु पीछे जाने के कारणों तथा उनकी प्रकृति पर चर्चा नहीं होती है, यद्यपि इन्हें समझा जा सकता है। अधिक से अधिक जिस बात की जाँच अथवा अध्ययन होता है वह है सूचनाओं, जानकारियों तथा परिभाषाओं की बच्चों द्वारा मस्तिष्क में रखने की क्षमता अथवा अवगत प्रश्नों का समाधान करने की योग्यता जैसे विषय। बच्चों के अध्ययन से संबंधित जो निर्देश जारी यिै गये हैं उनमें यह अंकित नहीं है कि बच्चों में बढ़ रही क्षमता, विचार, तथ्य इत्यादि से उत्पन्न होने वाली उलझनों और उनसे उत्पन्न प्रवृत्तियों को कैसे प्रस्तुत किया जायेगा। शिक्षकों की अपेक्षाओं के बारे में कोई विचार विमर्श अथवा परिचर्चा नहीं है, जबकि शिक्षण का शेषमान (बैकलॉग) वृद्धि पर है। पूछे जाने वाले प्रश्नों की प्रकृति और रिकार्ड रखने के तरीकों के बारे में भी स्पष्ट निर्देश अथवा सुझाव जारी नहीं किये गये हैं। अध्यापक को यह स्पष्ट नहीं है कि एक इकाई के परिशोधन में क्या–क्या सन्निहित है।

अध्यापक गण प्रस्तावित आवश्यकताओं के अनुरूप कक्षा कक्ष को आयोजित नहीं कर पाते क्योंकि ये आवश्यकताएं बड़ी कठिन उलझनपूर्ण हैं। अतः उनसे यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वे इन सबके बारे में सही प्रतिसूचना (फीडबेक) दे पायेंगे। जो सामग्री उन्हें उपलब्ध कराई गई है वह कैसी है इस पर विचार और प्रतिक्रिया प्रकट करने के अवसर पर उपयोग करने में भी वे असमर्थ ही रह जाते हैं। जारी किय गये निर्देशों से जो अपेक्षाएं एवं समझ उत्पन्न हो रही है वह कुछ ऐसी है कि यदि बच्चे नहीं समझ पाये तो इसमें त्रुटि उस पद्धति की है, जिसका उपयोग किया गया है अथवा स्वयं उस बच्चे की ही गलती है। मूल्याँकन की बात करते हैं तो उपचारशील अध्यापन तथा कमी पूर्ति हेतु सहयोग जैसे प्रमुख और महत्वपूर्ण वाक्यों का प्रयोग किया जाता है। यह शब्दावली तथाकथित धीमी गति से सीखने वालों के संदर्भ में उपयोग की जाती है। इस प्रकार के मूल्याँकन प्रतिरूप (डिजाइन) के माध्यम से अक्षम और अस्वस्थ बच्चों की पहचान की जायेगी और उन्हें अतिरिक्त कार्य किया जायेगा। किन्तु इसमें यह शामिल नहीं है कि वे (बच्चे) किस प्रकार विचार करते हैं और कैसे वे अपने अध्ययन की प्रक्रिया को गति प्रदान कर पायेंगे।

बच्चों के कार्य निष्पादन के अनेक पहलू हैं जिनका इस निष्पादन पर प्रभाव पड़ता है। बच्चों से पाठ्यक्रम संबंधी अपेक्षाएं एवं पाठ्यपुस्तकों की प्रकृति इनमें सम्मिलित कुछ ऐसे ही पहलू हैं। वर्तमान समय में हमारे पास कोई ऐसा मार्ग नहीं है जिसके माध्यम से हम पाठ्यक्रम रचनाकर्त्ता अथवा पाठ्यपुस्तक लेखक को यह अवगत करा सकें कि बच्चे परीक्षण (टेस्ट) में क्या करने की स्थिति में है और किस सीमा तक बच्चों से यह अपेक्षा की जा सकती है कि वे विचारों के निष्कर्ष जान सकते हैं अथवा अपने मस्तिष्क में वैचारिक संरचना विकसित कर सकते हैं। अध्ययन सामग्री पर अध्यापक की प्रतिसूचना (फीडबैक) देने की प्रक्रिया को प्रोत्साहित नहीं किया जाता और इसी प्रकार पाठ्यपुस्तक और बच्चों के मध्य गम्भीर वैचारिक आदान प्रदान को विश्लेषित करने हेतु भरी अध्यापक की समीक्षा में अध्यापकों को शामिल किया गया है, केवल टंकण की अशुद्धियों तथा व्याकरण संबंधी सुधारों तक ही सीमित है। अध्यापक के पास जो सशक्त साक्ष्य तथा अनुभव उपलब्ध है उन्हें उपयोगी विचार बिन्दुओं के रूप में स्पष्ट करने का प्रयास भी नहीं किया जाता।

मूल्याँकन से अपेक्षाएं :

हम इन मूल्याँकन और इन्हें क्रियान्वित करने हेतु आवश्यक सिद्धान्तों की प्रकृति के बारे में विस्तार से बात कर सकते हैं। विद्यार्थियों के मूल्याँकन से प्राप्त परिणामों को हमारे राज्यों के वृहद् पर्यवेक्षण के परिवेश में विश्लेषित किया जाना चाहिए जिससे कि अधिकारियों की प्रशासनिक व्यवहार की प्रवृत्ति और

छात्रों के अध्ययन और कार्य निष्पादन के साथ इन प्रवृत्तियों के संबंधों को ज्ञात किया जा सके। इसका विश्लेषण सूचना, कार्यकुशलता, विचार इत्यादि जिन्हें इनमें निहित माना गया है, उनके सारतत्व और आकार के रूप में किया जाना चाहिए। यदि हम छात्रों की उत्तर पुस्तिकाओं का विश्लेषण करें तो हमें और भी अनेक बातें सीखने को मिलेगी। ये बातें प्रमुख रूप से इन संदर्भों में हो सकती हैं कि अधिकांश बच्चों ने क्या सीखा; वे कहां गलतियाँ कर रहे हैं; जो गलतियाँ वे कर रहे हैं वे किस प्रकार हैं, इन त्रुटियों के सम्भावित कारण क्या हैं? इत्यादि। स्पष्टतः यह प्रक्रिया छात्रों के भिन्न भिन्न समुदायों पर और भिन्न भिन्न समयों में दोहरायी जानी चाहिए। केवल समूचे स्कूल अथवा व्यक्तिगत छात्रों की ओर लक्ष्य करते हुए उनके सीखने की क्षमता पर पारस्परिक चिन्तन के रूप में इन्हें परिलक्षित नहीं किया जा सकता। यह स्पष्ट ही है कि इन परीक्षणों के अन्तर्गत किया गया कार्य निष्पादन हमें ऐसे आधारहीन परिणामों की ओर नहीं ले जाये कि बच्चा सुस्त है; वह धीमी गति से सीखने वाला है; इसकी पृष्ठभूमि दोषपूर्ण है अथवा यह प्रयास करने में अक्षम है; इत्यादि। यह प्रक्रिया हमें इस निष्कर्ष की ओर भी न ले जाये कि अध्यापकगण पढ़ाना नहीं चाहते, काम करना नहीं चाहते और उन पर निगरानी रखने की आवश्यकता है। यदि मूल्यॉंकन प्रक्रिया से सीखने में वृद्धि करनी है तो छात्र क्या नहीं जानते, इस पर ध्यान केन्द्रित करने की बजाय परीक्षण के माध्यम से यह ज्ञान करने का प्रयास किया जाना चाहिए कि बच्चों ने क्यसा सीखा है; पाठ्यक्रम संबंधी पाठ्यपुस्तकों में कौन से परितर्वन किये जाने चाहिए और इनकी क्रियान्वयन नीति क्या होगी? इत्यादि।

इस बात की भी आवश्यकता है कि हमारे पास अध्यापकों के कार्य–निष्पादन की समीक्षा हेतु कोई पद्धति अथवा प्रक्रिया हो। अब यह स्वाभाविक प्रश्न है कि हम इसके लिए मानदण्ड कैसे तय करें। अब तक के सभी प्रयत्न वार्षिक परीक्षा, मुख्यतः बोर्ड की परीक्षा, में बच्चों द्वारा की गई उपलब्धियों की तुलना तक की सीमित रहे हैं और स्वाभाविक रूप से इस प्रयास को जोर देते हुए शामिल किया गया है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत स्वयं ही यह प्रस्तावित किया गया है कि एक निश्चित प्रतिशत संख्या के बच्चों द्वारा क्षमता के एक निश्चित स्तर तक सीखने की योग्यता प्राप्त की जायेगी। यह केवल अध्यापकों, समुदायों, गांवों, पाठशालाओं, समूहों, विकास खण्ड़ों, जिलों तथा राज्यों पर्यन्त ही अत्यधिक विविधता नहीं फैलायेगा अपितु सीखने का कया अर्थ है और किसी कार्य विशेष में योग्यता हासिल की गई है अथवा नहीं और कैसे इसकी जाँच हो, इस बारे में भी स्पष्ट विचार उपलब्ध करायेगा। 'सीखने का न्यूनतम स्तर' (एमएलएल) का प्रस्ताव अपेक्षाओं, पाठ्यपुस्तकों, सीखने की प्रक्रिया तथा मूल्यॉंकन सहित पाठ्यचर्या को संशोधित करने हेतु एक आधार के रूप में प्रस्तुत किया गया था। तथापि इस विचार में क्षमताओं की समुचित परिभाषा की दृष्टि से कतिपय दूरियाँ हैं जो उद्देश्यों पर आच्छादित हैं अर्थात् उन्हें प्रभावित कर रही हैं। इस प्रकार यह पाठ्यक्रम का कोई विस्तृत रूप नहीं हो सकता।

मूल्यॉंकन का उद्देश्य सीखने के विषय में एक संकेतक प्रदान करता है जिसे 'क्या सीखा जाना है?' तक की सीमित नहीं किया जा सकता। और सीखने अर्थात् अध्ययन का उद्देश्य एक मूल्यॉंकन परीक्षा में श्रेष्ठ सिद्ध होना मात्र नहीं है। हमें अपने पर्यवेक्षण अभ्यासों और मूल्यॉंकन पद्धतियों के संदर्भ में सदैव इस बारे में सचेत रहना होगा कि इनका इशारा सामान्यतः त्रुटियाँ ढँढ़ने की ओर न हो अपितु इनका ध्यान उन तथ्यों के विश्लेषण और उन प्रक्रियाओं के समझने की आरे जिससे कि शिक्षण में सुधार लाने की विधि को खोजा जा सके। इस प्रकार की पद्धति में जिन पहलुओं को परखा जायेगा उनमें पाठ्य–संरचना और सामग्री विकास की पद्धति के साथ साथ प्रशासनिक व्यवस्था भी सम्मिलित है। ''सीखने'' की जाँच के संबंध में क्षमताओं को परिभाषित करने तथा प्रश्नों के परीक्षण हेतु उपकरणों की रचना करने में बहुत सतर्क रहने की इन पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। हमारे वर्तमान अभ्यासात्मक प्रश्न अधिकांश स्मरण शक्ति पर आधारित हैं अथवा ये एल्गोरिदम आधारित प्रश्न हैं।